भट्टिकाव्य का साहित्यशास्त्र की दृष्टि से आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

(शोध-प्रबन्ध)
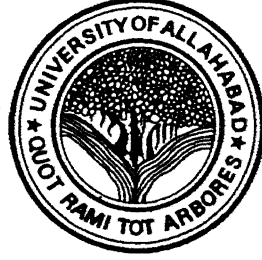
निर्देशिका

डॉ0 (श्रीमती) रंजना

एम० ए०, डी० फिल्०, डी० लिट्०

उपाचार्य

संस्कृत-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तोत्री

श्रीमती निशा गुप्ता

एम० ए०, बी० एड०

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, त्रयोदशी, सोमवार, सम्वत् २०५८ वि०

४ जून, २००१ ई०

।। श्रीगणेशाय नमः ।।
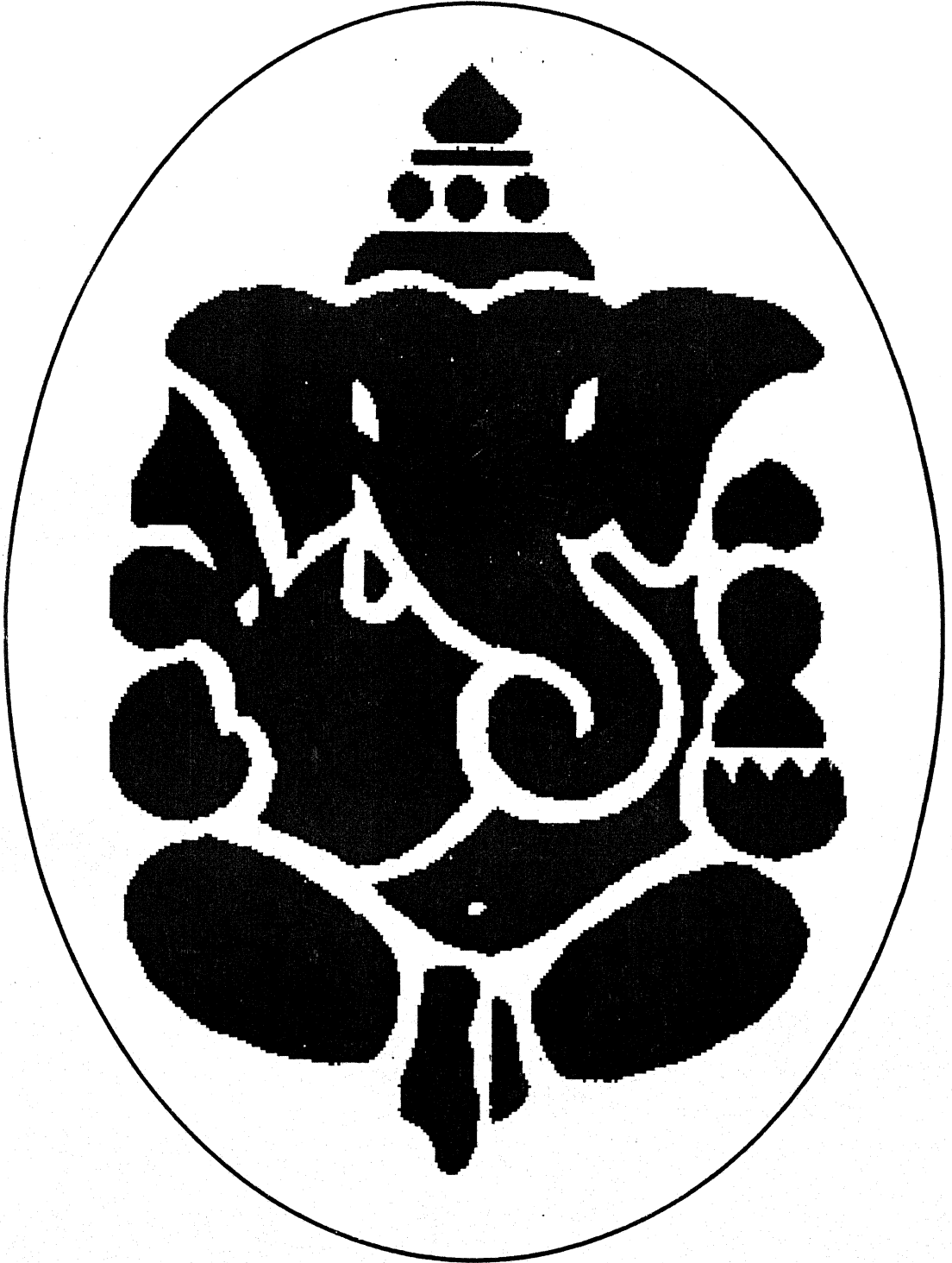
पूज्यनीया,

ममतामयी शक्ति स्वरूपा पितामही सास (श्वसुर की माता जी)

स्वर्गीय कुन्ती देवी (श्रीमती तारो देवी जी)

पूज्यवर, पितामह श्वसुर स्वर्गीय श्री कन्हैया लाल जी मित्तल

पूज्यवर, पितामह कनिष्ठ श्वसुर स्वर्गीय श्री बुद्ध सेन जी अग्रवाल

एवम्

पूज्यवर, स्वर्गीय डा० जगदीश प्रसाद गुप्ता (निशा गुप्ता के ताऊ जी)

को सादर समर्पित

एक पल भी नहीं भूल पायेंगे हम,
त्याग-तप की कहानी आपकी हम ।
जन्म-जन्म तक रहेंगे आपके ऋणी हम,
प्रयत्न करेंगे सपने आपके साकार करने के हम ।।

भट्टिकाव्यस्य साहित्यशास्त्रस्य दृष्ट्या आलोचनात्मकम् अध्ययनम्

BHATTIKAVYA KA SAHITYASHASTRA KI DHRISTI SE ALOCHANATMAK ADHYAYANA

विषयानुक्रमणिका

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

आत्म–निवेदन

बचपन से ही हमारे मन में संस्कृत विषय के अध्ययन–अध्यापन की ललक रही है । इसी प्रबल इच्छा के फलस्वरूप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से बी०ए० (आनर्स) परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही बी०एड० किया । अध्यापक बनने के लिए आजीवन विद्यार्थी होना बहुत ही आवश्यक है । व्यक्ति को जीवन–पर्यन्त नित्य–नूतन ज्ञान अर्जित करते रहना पड़ता है । इसीलिए हमने भी बी०एड० के पश्चात् अग्रेतर अध्ययन जारी रखते हुए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्कृत–विषय में एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की । गुरुजनों के वैदुष्यपूर्ण अध्यापन के फलस्वरूप संस्कृत में शोध करने की प्रबल इच्छा उपजी, किन्तु परिवार में ज्येष्ठ पुत्री होने के कारण मेरे विवाह की चिन्ता माता–पिता को सताने लगी । कुछ समय बाद माता–पिता की चिन्ता समाप्त हुई और मैं परिणय–सूत्र में बँध गयी । वैसे तो विवाह प्रायेण लड़कियों के लिए, विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में, एक प्रत्यवाय ही सिद्ध होता है, किन्तु यह मेरा परम सौभाग्य है या इसे गुरुजनों तथा बड़ो का आशीर्वाद ही कहूँगी कि मेरा परिणय मेरे लिए एक प्रत्यवाय नहीं, अपितु एक वरदान सिद्ध हुआ । ससुराल में शोध करने की इच्छा को आकार मिला ।

मेरे परमपूज्य श्वसुर जी श्री डा० जी० पी० गुप्ता, जो स्वयं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग कार्यालय में एक वरिष्ठ पद पर कार्यरत थे, ने मेरी इस इच्छा को प्रोत्साहित किया । वे मुझे हमारी निर्देशिका परम विदुषी डा० रञ्जना, रीडर, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पास ले गये । डा० रञ्जना ने हमारी निर्देशिका का गम्भीर दायित्व–वहन करने की सहमति दे दी । उन्होंने मेरी साहित्य में अपार अभिरुचि को देखते हुए भट्टिकाव्य पर साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन करने का परामर्श दिया । तत्कालीन प्रोफेसर एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रो० हरिशंकर त्रिपाठी जी की महती कृपा और सुजनता के फलस्वरूप मेरा पंजीकरण हो गया किन्तु विवाह के लगभग एक वर्ष बाद ही पुत्र–जन्म के कारण शोधकार्य का पूर्ण होना दुष्कर और असम्भव सा प्रतीत होने लगा । किन्तु हमारी स्नेहमयी निर्देशिका के सतत् मार्गदर्शन और श्वसुर जी एवं मेरे पति डा० सुधांशु गुप्त द्वारा उपलब्ध सुविधाओं, सहायताओं के फलस्वरूप मेरा अध्ययन कार्य अक्षुण्ण चलता रहा । श्वसुर जी द्वारा मुझे घर गृहस्थी के भार से लगभग मुक्त सा कर दिया गया और हमारे अध्ययन कार्य में यथासम्भव सहायता करते हुए उन्होंने पग–पग पर मुझे प्रोत्साहन प्रदान किया । इस शोध प्रबन्ध का पूर्ण होना इन्हीं सबकी प्रेरणा, सम्बल और आशीष का परिणाम है ।

दो शब्द प्रबन्ध योजना पर –

यद्यपि हमारे बी०ए० तथा एम०ए० के पाठ्यक्रम में भट्टिकाव्य सम्मिलित नहीं था फिर भी स्वाध्ययन के कारण मुझे भट्टिकाव्य ने पहले से ही बहुत प्रभावित किया था और मेरी उस पर शोध कार्य करने की कामना को जैसे पँख मिल गये जब हमारी निर्देशिका डा० रञ्जना ने इसी विषय को अनुमोदित कर दिया ।

विश्व–साहित्य में भट्टिकाव्य ही एकमात्र ऐसा काव्य है जिसकी रचना व्याकरणशास्त्र के नियमों के उदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से की गयी । यह महनीय महाकाव्य व्याकरणपरक होते हुए भी काव्यगत सौन्दर्य से समृद्ध और परिपूर्ण है । शब्द तत्त्व के विवेचन में, व्याकरण और गूढ़–ग्रन्थि के प्रस्फुरण में और काव्य तत्त्वों का समालोचन करने में महाकवि भट्टि की प्रशस्ति सहृदयों सामाजिकों और समालोचकों द्वारा की गयी । अतएव इस अतिविशिष्ट महाकाव्य पर शोध करना मेरे लिए परम सौभाग्य की ही बात है ।

महाकवि भट्टि का यह महाकाव्य दुधर्ष पाण्डित्य से परिपूर्ण होते हुए भी विनीत प्रकृति का है । व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद, कामशास्त्र एवं संगीत आदि का गूढ़ज्ञान रसपेशल पदावली में होते हुए भी कवि यह आभास नहीं होने देता कि शास्त्रीय ज्ञान का प्रदर्शन किया जा रहा है । भट्टि शब्दों को गढ़ने में कुशल हैं, माँ सरस्वती की उन पर अपार कृपा थी । उनके सुबन्त और तिङन्त प्रयोगों की मनोहारी छटा जहाँ वैयाकरणों को आनन्दित करती है वहीं काव्य–रसिकों को साहित्यिक रस चर्वण से सराबोर भी कर देती है । भट्टिकाव्य शास्त्रीय दृष्टि से भी एक अत्यन्त सफल महाकाव्य है । महाकाव्यगत बन्ध, रस, अलंकार, छन्द, पात्र–चयन, वस्तु–वर्णन आदि सब कुछ शास्त्रीय नियमानुसार प्रयुक्त है । उनकी इस अभिनव शैली को देखकर ही उनके परवर्ती कवियों को दृष्टि मिली । अतएव वे उपजीव्य भी बने ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में संस्कृत महाकाव्य परम्परा, द्वितीय अध्याय में भट्टि के समय कर्तृत्व पर तथा तृतीय अध्याय में भट्टिकाव्य के काव्य–वैशिष्ट्य पर विशद् विवेचन किया गया है । चतुर्थ अध्याय में महाकवि का वैदुष्य, उनका आचार्यत्व और पञ्चम अध्याय में संस्कृत महाकाव्य परम्परा में उनके अपूर्व योगदान पर विचार किया गया है ।

इस शोध–प्रबन्ध को लिखने में जिन महाकवियों, आचार्यों तथा विद्वानों की सहायता ली गयी है, उन सब के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ । अपने उन सभी गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होंने मुझे असीम स्नेह एवं आशीर्वाद दिया ।

अपनी निर्देशिका श्रद्धेया डा० रञ्जना रीडर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, संस्कृत विभाग की हृदय से ऋणी हूँ जिन्होंने पदे–पदे सत्परामर्श देकर उपकृत किया है । अनेक विकट शब्द शक्ति एवं रसादि की गुत्थियों को सरल ढंग से समझा देने की उनकी अपनी निराली ही शैली है । इस साहित्यिक सारस्वत परिशीलन में उनकी दर्शनशास्त्रीय विदग्धता ने सोने में सुहागा मिलाया है । उनकी इस अभिनव दृष्टि हेतु मैं सदा–सर्वदा उनकी ऋणी बनी रहूँगी । उनकी विषयगत गुरुता उनकी स्वभावगत सरलता और निश्छलता में मुझे सदैव चमकती मिली । अतः उनके प्रति कितनी भी कृतज्ञता अर्पित करूँ कम पड़ जाएगी ।

संस्कृत विभाग की वर्तमान अध्यक्ष प्रो० डा० मृदुला त्रिपाठी द्वारा प्राप्त प्रोत्साहन हेतु उन्हें साधुवाद अर्पित

करती हूँ ।

इन सब के अनन्तर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष एवं अन्य कर्मचारियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ, जिन्होंने मुझे पुस्तकों के अध्ययन की समस्त सुविधाएँ प्रदान की ।

मैं अपने माता–पिता श्रीमती उषा गुप्ता एवं श्री गोविन्द प्रसाद गुप्ता की अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मुझे अनेक समस्याओं के होते हुए भी निरन्तर अध्ययनशील बनाये रखा ।

मैं परिवार के अन्य सदस्यों ताई जी श्रीमती विमला गुप्ता, बहन हेमा गुप्ता व जया गुप्ता के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने सर्वदा सम्बल देकर कर्मशील बनाया और उसी का परिणाम है कि आज यह शोधकार्य सम्पन्न कर पा रही हूँ ।

मैं अपनी पूजनीया स्नेहमयी सास श्रीमती रमा गुप्ता की प्रेरणा, प्रोत्साहन के लिए हार्दिक रूप से आभारी हूँ ।

अन्त में मैं कम्प्यूटर टंकक अनुज श्री आशीष कुमार गुप्ता को भी धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने शोध–प्रबन्ध के टङ्कण में शुद्धि और स्पष्टता का अधिकाधिक ध्यान रखते हुए अल्प समय में टङ्कणकार्य पूर्ण किया है ।

निशा गुप्ता

(निशा गुप्ता)

त्रयोदशी, सोमवार
विक्रम सम्वत्, २०५८
४ जून, २००१ ई०

संस्कृत महाकाव्य परम्परा

संस्कृत भाषा संसार की समस्त भाषाओं में प्राचीनतम है । यदि इस जगत् में कोई भाषा सबसे प्राचीन व श्रेष्ठ होने की अधिकारिणी है तो वह देववाणी या संस्कृत ही है । इसी देववाणी ने इस देश को चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग, छः आस्तिक और तीन नास्तिक दर्शनशास्त्र, अठारह पुराण, रामायण, महाभारत जैसे अनेक शिरोमणि ग्रन्थ रत्नों के माध्यम से जगद्गुरू के पद पर आसीन किया है । पाणिनीय व्याकरण, संगीत,योग स्थापत्य, चिकित्सा, गणित, काम, ज्योतिष इत्यादि अनेकानेक शास्त्र इसी भाषा में निबद्ध हैं । संस्कृत साहित्य समग्र साहित्यों से प्राचीनता, व्यापकता तथा अभिरामता में श्रेष्ठ है । 'परा' तथा 'अपरा' विद्याओं के गूढ़ रहस्य को जानने का एकमात्र साधन संस्कृत भाषा ही है ।

वर्तमान समय में अपनी सभ्यता और संस्कृति पर गर्व करने वाली जातियाँ जिस समय वनों में घूम–घूम कर संकेत मात्र से अपने मनोभावों को व्यक्त करती थीं, उस समय से भी पहले हमारे आदरणीय पूर्वज भगवान् की पूजा में उनकी अलौकिक शक्तियों का व्याख्यान करने के लिए नयी–नयी ऋचाओं तथा श्लोकों की रचना कर रहे थे ।

साहित्य :–

"सहितयोः भावः साहित्यम्" अर्थात् सहित 'शब्द' और 'अर्थ' का भाव 'शब्द' और 'अर्थ' के सुन्दर सामञ्जस्य का नाम ही साहित्य है । साहित्य का अभिप्राय उन काव्यों से है, जिनमें कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के लिए 'शब्द' और 'अर्थ' का उपयुक्त सन्निवेश हो । सुन्दर काव्य या साहित्य वही है, जिसे शास्त्र से अनभिज्ञ सीधा सरल व्यक्ति भी उतनी ही सरलता से समझ जाये, जितनी सरलता से कोई शिक्षित विशिष्ट जन । भर्तृहरि[१] ने जब साहित्य, संगीत तथा कला से विहीन व्यक्ति को पशु कहा तो उनका अभिप्राय इन्हीं कोमल भावों से था ।

शास्त्र और साहित्य में अन्तर यही है कि शास्त्र में अर्थप्रतीति के लिए 'ही' शब्द का प्रयोग किया जाता है परन्तु साहित्य में 'शब्द' और 'अर्थ' दोनों समान महत्व के होते हैं, न कोई कम न कोई अधिक ।[२]

कविवर राजशेखर ने साहित्य को पञ्चमी विद्या कहा है जो प्रमुख चार विद्याओं – पुराण, न्याय (दर्शन), मीमांसा तथा धर्मशास्त्र का सारभूत है ।[३]

---

१. "साहित्य–संगीत–कलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ।।"

भर्तृहरि 'नीतिशतकम्' श्लोक सं० १२

२. "न च काव्ये शास्त्रादिवत् अर्थ–प्रतीत्यर्थ शब्दमात्रं प्रयुज्यतेः सहितयोः शब्दार्थयोः तया प्रयोगात् ।
तुल्यकक्षत्वेन अन्यूनानतिरिक्तत्वम् ।"

महिमभट्टप्रणीत 'व्यक्तिविवेकटीका' पृ० ३६

३. "पञ्चमी साहित्यविद्येति यायावरीयः ।
सा हि चतसृणां विद्यानामपि निष्यन्दः ।"

राजशेखर 'काव्यमीमांसा' पृ० ४

इस प्रकार साहित्य शब्द का संकुचित प्रयोग काव्य तथा नाटकों आदि के लिए होता है । आर्चाय विल्हण ने काव्य रूपी अमृत को साहित्य–समुद्र के मन्थन से उत्पन्न होने वाला बतलाया है ।[1] आजकल अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त 'लिट्रेचर' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में भी होने लगा है ।

संस्कृत साहित्य :–

संस्कृत साहित्य प्रत्येक दृष्टि से बेजोड़ है । प्राचीनता की दृष्टि से ही देखा जाए तो लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के अनुसार ऋग्वेद के अनेक सुक्तों की रचना विक्रम से कम से कम छः हजार वर्ष पूर्व हुई है इनके अनुसार संस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम ग्रन्थ लगभग आठ हजार वर्ष प्राचीन है । तब से साहित्य की यह धारा अबाध गति से निरन्तर प्रवाहित होती चली आ रही है । संस्कृत साहित्य में मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर विचार प्रस्तुत किया गया है । संस्कृत साहित्य प्राचीनता, सर्वाङ्गीणता, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा कला की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है ।

संस्कृत साहित्य के दो रूप हैं – १. वैदिक साहित्य, २. लौकिक साहित्य ।

१. वैदिक साहित्य :–

वैदिक साहित्य में संहिता तथा ब्राह्मणों की रचना हुई है । वैदिक साहित्य दैवी साहित्य है । वैदिक साहित्य धर्म प्रधान साहित्य है । याग कर्म, देवताओं की स्तुतियाँ, उपनिषद् इत्यादि इसी साहित्य के अन्तर्गत आते हैं वैदिक साहित्य की भाषा पाणिनीय व्याकरण के नपे तुले नियमों से जकड़ी हुई नही थी ।

२. लौकिक साहित्य :–

वैदिक साहित्य के अनन्तर लौकिक साहित्य का निरन्तर उदय होता गया । संस्कृत साहित्य रामायण, महाभारत, पुराण और समय–समय पर अन्य ग्रन्थों को लेकर उपनिषदों व वेदों के गंभीर चिंतन के निश्चित मानदण्डों का हाथ पकड़कर हमारे सामने प्रविष्ट होता है । कालिदास से लेकर जयदेव तक इस अखण्ड परम्परा का निर्वाह मिलता है ।

वैदिक साहित्य एवं लौकिक साहित्य में अन्तर :–

वैदिक साहित्य में जहाँ याग कर्मो, सामगानों की प्रधानता है, वहीं लौकिक साहित्य का प्रसार प्रत्येक दिशा

---

१. "साहित्य–पयोनिधि–मन्थनोत्थं काव्यामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः ।
यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति ।।".

महाकवि विल्हण विरचितम् 'विक्रमाङ्कदेवचरितम् महाकाव्य' प्रथम सर्ग श्लोक सं० ११

में बराबर दिखाई पड़ता है । ऋग्वेद काल में जिन देवताओं का प्रमुखता से वर्णन है लौकिक साहित्य में वे गौण रूप से प्रतिपादित है । पद्य की रचना जिन छंदों में की गयी है, वे छंद भी वैदिक छंदों से भिन्न है । वेदों मे गायत्री, जगती तथा त्रिष्टुप् का साम्राज्य है तो वहाँ उपजाति, वंशस्थ और बसंततिलका का विशाल साम्राज्य है । वैदिक साहित्य का समाज दो वर्गो में विभाजित है – आर्य और दस्यु अर्थात् विजेता और विजित । लौकिक संस्कृत का समाज वर्णाश्रम व्यवस्था को लेकर चलने वाला पौराणिक समाज है । लौकिक साहित्य का समाज सामन्तवाद, सम्राटों, राजाओं का समाज है । यद्यपि रामायण और महाभारत में भी सामन्त वाद का वर्णन है किन्तु ये दोनों काव्य वैदिक तथा लौकिक साहित्य के बीच की कड़ी हैं । यही कारण है कि बाल्मीकि और व्यास कवि होते हुए भी ऋषि तथा उनके काव्य कृतियाँ मानी जाती है । वैदिक साहित्य में प्रतीक रूप से अमूर्त भावनाओं की मूर्त कल्पना प्रस्तुत की गयी है, जबकि लौकिक साहित्य में अतिशयोक्ति की अधिकता है ।

इस प्रकार काव्य की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का स्थान बहुत ऊँचा है । महर्षि वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष, माघ आदि महाकवियों की कृतियाँ आज भी उतनी ही नवीन और आनन्ददायिनी हैं, जितनी की वे अपने रचनाकाल में थी । रामायण, महाभारत, रघुवंश, किरातार्जुनीयम् आदि ग्रन्थ आज भी प्रेरणा के स्रोत हैं । प्रसिद्ध भाषाविद् रेणु ने कहा है "साहित्य के पुस्तकालय में किसी वस्तु का अभाव रह जाएगा यदि वहाँ भर्तृहरि, कालिदास और भारवि के महाकाव्य विद्यमान न हो ।" [१]

साहित्य शास्त्र का ही अपर नाम 'काव्यशास्त्र' है । काव्य के अन्तर्गत 'दृश्यकाव्य' और 'श्रव्यकाव्य' [२] दोनों का समाहार होने से काव्य शास्त्र को समस्त 'काव्यों की कसौटी' माना गया है । इस प्रसंग में यह बात उल्लेखनीय है कि काव्य निर्माण एवं काव्य रसास्वादन के कुछ निश्चित प्रयोजन रहे हैं । काव्य एक कर्त्तव्य क्रम है जिसका उद्देश्य मानव--जीवन की पूर्णता की अभिव्यक्ति है । वास्तव में कवि के प्रयोजन, काव्यरसिक तथा काव्यालोचकों के प्रयोजन एक रूप ही होते हैं ।

काव्य--प्रयोजन :–

यहाँ पर संक्षेप में काव्य–प्रयोजन पर आचार्यो के मत की चर्चा अप्रासङ्गिक नही होगी । काव्य शास्त्र के

---

१. "द्रष्टव्य – लेखक की पुस्तक – Pragmatic Theories of education, Published by Lakshmi Narain Agrawal, Hospital Road, Agra.

२. "दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् ।"

साहित्य दर्पण ६/१

सर्वप्रथम ज्ञात आचार्य भरतमुनि के अनुसार – "मनुष्य सुख–दुःख से पीड़ित होता है उसके दुःख दर्द थकान की विश्रान्ति जिस कलात्मक उपाय से संभव है वह है नाट्य (काव्य) ।" [१] नाट्य या काव्य के द्वारा जो सुख शान्ति मिलती है, वह रसमय होती है ।

न्याय में भी कहा गया है सभी कार्य प्रयोजन की अपेक्षा रखते हैं –

"प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्त्तते" अतः काव्य जैसा कवि का महान् कर्म निष्प्रयोजन नही हो सकता ।

भामह ने प्रथम बार काव्य प्रयोजन को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है, उनके अनुसार 'सत्काव्य का निर्माण एवं अनुशीलन धर्म–अर्थ, काम–मोक्ष सम्बन्धी शास्त्रों एवं कलाओं में व्युत्पत्ति, यशः प्राप्ति तथा प्रीति अथवा आनन्दानुभूति के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होता है ।' भामह ने चतुर्वग सम्बन्धी शास्त्रों और कलाओं में व्युत्पत्ति को काव्य प्रयोजन के रूप में माना है ।[२] इसी बात को आचार्य भरत दूसरे शब्दों में कहते हैं ।[३]

भामह का दूसरा प्रयोजन 'कीर्तिलाभ' भरतमुनि की परिभाषा में नहीं है, लेकिन 'यशः प्राप्ति' मानव मन की प्रवृत्तियों की मूल प्रेरणा रही है । इसलिए परवर्ती सभी आचार्यो ने 'कीर्ति' को काव्य का एक प्रयोजन माना है । भामह के अन्तिम प्रयोजन 'प्रीति' का अर्थ वस्तुतः वही है जो भरतमुनि के 'विश्राम' का है ।

आचार्य वामन ने भी काव्य के दो प्रयोजन माने हैं – कीर्ति एवं प्रीति की प्राप्ति ।

"काव्यम् सद् दृष्टाऽदृष्टार्थम् प्रतिकीर्तिहेतुत्वात् ।"

आचार्य रूद्रट ने छः प्रयोजनों की मीमांसा की है – यश की प्राप्ति, चरित्र नायक के यश का फैलना,

---

१. "वेदविद्येतिहासानामाख्यानपरिक्ल्पनम् ।
विनोदकरणं लोके नाट्यमेतद् – भविष्यति ।"
नाट्यशास्त्र – भरतमुनि १/१२०
"दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतन्मया कृतम् ।"
नाट्यशास्त्र – भरतमुनि १/११४

२. "धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
करोति कीर्ति प्रीतिं च साधुकाव्यनिबन्धनम् ।।"
भामह – काव्यालङ्कार
"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
न तत्कर्म न योगोऽसौ नाटके यन्न न दृश्यते ।" (नाट्यशास्त्र २१/१२२)

अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति, रोगमुक्ति, अभीष्ट वर की प्राप्ति तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति । इसमें से प्रथम पाँच प्रयोजन कवि के लिए एवं अन्तिम प्रयोजन कवि एवं सहृदय दोनों के लिए हैं ।

भोजराज ने – "कीर्तिं प्रीतिं च वदति" कहकर 'यशः प्राप्ति' और 'प्रीति' को काव्य प्रयोजन माना है । आनन्दवर्धन ने 'प्रीति' को ही काव्य प्रयोजन स्वीकार किया है ।[1] आनन्दवर्धन की 'प्रीति' का तात्पर्य भामह एवं वामन की 'प्रीति' से भिन्न है । उनका मानना है कि यह 'प्रीति' काव्य रूपी शरीर के सौन्दर्य दर्शन से उत्पन्न 'प्रीति' नहीं है वरन् यह काव्यार्थ तत्व के साक्षात्कार करने वाले सहृदयजन के हृदय की स्वाभाविक आनन्दाभिव्यक्ति है । आचार्य मम्मट ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मत में समन्वय स्थापित करते हुए तथा उनमें संशोधन, परिमार्जन करते हुए अपेक्षाकृत विस्तृत रूप में काव्यकर्त्ता तथा काव्यअध्येत्ता दोनों के दृष्टिकोणों से काव्य के छः प्रयोजनों का उल्लेख किया है – "काव्य यश का जनक, अर्थ अर्थात् धन का उत्पादक, व्यवहार का बोधक, अमंगल का नाशक, परमानन्द की शीघ्र अनुभूति कराने वाला तथा कान्ता के समान उपदेश देने वाला होता है ।"[2] तात्पर्य यह है कि काव्य कालिदास, भारवि इत्यादि के समान कीर्ति देने वाला, रत्नावलीकार श्रीहर्ष से धावकादि के समान धन प्रदान करने वाला, समाज में विभिन्न व्यक्तियों के साथ किये जाने वाले आदर्श लोक व्यवहार का परिज्ञान कराने वाला, सूर्य आदि की स्तुति से मयूरादि कवियों के कुष्ठादि अनिष्ट का निवारक तथा सम्पूर्ण प्रयोजनों में प्रमुख काव्य के पढ़ने या सुनने के साथ–साथ तुरन्त रसास्वादन से समुद्भूत परमानन्द की अनुभूति कराता है । इसके अतिरिक्त कान्ता के समान सरसता उत्पादन के द्वारा अपनी ओर उन्मुख करके 'रामादिवद् वर्तितव्यम् न रावणादिवत्' ऐसा प्रभावी सदुपदेश देता है । यहाँ पर 'कान्तासम्मिततयोपदेश' पर विशेष विचार द्रष्टव्य है – आलङ्कारिकों ने शब्दों के तीन प्रकार बताये हैं –

(क) प्रभुसम्मित शब्द :–

राजा की आज्ञा इत्यादि जिसे अक्षरशः स्वीकार करना होता है यह शब्द वेद है ।

(ख) सुहृत् अथवा मित्रसम्मित शब्द :–

जिस प्रकार कोई मित्र हितोपदेश द्वारा उचित अनुचित दोनों मार्ग दिखाता है, किन्तु उसे स्वीकारना या अस्वीकारना आपके हाथ में होता है । जैसे इतिहास पुराण ।

(ग) कान्तासम्मित शब्द :–

---

१. "तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम् ।"

आनन्दवर्धन कृत 'ध्वन्यालोक' – प्रथम कारिका

२. "काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।।"

काव्यप्रकाश, मम्मट १/२

प्रिया के कमनीय सरस वचन के समान शब्द, जो रसमय होने के कारण हृदय पर शीघ्रता से अपना प्रभाव डालते हैं । उनका उपदेश इतना प्रभावकारी होता है कि उसे मानने के लिए आप बाध्य हो जाते हैं जैसे – रसप्रधान काव्य ।

काव्य प्रयोजन का ऐतिहासिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि काव्य के मुख्यतः दो ही प्रयोजन है – १. आनन्दोपलब्धि, २. विचारों का परिस्कार कर जीवन मूल्यों को उद्घाटित करना ।

परन्तु काव्य निर्माण की पीठिका में 'यशोपलब्धि' भी एक प्रधान प्रेरक तत्व के रूप में समादृत रही है ।

काव्यहेतु :–

काव्य का लक्षण जानने से पहले 'काव्यहेतुओं' का ज्ञान परम आवश्यक है, क्योंकि कार्य कारण सिद्धान्त के अन्तर्गत बिना कारण के किसी भी कार्य की उत्पित्त न होने से काव्य की सहेतुकता स्वयं सिद्ध हो जाती है । ऐसी स्थिति में सर्वप्रथम आलङ्कारिक भामह ने कहा है – "काव्य की रचना के लिए प्रतिभा अनिवार्य तत्व है । उनका कहना है कि गुरु के उपदेश से जड़ बुद्धि को शास्त्रों का अध्ययन कराया जा सकता है, किन्तु काव्य का स्फुरण तो किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति को ही होता है ।" [१] भामह ने प्रतिभा, काव्यज्ञशिक्षा और विविध शास्त्र ज्ञान को काव्य का हेतु स्वीकार किया है । प्रतिभा को प्रधान माना है ।

आचार्य वामन के अनुसार काव्य के तीन हेतु हैं – "लोक, विद्या और प्रकीर्ण ।" [२] 'लोक' से इनका आशय लोक–व्यवहार से है । 'विद्या' से आशय शब्द–शास्त्र, कोष, छन्द शास्त्र, कथा व दण्ड नीति प्रभृति विद्यायें तथा 'प्रकीर्ण' से लक्ष्य–ज्ञान, वृद्ध–सेवा, नृत्य इत्यादि हैं । इस प्रकार वामन ने भामह के पक्ष में ही अपना साक्ष्य दिया है ऐसा प्रतीत होता है ।

आचार्य दण्डी ने पूर्वजन्म के संस्कार से उत्पन्न प्रतिभा, नानाशास्त्र परिशीलन और काव्य करने का सतत्

---

१. "गुरुपदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधियोऽप्यलम् ।
काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः ।।
शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनम् ।
विलोक्यान्यनिबन्धाश्च कार्यः काव्याक्रियाऽऽदरः ।।"

काव्यालङ्कार – भामह

२. "लोकोविद्या प्रकीर्णञ्च काव्याङ्गानि ।"

काव्यालङ्कारसूत्र – वामन ३/१

अभ्यास इन तीनों को मिश्रित रूप से काव्य का कारण माना है ।[1]

रूद्रट ने भी काव्यालङ्कार में इसी प्रकार कहा है – **"त्रितयमिदं व्याप्रियते शक्तिव्युत्पत्तिरभ्यासः"** रूद्रट के इस वचन से आचार्य मम्मट के मत की पुष्टि होती है । आचार्य मम्मट ने काव्य के तीन हेतु माने हैं – १. शक्ति, २. निपुणता तथा ३. काव्य निर्माण का अभ्यास ।

उनके अनुसार कवि में रहने वाली उसकी स्वाभाविक प्रतिभा रूपशक्ति, लोकशास्त्रादि के पर्यालोचन से उत्पन्न निपुणता तथा काव्य को जानने वाले गुरू की शिक्षा के अनुसार अभ्यास ये तीनों मिलकर समष्टि रूप से काव्य के विकास के कारण हैं ।[2]

उक्त तीनों हेतुओं का विशेष वर्णन यहाँ अपेक्षित है –

१. शक्ति :–

कवि में स्वाभाविक रूप से रहने वाले कवित्व का बीज रूप जो संस्कार विशेष है वही 'शक्ति' कहलाती है ।[3] इस 'शक्ति' के बिना काव्य निर्माण सम्भव नहीं है । यदि हो भी जाए तो तुकबन्दी के रूप में उपहास योग्य है ।

२. निपुणता :–

जड़चेतन रूप संसार के व्यवहार से विभिन्न शास्त्रों, छन्दो, व्याकरण, शब्दकोश, कला, चतुर्वर्ग प्रतिपादक ग्रन्थ, गजतुरग, खड्गादि सम्बद्ध ग्रन्थों, महाकवियों के काव्यों तथा इतिहास ग्रन्थों के अनुशीलन से उत्पन्न विशिष्ट ज्ञान ही 'निपुणता' है ।

३. काव्य निर्माण का अभ्यास :–

सतत् अभ्यास 'काव्य निर्माण' का मुख्य कारण है, जो काव्य की रचना शैली तथा उसकी विवेचना करना

---

१. "नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम् ।
अमन्दश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः ।।"
दण्डी – काव्यादर्शः १/१०३

२. "शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ।।"
काव्यप्रकाश / मम्मट १/३

३. **"शक्तिः कवित्व बीजरूपः संस्कार विशेषः ।।"**
काव्यप्रकाश – मम्मट, प्रथम उल्लास/वृत्ति

जानते हैं ऐसे गुरू के उपदेशानुसार काव्य निर्माण करने तथा प्राचीन कवियों के श्लोकों में कुछ परिवर्तन करते रहने कि बार–बार प्रवृत्ति ही 'अभ्यास' है । उत्तम काव्य का सृजन इसी 'अभ्यास' का परिणाम होता है ।

उपर्युक्त तीनों हेतु एक साथ समन्वित रूप में ही काव्य के प्रति हेतु हैं अलग–अलग नहीं । जैसे तेल, बत्ती तथा अग्नि ये तीनों की एकत्र समुपस्थिति ही दीपक के प्रति कारण है अथवा सत्व, रज तथा तम् इन तीनों गुणों की एकत्र स्थिति ही सृष्टि के प्रति कारण हैं ।

हमारे मत में आचार्य मम्मट ने पूर्ववर्ती आचार्यों भामह, वामन, दण्डी, रूद्रट के मतों में सामञ्जस्य स्थापित करते हुए काव्यशास्त्र के एक सरल एवं स्वच्छ मार्ग को प्रशस्त किया है । मम्मट के उत्तरवर्ती आचार्यों के मत में काव्यकारणत्व का जो विचार किया गया है उनमें से प्रमुख है – पीयूषवर्षी जयदेव ने कहा है

"प्रतिभैव श्रुताभ्याससहिता कवितां प्रति । हेतुरर्मृदम्बुसम्बद्धबीजव्यक्तिर्लतामिव ।।" [१]

पंडित राज जगन्नाथ ने केवल 'प्रतिभा' को ही काव्य का कारण माना है उनका कहना है कि 'व्युत्पत्ति', 'अभ्यास' के बिना भी केवल महापुरूषों की कृपा से 'प्रतिभा' की उत्पत्ति होती है । [२] पंडित राज को अपने सिद्धान्त का बीज राजशेखर के ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' में मिला था । [३]

उपर्युक्त विभिन्न आचार्यों के विचारों का पुनरावलोकन करने से यह प्रतीत होता है कि प्रायः सभी आचार्यों ने एक सा मत प्रस्तुत किया है, केवल शब्दों का ही अन्तर है ।

काव्य लक्षण :–

'लक्षण' ही वह तत्व है जो किसी पदार्थ को एक निश्चित सीमा में बाँध कर अन्य पदार्थों से पृथक स्वरूप प्रदान करता हुआ उस पदार्थ को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है । इसमें काव्य जैसे दुर्बोध पदार्थ के लक्षण का सर्वथा निर्दुष्ट होना बहुत ही कष्टसाध्य एवं विलक्षणबुद्धि का काम है । संस्कृत काव्य चिंतकों में संस्कृत के सर्वसम्मत, निर्दोष एवं सार्वभौम लक्षण प्रस्तुत करने का प्रयास प्रारम्भ से ही हो रहा है, परन्तु उनके विचारों

---

१. आचार्य जयदेव – चन्द्रालोकः प्रथम मयूखः /७

२. "तस्य च कारणं केवला कविगता प्रतिभा, ननु त्रयमेवः बालादेस्तौ विनापि केवलान्महापुरूषप्रसादादपि प्रतिभोत्पत्तेः ।"

पंडित राज जगन्नाथ 'रसगंगाधर'

३. "सा शक्तिः केवलं काव्ये हेतुरिति यायावरीयः । विप्रसृतिश्च सा व्युत्पत्यभ्यासाभ्याम् । शक्तिककेर्तृ हि प्रतिभाव्युत्पत्ति कर्मणी । शक्तस्य प्रतिभाति । शक्तश्च व्युत्पद्यते ।"

काव्यमीमांसा 'राजशेखर'

में इतनी भिन्नता रही है कि इस प्रश्न को लेकर छः सम्प्रदायों की सृष्टि हुई । प्रत्येक ने परस्पर विरोधी मान्यताएँ रखी । काव्य शास्त्रियों ने पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षणों का खण्डन कर उनमें दोषों का अन्वेषण करते हुए यथा सम्भव उन दोषों से मुक्त होकर अपना मौलिक और स्वतंत्र लक्षण उपस्थित किया ।

संस्कृत काव्य शास्त्रियों के काव्य लक्षणों की परम्परा का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि कतिपय आचार्यों ने 'शब्द' को काव्य लक्षण का मूल आधार बनाया तो कुछ ने 'शब्दार्थ' की सहभावापन्नता सिद्ध की । कितने ही आचार्यो ने 'रस' को उसका प्रवाह मानकर काव्य–स्वरूप का निर्धारण किया ।

'शब्द प्रधान' काव्य लक्षण का निर्माण करने वाले आचार्यों में दण्डी, अग्निपुराणकार, पण्डित राज जगन्नाथ प्रमुख हैं । 'शब्दार्थ युगल' को मानने वालों में भामह, रूद्रट, मम्मट, आनन्दवर्धन, कुन्तक, राजशेखर, हेमचन्द्र, वाग्भट्ट, विद्याधर और विद्यानाथ है तथा 'रसान्वित काव्य' लक्षण प्रस्तुत करने वालों में महिमभट्ट, भोज, शोद्धोदनी, चण्डीदास और विश्वनाथ प्रमुख हैं ।

वास्तविक काव्य लक्षण का प्रारम्भ भामह से होता है जिन्होंने 'शब्द' और 'अर्थ' के 'सहभाव' को काव्य की संज्ञा दी है -- "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्" [१]

इसके विपरीत रीतिवादी आचार्य वामन के मतानुसार 'गुण' और 'अलङ्कार' से युक्त वाक्य ही काव्य है । [२] रूद्रट ने भी शब्दार्थ के समन्वय में ही काव्य का लक्षण माना है – "ननु शब्दार्थौ काव्यम्"

भोजराज ने कहा है – दोष रहित, गुण सहित, अलङ्कारों से विभूषित तथा रस से युक्त काव्य को बनाता हुआ कवि 'कीर्ति' और 'प्रीति' का पात्र बनता है । [३]

आचार्य दण्डी का काव्य लक्षण है – "शरीरं तावददिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली" अर्थात् अभीप्सित् अर्थ से

---

१. "काव्यालङ्कार" भामह १/१६

२. "काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोवर्तते ।
काव्यं ग्राह्यं अलङ्कारात् सौन्दर्यमलङ्कारः ।।"

काव्यालङ्कारसूत्र – वामन १/१,२

३. "अदोषं गुणवत्काव्यम् अलङ्कारैरलङ्कृतम् ।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ।।"

भोजराज

सम्बन्धित पदावली काव्य का शरीर है । लगभग ऐसा ही काव्य लक्षण अग्निपुराणकार ने भी प्रस्तुत किया है ।[१]

आचार्य मम्मट ने जो काव्य लक्षण करने का प्रयास किया है वह सर्वोत्तम है – "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि" अर्थात् दोषों से रहित, गुणसहित, कहीं–कहीं स्पष्ट अलङ्कारों से रहित भी शब्द और अर्थ दोनों की समष्टि काव्य कहलाती है ।

लक्षण में प्रयुक्त 'क्वापि' शब्द से कवि का आशय है कि जहाँ व्यङ्ग्य या रसादि का समुचित प्रयोग नहीं हुआ हो । वहाँ पर स्पष्ट अलङ्कार की सत्ता न होने पर भी काव्यत्व हानि नहीं होती ।

मम्मट के काव्य लक्षण की आलोचना :–

आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ 'साहित्य दर्पण' में मम्मट कृत परिभाषा की कटु आलोचना करते हुए अपना तर्क प्रस्तुत किया है । उनकी दृष्टि में तो उक्त लक्षण में जितने पद प्रयुक्त हुए हैं उनसे भी अधिक दोष हैं ।

– "पदसंख्यातोऽपि भूयसी दोषाणां संख्या"

अदोषौ :–

विश्वनाथ ने इसका खण्डन करते हुए कहा है कि यदि दोषरहित शब्दार्थ को काव्य माना जाए तो इस प्रकार का काव्य संसार में मिल पाना कठिन है इसलिए – "एवं काव्यं प्रविरलविषयं निर्विषयं वा स्यात्" उनका कहना है कि काव्य में किसी दोष की उपस्थिति से उस काव्य का मूल्य भले ही कम हो जाए काव्यत्व नहीं घटता जैसे – कीटानुबिद्ध रत्न का रत्नत्व नहीं नष्ट होता ।[२]

काव्यप्रकाशकार के 'अदोषौ' पद से तात्पर्य काव्यत्व के विघटक जो च्युतसंस्कारादि दोष हैं उनसे रहित शब्दार्थ ही काव्य है । जब वे रसानुभूति में बाधक हो तो दोष है ।

---

१. "संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावलिः ।
काव्यं स्फुटदलङ्कारं गुणवद्दोषवर्जितम् ।।"

महर्षि व्यास कृत अग्निपुराणकार ३३६/६,७

२. "कीटानुबिद्धरत्नादि साधारण्येन काव्यता ।
दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः ।।"

सगुणौ :–

इसी प्रकार शब्दार्थों का 'सगुणौ' विशेषण उचित नहीं है क्योंकि गुण तो रस के धर्म होते हैं रस में ही रहते हैं, शब्द और अर्थ में नहीं । ऐसा स्वयं मम्मट ने कहा है ।[१]

परन्तु मम्मट यह जानते हैं कि रस में गुण रहते हैं फिर भी गौण रूप से शब्द और अर्थ के साथ भी इनका सम्बन्ध है उन्होंने स्वयं इसे कहा है ।[२]

अनलङ्कृती पुनः क्वापि :–

कहीं स्पष्ट अलङ्कार से रहित शब्दार्थ भी काव्य हो सकते हैं इसकी पुष्टि में जो उदाहरण प्रस्तुत किया गया है वह है –

"यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते, चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानलाः ।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ, रेवारोधसि वेतसीतरूतले चेतः समुत्कण्ठते ।।"

यहाँ पर कोई स्पष्ट अलङ्कार नहीं है । रस के प्रधान होने से रसवद् अलंकार भी नहीं हो सकता फिर भी यह काव्य है ।

विश्वनाथ ने उपर्युक्त उदाहरण में 'विभावना' व 'विशेषोक्ति' निकालने का प्रयास किया है । परन्तु ये भाव मुखेन नहीं है अपितु खींचा तानी से निकाले गये हैं इसलिए 'मम्मट' ने उसे 'स्फुटालङ्कार – विरह' के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है । अतएव विश्वनाथ का खण्डन युक्ति संगत नहीं हैं ।

मम्मट के उत्तरवर्ती प्रायः सभी आचार्य मम्मट से प्रभावित हैं –

हेमचन्द्र – "अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम् ।"

वाग्भट्ट – "शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालङ्कारौ च काव्यम् ।"

---

१. "ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युश्चलास्थितयो गुणाः ।।"

काव्यप्रकाश – मम्मट अष्टम उंल्लास/१

२. "गुणवृत्त्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता ।"

काव्यप्रकाश – मम्मट अष्टम उल्लास

विश्वनाथ – विश्वनाथ ने मम्मट के काव्य लक्षण की कटु आलोचना करते हुए सिद्धान्त पक्ष के रूप में काव्य परिभाषा दी है – "वाक्यं रसात्मकं काव्यं" अर्थात् रसात्मक वाक्य को ही काव्य कहते हैं ।

जयदेव – "निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता, सालङ्काररसानेकवृत्तिर्वाक काव्यनामभाक् ।" [1]

विद्यानाथ – "गुणालङ्कार सहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ काव्यम् ।"

विद्याधर – "शब्दार्थौ वपुरस्य तत्र विबुधैरात्माम्यधायि ध्वनिः ।"

पंडित राज जगन्नाथ – "रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" [2] – रमणीय शब्द से उनका तात्पर्य अद्वितीय आनन्द से है । सहृदयों को जिसके अर्थ से बारम्बार आनन्द की अनुभूति होती है, वही शब्द काव्य है ।

इस प्रकार भरत से लेकर पंडित राज जगन्नाथ पर्यन्त काव्य लक्षण क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म की ओर उन्मुख हुआ है उनमें उत्तरोत्तर विकास क्रम दिखाई देता है ।

सिद्धान्त पक्ष :–

उपर्युक्त सभी लक्षणों का पुनरावलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि आचार्य मम्मट का लक्षण पूर्ववर्ती समस्त काव्य लक्षणों को आत्मसात् कर सामञ्जस्य स्थापित करने वाला है । आचार्य मम्मट ने 'अदोषौ' तथा 'सगुणौ' इन दो पदो के माध्यम से पूर्ववर्ती काव्य लक्षणों का समाहार करते हुए काव्य लक्षण का एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । आचार्य मम्मट ही ऐसे प्रथम लक्षणकार हैं जिन्होंने काव्य के गुण दोष का प्रश्न प्रस्तुत किया है पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के लक्षणों का साररूप होने से आचार्य मम्मटकृत लक्षण सर्वथा परिमार्जित, तार्किक एवं आदरणीय है तथा उत्तरवर्ती सभी आचार्यों को प्रभावित करने वाला है ।

काव्यदोष :–

आचार्य मम्मट ने अपने काव्य लक्षण में काव्य को दोषों से रहित होना चाहिए, ऐसा कहा है कितना ही सुन्दर काव्य हो पर यदि उसमें एक भी दोष आ जाता है तो वह उसके गौरव को क्षीण कर देता है । इसलिए मम्मट ने गुण और अलङ्कारों से पहले दोषों की चर्चा की है । कहा भी गया है – शरीर के संस्कार में भी पहले दोषापयन रूप संस्कार किया जाता है, फिर गुणाधानरूप संस्कार किया जाता है, तब उसके बाद अलङ्कारादि का क्रम आता है । वह न भी हो तो पहले दोषापयन तथा गुणाधानरूप संस्कार अपरिहार्य है । [3]

---

१. जयदेव / चन्द्रालोकः प्रथम मयूख – ७

२. 'रसगंगाधर' प्रथम अध्याय

३. "दुर्जनं प्रथमं वन्दे सज्जनं तदनन्तरम् ।
मुखप्रक्षालनात् पूर्वं गुणप्रक्षालनं यथा ।।"

आचार्य मम्मट ने दोषों का 'काव्यप्रकाश' में विस्तृत वर्णन किया है – दोष का सामान्य लक्षण करते हुए उन्होंने कहा है कि – "मुख्यार्थ का अपकर्ष जिससे होता है उसे दोष कहते हैं मुख्यार्थ का तात्पर्य रस है न कि वाच्य । अतः मुख्यतः रस के अपकर्ष जनक कारण को दोष कहते हैं । परन्तु उस रस का वाच्य (अर्थ) भी आश्रय होने से उस चमत्कारी वाच्य का अपकर्ष जनक भी दोष कहलाता है । वह अर्थ दोष कहलाता है चूंकि शब्द, वर्ण, रचना इत्यादि रस तथा वाच्य दोनों के सहायक होते हैं, इसलिए जब उक्त दोष उनमें भी हो तो वह पद दोष कहलाता है ।[1]

इस प्रकार दोष के मुख्य तीन प्रकार हुए – १. पद दोष, २. अर्थ दोष तथा ३. रस दोष ।

१. पद दोष :– विशिष्ट लक्षण –

"दुष्टं पदं श्रुतिकटु च्युतसंस्कृत्यप्रयुक्तमसमर्थम् ।
निहतार्थमनुचितार्थं निरर्थकमवाचकं त्रिधाऽश्लीलं ।।
सन्दिग्धमप्रतीतं ग्राम्यं नेयार्थमथ भवेत् क्लिष्टम् ।
अवमिृष्टविधेयांश विरूद्धमतिकृत् समासगतमेव ।।"

अर्थात् (१) श्रुतिकटु, (२) च्युतसंस्कृति, (३) अप्रयुक्त, (४) असमर्थ, (५) निहतार्थ, (६) अनुचित्तार्थ, (७) निरर्थक, (८) अवाचक, (६) तीन प्रकार के अश्लील, (१०) संदिग्ध, (११) अप्रतीत, (१२) ग्राम्य, (१३) नेयार्थ, (१४) क्लिष्ट, (१५) अविमृष्टविधेयांश, (१६) विरूद्धमतिकृत ।

ये १६ विशिष्ट काव्य दोष है जिनमें प्रथमतः १३ दोष पदगत तथा समास गत दोनों प्रकार के हैं, जबकि अंतिम ३ दोष केवल समासगत हैं ।

वाक्य दोष :–

"अपास्य च्युतसंस्कारमसमर्थ निरर्थकम् ।
वाक्येऽपि दोषाः सन्त्येते पदस्यांशेऽपि केचन ।" [2]

अर्थात् च्युतसंस्कार, असमर्थ और निरर्थक इन तीनों दोषों को छोड़कर उपर्युक्त १३ दोष वाक्य में भी होते हैं तथा कुछ दोष पद्याशं में भी होते हैं यथा –

---

१. "मुख्यार्थहर्तिदोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद् वाच्यः ।
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वापि सः ।।"
काव्यप्रकाश – मम्मट, सप्तम उल्लास/१

२. "काव्यप्रकाश – मम्मट, सप्तम उल्लास/४

"सरातु वो दुश्च्यवनो भावुकानां परम्पराम ।
अनेडमूकताद्यैश्च द्यतु दोषैरसम्मतान् ।।

यहाँ पर 'दुश्च्यवन' इन्द्र अर्थ में तथा 'अनेडमूक' शब्द 'मूकबधिर' अर्थ में अप्रयुक्त है । अतः अनेक पदों में होने से 'वाक्यगत दोष' है ।

आचार्य मम्मट ने इन सामान्य वाक्यदोषो के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट वाक्यदोष भी बताए है –

प्रतिकूलवर्णमुपहतलुप्तविसर्गं विसन्धि हतवृत्तम् ।
न्यूनाधिककथितपदं पतत्प्रकर्षं समाप्तपुनरात्तम् ।।
अर्थान्तरैकवाचकमभवन्मतयोगमनभिहितवाच्यम् ।
अपदस्थपदसमासं संकीर्णं गर्भितं प्रसिद्धिहतम् ।।
भग्नप्रक्रममक्रमममतपरार्थं च वाक्यमेव तथा ।।[१]

ये २१ वाक्यगत दोष कहे गये हैं ।

पदांशगत दोष :–

पद के एक देश या एक अंश में रहने के कारण 'पदैकदेशगतदोष' या 'पदांशगत' दोष होता है । श्रुतिकटु, निहतार्थ, निरर्थक, अवाचक, अश्लीलता, संदिग्धत्व तथा नेयार्थ भेद से यह सात प्रकार का होता है । उदाहरणतया –

"अलमतिचपलत्वात् स्पप्नमायोपमत्वात्
परिणतिविरसत्वात् संगमेनागनायाः ।
इति यदि शतकृत्त्वस्तत्त्वमालोचयाम ।
स्तदपि न हरिणाक्षौ विस्मरत्यन्तरात्मा ।।"

यहाँ पर 'त्वात्' यह पदांश 'श्रुतिकटु' दोष से दूषित है ।

२. अर्थ दोष :–

जहाँ पर अन्य शब्दों द्वारा कथित होने पर भी विवक्षित अर्थ दोष युक्त रहता है, वहाँ पर 'अर्थदोष' रहता है ।[२]

---

१. काव्यप्रकाश – मम्मट, सप्तम उल्लास / ५,६

२. "यत्र विवक्षित एवार्थोन्यथा अभिधानेऽपि दुष्यति सोऽर्थदोषः ।"

अर्थोऽपुष्टः कष्टो व्याहतपुनरूक्तदुष्क्रमग्राम्याः ।
सन्दिग्धो निर्हेतुः प्रसिद्धिविद्याविरूद्धश्च ।।
अनवीकृतः सनियमानियम विशेषाविशेषपरिवृत्ताः ।
साऽऽकांक्षोऽपदयुक्तः सहचरभिन्नः प्रकाशितविरूद्धः ।।
विध्यनुवादायुक्तस्त्यक्तपुनः स्वीकृतोऽश्लीलः ।[1]

उदाहरण –

"भूपालरत्न ! निर्दैन्यप्रदानप्रथितोत्सव । विश्राणय तुरङ्ग में मातङ्ग वा मदालसम् ।"

यहाँ पर 'तुरंग' और 'मातंग' में जो याचना अर्थ का क्रम है, वह लोकशास्त्र विरूद्ध है । अतः यहाँ पर 'दुष्क्रमत्व' अर्थदोष है ।

३. रस दोष :–

आचार्य मम्मट ने 'रसदोषों' का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है । रसास्वाद के बाधक तत्वों को 'रसदोष' कहते हैं । निर्वेध, ग्लानि, शंका आदि व्याभिचारी भाव, श्रृंगार, करूण, हास, शोकादि स्थायी भाव की स्व–शब्दवाच्यता ही दोष है । इसी प्रकार अनुभाव, विभाव की क्लिष्ट कल्पना से अभिव्यक्ति, रस के प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण, असमय में रस का वर्णन, रस के अप्रधान अंगों का वर्णन, रस के प्रधान साधनों का विस्मरण, प्रकृति का प्रतिकूल वर्णन इस प्रकार ये सब रसदोष के अन्तर्गत आते हैं, इनकी संख्या १३ है ।[2] उदाहरणतया –

"तामनङ्गजयमङ्गलश्रियं किञ्चिदुच्चभुजमूललोकिताम् । नेत्रयोः कृतवतोऽस्य गोचरे कोऽप्यजायत रसो निरन्तरः ।।"

यहाँ पर श्रृंगार रस का बोध कराने के लिए प्रयुक्त हुआ रस शब्द 'स्व–वाच्यत्व' दोष से दूषित है अतः इससे रस का अपकर्ष होता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त काव्य दोषों का विवेचन करने से ज्ञात होता है कि आचार्य मम्मट के काव्य दोषों को पाँच भागों में रख सकते हैं ।

---

१. काव्यप्रकाश – मम्मट, सप्तम उल्लास/७–६

२. "अङ्गिनोऽननुसन्धानं प्रकृतीनां विपर्ययः ।
अनङ्गस्याभिधानं च रसे दोषाः स्युरीदृशा ।।"

काव्यप्रकाश – मम्मट ७/१४

आदि काव्य एवं आदि कवि

वैदिक स्तोत्र मन्त्रों के बाद लोक में काव्यकृति के रूप में सर्वप्रथम 'रामायण' का प्रादुर्भाव हुआ । संस्कृत साहित्य में 'वाल्मीकि' आदि कवि तथा उनके द्वारा विरचित 'रामायण' ग्रन्थ 'आदिकाव्य' है । ऐतिहासिक काल के अरूणोदय में रची जाने पर भी भारतीय संस्कृति का जैसा समुज्ज्वल एवं स्वाभाविक चित्रण इस महाकाव्य में अङ्कित है, वैसा शायद ही विश्व के किसी भी अन्य महाकाव्य में हो ।

भारत–वर्ष की महती साधना एवं संकल्प का उज्ज्वल इतिहास इसमें सुरक्षित है । मनुष्य में चूड़ान्त आदर्श की स्थापना के लिए ही महाकवि ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है । इसमें एक ओर अपने महान् निर्माता की अनुपम पाण्डित्य–प्रतिभा का समावेश है तो दूसरी ओर जिस देश की जिस धरती पर इस काव्य का निर्माण हुआ उस पूजनीय देश के साहित्यिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन के आदर्शों का, विभिन्नताओं का, समताओं का एक साथ समावेश भी है । यह अपने मूल रूप में संस्कृत का आदि महाकाव्य व परवर्ती काव्यों का प्रेरणा स्त्रोत ही नहीं, प्रत्युत भारतीय परिवारों की धर्म–पोथी, भारतीय आचार–विचार, संस्कार–संबन्धों का आदर्श–ग्रन्थ तथा भारत की चिरन्तर भक्ति–भावना, ज्ञान–भावना और मैत्री–भावना की प्रतिनिधि–पुस्तक भी है । कविवर रवीन्द्र ने रामायण की इसी सर्वाङ्गीणता को लक्ष्य करते हुए वाल्मीकि को 'विश्व–कवि' के रूप में स्वीकार किया है ।[१]

रामायण के प्रणेता 'वाल्मीकि' विमल प्रतिभा से सम्पन्न, दैवी गुणों से मण्डित, आर्ष चक्षु से युक्त, महनीय कवि है । उनके सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है कि जब महर्षि ने व्याध के बाण से बिंधे हुए क्रौञ्च के लिए विलाप करने वाली क्रौञ्ची का करूण–क्रन्दन सुना, तो उनके कण्ठ से अकस्मात् करूणामयी वाक्धारा फूट पड़ी थी –

– "मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः । यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।" १/२

जिसका तात्पर्य यह है कि "हे निषाद् ! तुमने काम से मोहित इस पक्षी को मारा है, अतः तुम कभी प्रतिष्ठा प्राप्त न करो ।"

---

१. "रामायण का प्रधान विशेषण तो यही है कि उसमें घर की ही बातें विस्तृत रूप में वर्णित हुई है । पिता–पुत्र में, भाई–भाई में, स्वामी–स्त्री में जो धर्म–बन्धन है, भक्ति और प्रीति का सम्बन्ध है उसको रामायण ने इतना महान् बना दिया है कि वह सहज ही महाकाव्य के उपयुक्त हो गया है । हिमालय जितने ऊँचे, सागर जितने गम्भीर विचारों का एक साथ यदि किसी ग्रंथ में समावेश हो पाया है तो वह रामायण ही है । अपनी इन मौलिक विशेषताओं से ही महामहिम वाल्मीकि 'विश्वकवि' के रूप में पूजित हो रहे हैं ।"

– कविवर रवीन्द्र

महर्षि की इस करूणा से निकली वाणी को सुनकर स्वयं ब्रह्मा उपस्थित हुए और उन्होंने उनसे रामचरित लिखने को कहा। 'रामायण' की रचना इसी प्रेरणा का परिणाम और वाल्मीकि 'अनुष्टुप्' छन्द के प्रथम आविष्कारक माने जाते हैं। यद्यपि वैदिक साहित्य के अन्तर्गत उपनिषदों में 'अनुष्टुप्' छन्द का प्रयोग इससे पहले भी मिलता है। परन्तु लौकिक संस्कृत साहित्य में अनुष्टुप् छन्द के सर्वप्रथम प्रयोग का श्रेय वाल्मीकि को ही प्राप्त है।

रामायण में पुरुषोत्तम राम का जीवन–चरित्र वर्णित है। इसकी वर्तमान–प्रति में चौबीस–हजार श्लोक है। उतने ही जितने गायत्री मन्त्र के अक्षर है। विद्वानों का मत है कि प्रत्येक हजार श्लोक का पहला अक्षर गायत्री मन्त्र के ही अक्षर से आरम्भ होता है। इसलिए इस आदिकाव्य को "चतुर्विंशती साहस्त्री संहिता" भी कहते है।

यद्यपि वाल्मीकि रामायण का प्रचार सम्पूर्ण भारत में है। तथापि सब प्रान्तों में रामायण का पाठ एक जैसा नहीं है। पाठ–भेद के अतिरिक्त इसकी कई प्रतियों में कुछ ऐसे श्लोक और सर्ग के सर्ग पाए जाते हैं आजकल इसके मुख्यतः तीन पाठ (संस्कार) है – १. दाक्षिणात्य पाठ [१], २. गौडीय पाठ [२], ३. पश्चिमोत्तरीय पाठ [३]।

इन संस्करणों में पाठ–भेद का प्रधान कारण सम्भवतः यह प्रतीत होता है कि रामायण आरम्भ में लिखित रूप में नहीं था स्तुति पाठक–गण इसे कठाङ्ग सुनाते थे। इस प्रकार कई शताब्दियों बाद श्लोकों के क्रम परिवर्तित हो गए। ग्रन्थ लिखते समय सभी पाठ उसी क्रम में लिख दिए गये, किन्तु मुख्य कथानक की दृष्टि से इनमें मौलिक अन्तर नहीं है।

रामायण में वाल्मीकि ने राम के बाल्यावस्था के साथ, यौवन की वीरता व प्रौढ़ावस्था के गाम्भीर्य का अद्वितीय चित्रण प्रस्तुत किया है। मानव–जीवन के चारों वर्णों व चारों आश्रमों का आदर्श रूप यदि कहीं मिल सकता है तो वह 'वाल्मीकि रामायण' ही है।

काल–क्रम की दृष्टि से विकास के आदिम–युग में रचित होने पर भी वाल्मीकि की वाणी में सौंदर्य–सृष्टि का चरमोत्कर्ष है। महनीय काव्य–कला का अद्वितीय निदर्शन है। 'फ्लाउबेर' के शब्दों में महनीय कला इन वस्तुओं की साधना से मण्डित होती है। [४]

---

१. दाक्षिणात्य पाठ – गुजराती प्रिन्टिंग प्रेस (बम्बई), निर्णय सागर प्रेस (बम्बई) तथा दक्षिण के संस्करण।

२. गौडीय पाठ – गौरेसियों (पेरिस) तथा कलकत्ता संस्कृत कालेज के संस्करण।

३. पश्चिमोत्तरीय पाठ – दयानन्द महाविद्यालय (लाहौर) का संस्करण।

४. फ्लाउबेर – "मानव–सौख्य की अभिवृद्धि, दीन आर्तजनों का उद्धार, परस्पर में सहानुभूति का प्रसार, हमारे और संसार के बीच सम्बन्ध के विषय में नवीन या प्राचीन सत्यों का अनुसन्धान्, जिससे इस भूतल पर हमारा जीवन उदात्त तथा ओजस्वी बन जाए या ईश्वर की महिमा झलके।"

'फ्लाउबेर' ने जिन वस्तुओं का उल्लेख किया है उनका यह कथन 'वाल्मीकि रामायण' पर अक्षरशः घटित होता है । मानव–जीवन को उदात्त व ओजस्वी बनाने के लिए रामायण में जिन आदर्शों की सृष्टि की गयी है वह मानव–मात्र के लिए परम कल्याणी है ।

आलोचना–जगत् में इस आदिकाव्य को "सिद्ध–रस–प्रबन्ध" कहा जाता है । ऐसा प्रबन्ध जिसमें रस की भावना नहीं करनी पड़ती, वरन् रस स्वयं ही आस्वाद रूप में परिणत हो जाता है – "सिद्ध आस्वादमात्रशेषः, न तु भावनीयो रसो यस्मिन् ।" (अभिनवगुप्त) ।

इसी सम्बन्ध में आनन्दवर्धन का एक प्रख्यात श्लोक द्रष्टव्य है –

"सन्ति सिद्धरसप्रख्या ये च रामायणादयः ।
कथाश्रया न तैर्योज्या स्वेच्छा रसविरोधीनी ।।"
(पृ० १४४)

'अभिनवगुप्त' ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है – "रामायण में श्रीराम का नाम सुनते ही प्रजावत्सल, नरपति, आज्ञाकारी पुत्र, स्नेही भ्राता, विपद्–ग्रस्त मित्रों के सहायक बन्धु का कमनीय चित्र हमारे मानस पटल पर रेखाङ्कित हो जाता है । जनकनन्दिनी सीता का नाम ज्योंहि हमारे श्रवण को रसासिक्त करता है त्यों ही हमारे आँखों के सामने अलौकिक शील की भव्य मूर्ति झलकने लगती है । वाल्मीकि रामायण से हमारा हृदय इतना रसासिक्त हो जाता है कि हमारे लिए राम व सीता किसी अतीत युग की स्मृति मात्र न होकर वर्तमान काल के जीवन्त प्राणी बन जाते हैं । इसलिए रामायण को 'सिद्धरस' काव्य कहा जाता है ।[१]

वाल्मीकि हमारे 'आदि कवि' ही नहीं वरन् 'आदि आलोचक' आचार्य भी है । काव्य का नैसर्गिक गुण क्या है ? उसमें किन उपादानों का ग्रहण होता है ? इसका उत्तर हमें वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध होता है । संस्कृत साहित्य में महाकाव्य की कल्पना रामायण के साहित्यिक विश्लेषण का ही परिणाम है । इस महाकाव्य का सर्वाङ्गीण पुनरीक्षण करके ही आलोचकों ने नए–नए साहित्यिक सिद्धान्त को खोज निकाला और उनका उपयोग कर संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाया ।

काव्य का प्राण तत्व 'रस' है, काव्य का आत्मा 'रस' है – यह विचार संस्कृत के आलोचना जगत् को आदि कवि वाल्मीकि की ही महती देन है । इसका प्रथम परिचय हमें उसी समय मिल जाता है जब अपने सहचर के वियोग में सन्तप्त क्रौञ्ची के करूण, विलाप को सुनकर वाल्मीकि के हृदय से शोक, श्लोक के रूप में परिणत होकर छलक पड़ा – "शोकः श्लोकत्वमागतः" अर्थात् शोक और श्लोक का समीकरण । यह तथ्य

---

१ द्रष्टव्य – संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय (पृ० ३२–३३)

वाल्मीकि की सबसे बड़ी देन मानी जाती है । इस तथ्य की ओर इङ्गित करते हुए कालिदास[1] और आनन्दवर्धन[2] की उक्ति है ।

इस प्रकार आदि कवि की करूणासरित् काव्यसरिता में विगलित हो गयी । उस रोमाञ्चकारी महनीय क्षण में अचानक ही वाल्मीकि दूसरे प्रजापति बन बैठे और अभूतपूर्व सारस्वत रचना कर बैठे । उनके हृदय में छिपी भावात्मकता का सरोवर उमड़ आया और इस गम्भीर समीकरण का तात्पर्य यह हुआ कि जब तक कवि का हृदय किसी तीव्र वेदना से आहत नहीं होता, जब तक कोई घटना उसके हृदय को झकझोर नहीं देती तब तक कवि उत्तम, विशुद्ध कविता का निर्माण नहीं कर सकता । जब तक स्वयं कवि का हृदय रस, भाव का अनुभव नहीं करता, तब तक वह किसी अन्य पर उस रस, भाव का प्रकटीकरण नहीं कर सकता । अतः रसात्मक कविता के लिए हृदय को रसदशा में पहुँचाना होता है । तीव्रतम् अन्तःकरण के साथ ही उसकी सार्थक अभिव्यक्ति बाहर अवश्य होती है । अतः 'शोक' और 'श्लोक' का यह मर्म आलोचना जगत् को वाल्मीकि की ही महत्वपूर्ण देन है ।

विकसनशील महाकाव्य :—

वाल्मीकि कृत 'रामायण' विकसनशील महाकाव्य की श्रेणी में आता है । इसमें तत्कालीन प्रथाओं, संस्कारों, धर्म—कर्म, वेशभूषा इत्यादि सभी रूपों का सन्निवेश है । 'रामायण' सुसंस्कृत समाज के लिए 'आचरणसंहिता' के रूप में भी ग्राह्य हुआ । इसका अध्ययन—अनुकरण शिष्ट समाज में ब्यवहार हेतु आवश्यक हो गया ।

रामायण में 'कौटुम्बिक संश्लेष' के लक्ष्यों का बाहुल्य है । राम, लक्ष्मण व भरत की चरितावली कुटुम्ब संश्लेष का अभ्यतम् आदर्श प्रस्तुत करती है । अन्यथा न तो राम अपना राज्याधिकार छोड़ते न भरत उसे सहजता से ठुकराते । जब सीता अत्रि मुनि के आश्रम में अनसूया से मिलती है तब उन्हें अनसूया पतिव्रत्य धर्म का उपदेश देती हैं । चारों भाइयों में अद्वितीय प्रेमभाव है । सभी प्रकार की समृद्धि व शान्ति है । जहाँ कौटुम्बिक अनबन होती है वहीं विनाश का ताण्डव होता है ।

जिस सत्याग्रह के बल पर भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की उसका प्रथम उच्च स्तरीय रूप वाल्मीकि रामायण में भरत द्वारा राम को अयोध्या लौटा लाने के प्रसङ्ग में उनके कथन में मिलता है । अन्त में भरत को राम

---

१. "निषादविद्धाण्ऽजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।।"

रघुवंश

२. "काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा ।
क्रौञ्चद्वन्द्वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ।।"

ध्वन्यालोकः १/५

से यह कहना ही पड़ा, "जब तक आप मुझ पर प्रसन्न नहीं होंगे मैं यहीं पर बैठा रहूँगा जैसे – साहूकार के द्वारा निर्धन किया गया ब्राह्मण उपवास किए हुए उसके घर पर पड़ा रहता है । इसी प्रकार मैं इस कुटिया के सामने लेट जाऊँगा और जब तक आप मुझे अयोध्या लौटने का वचन नहीं देते तब तक मैं यही पड़ा रहूँगा ।[1]

रामायण की भौगोलिक परिधि अतिशय व्यापक है । इसके अन्तर्गत उत्तर व दक्षिण भारत का अधिकांश भाग आ जाता है और तत्कालीन भारत की प्रायः सभी जातियों को राम–मिलन का पुण्य अवसर प्राप्त होता है । प्रकृति के रमणीय उपादानों से बातचीत करने की रीति भी वाल्मीकि ने ही सर्वप्रथम अपने ग्रन्थ में प्रयुक्त की है । जिसका परवर्ती कवियों ने अपने ग्रन्थ में अधिकाधिक प्रयोग किया है ।

रामायण एक उपजीव्य काव्य :–

परवर्ती कवियों के प्रायः सभी कोटि के काव्यों के लिए रामायण 'उपजीव्य' माना गया है ।

कतिपय प्रतिभाशाली कवियों द्वारा रचित कुछ ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते हैं, जिनसे कुछ प्रेरणा लेकर परवर्ती कवि अपने काव्यों का निर्माण किया करते हैं । ऐसे ही काव्यों को हम व्यापक प्रभाव–सम्पन्न होने के कारण 'उपजीव्य काव्य' के नाम से सम्बोधित करते हैं । ऐसे उपजीव्य काव्य संस्कृत साहित्य में दो हैं – १. रामायण, २. महाभारत ।

इनमें आदि कवि विरचित रामायण तो काव्यों तथा अन्य काव्य विधाओं को विषयनिर्देश देने में 'अक्षुण्ण–भण्डार' तथा अक्षय स्त्रोत है । यह ऐसी पुण्यसलिला गंगा है जिसमें डूबकर कविगण तथा पाठक स्वयं को पवित्र मानते हैं । काव्य के उपादान, वस्तु–विन्यास, चरित्र–चित्रण, प्रकृति–चित्रण, रस–गुण–रीति–वृत्ति, अलङ्कार, लक्षणा, व्यञ्जना, छन्दादि का उत्तम रूप इसी ग्रन्थ में निखरा है । जिससे प्रभावित होकर परवर्ती कवियों में यह नियम बन गया है कि कवि बनने के पहले कवि कृत्तित्व को रामायण के अञ्जन से सम्भावित होना आवश्यक है ।

संस्कृत, प्राकृत व हिन्दी के कई प्रमुख काव्य व नाटक रामायण को आधार बना कर रचे गये हैं । रघुवंश, सेतुबद्ध, जानकी हरण, रावणवध, प्रतिमा–नाटकम्, अभिषेक नाटकम्, उत्तररामचरितम्, अनर्घराघव, प्रसन्नराघव, उन्मत्तराघव, हनुमन् नाटक, बाल–रामायण आदि अनेकानेक ग्रन्थों का प्रेरणा–स्त्रोत रामायण ही रहा है ।

---

१. "अनाहारो निरालोको धनहीनो यथा द्विजः ।
शेष्ये पुरस्ताच्छालायां यावन्मां प्रतियास्यति ।।"

वाल्मीकि रामायण, भरतानुशासनम्, १४

किसी काव्य की उपादेयता प्रमाणित करने का प्रमुख आधार तथा उनके मानदण्ड क्या होने चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर हमें सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण में दृष्टिगत होता है ।

रामायण में ऐसे मानदण्डों की विपुलता है । युद्ध सम्बन्धी मन्त्रणा को ही देखिए – रावण को अपने मन्त्रियों और राम का अपने सहायकों से विचार–विमर्श करना, परवर्ती राजनीति के लिए व्यापक–रूप से हितकारी हुआ । शरणागत के साथ कैसा व्यवहार किया जाए यह जानने के लिए रामायण ही अवलोकनीय है ।[१]

शिष्टाचार की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति है जब राजा दशरथ जनक के घर आना चाहते हैं, वे अनुमति की प्रतीक्षा में है कि जनक कहते हैं – "स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राजमिदं तव"

विभीषण द्वारा रावण से कहे गए वचन शाश्वत सत्य के अभिव्यञ्जक है ।[२]

हजारो वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों के जीवन–यापन के सजीव–चित्र की झाँकी प्रस्तुत करने में रामायण अनुपम है । उस समय आर्यों का आचरण कैसा था ? नगर–व्यवस्था, शासन–प्रणाली, युद्ध व्यवस्था, यातायात के साधन, कला–कौशल तथा प्रेम व विवाह का क्या आदर्श था ? लोगों की पारलौकिक इच्छाएँ क्या थी ? इन समस्त प्रश्नों का उत्तर वाल्मीकि रामायण ही है ।

संक्षेप में वाल्मीकि रामायण उस विशाल प्राचीन वट–वृक्ष के समान है जो सबको अपनी शीतल छाया प्रदान करता हुआ प्रकृति की महान् विभूति के समान सिर उठाकर खड़ा है । प्राचीन संस्कृति सत्य–धर्म, यज्ञों का महत्त्व व जीवन के उच्चतम् मानदण्ड प्रस्तुत करता है । सामाजिक दृष्टि से पति–पत्नी के सम्बन्ध, पिता–पुत्र के कर्त्तव्य, गुरु–शिष्य का पारस्परिक व्यवहार, भाई–भाई का प्रेम, समाज के प्रति उत्तरदायित्व और आदर्श जीवन की अभिव्यक्ति करता है । सांस्कृतिक दृष्टि से यह रामराज्य का आदर्श, पाप पर पुण्य की विजय, लोभ पर त्याग का प्राबल्य, अत्याचार पर सदाचार की प्रधानता, वानरों में संस्कृति का प्रचार, जीवन में नैतिकता और कर्त्तव्य–पालन हेतु सर्वस्व त्याग का आदर्श प्रस्तुत करता है ।

---

१. "विनिष्टः पश्यतस्तस्यरक्षिणः शरणं गतः ।
आनीय सुकृतं तस्य सर्व गच्छेद रक्षितः ।।
एषं दोषो महानत्र प्रपन्ना नामरक्षणे ।
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशम् ।।"

२. "सुलभाः पुरूषाः राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ताश्रोता च दुर्लभः ।।" – वाल्मीकि रामायण ३/३५/२

राजनैतिक दृष्टि से राजा का कर्त्तव्य, राजा–प्रजा सम्बन्ध, शत्रु–संहार, सैन्य–संचालन आदि का विस्तृत वर्णन इसमें मिलता है। वर्णाश्रम व्यवस्था, ब्रह्मचर्य इत्यादि विषयों पर प्रकाश डालने वाला यह ऐसा प्रकाश–स्तम्भ है जिसके आलोक में भारतीय संस्कृति व सभ्यता का साक्षात् दर्शन होता है।

महाकाव्य :—

महाकाव्य का स्वरूप क्या हो ? उनमें किन–किन उपादानों को ग्रहण किया जाए ? इन सब प्रश्नों के उत्तर के लिए हमें महाकाव्य का शास्त्रीय लक्षण किन्हीं प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता है। लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही लक्षण की कल्पना की जाती है – इस नीति के आधार पर 'वाल्मीकि रामायण' का भली–भाँति विश्लेषण करके आलोचकों ने महाकाव्य का शास्त्रीय लक्षण प्रस्तुत किया और उसे अलंकार–ग्रन्थों में लिपिबद्ध किया।

काव्य–शास्त्रियों के विविध–वर्ग तथा विविध–परिपाटी होने के कारण भारतीय काव्य–शास्त्र में महाकाव्य–लक्षण के कई आधार है। भरत से लेकर आज तक आचार्यों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से महाकाव्य का लक्षण प्रस्तुत किया है। इन आलंकारिकों में नव–सर्जनात्मक–युग की देन आचार्य दण्डी का महाकाव्य–लक्षण सर्वप्राचीन है। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में महाकाव्य के लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उन्होंने महाकाव्य को अत्यन्त महत्वपूर्ण काव्य–विधा के रूप में परिभाषित किया है। वस्तुतः 'महाकाव्य' साहित्य की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधा मानी जाती है। इसमें प्रायः मानव–जीवन की महत्वपूर्ण चेतनाओं व पक्षों का कलात्मक चित्रण होता है। यही कारण है कि भामह से लेकर आज तक समस्त आलङ्कारिकों ने 'महाकाव्य' की महत्ता को एक स्वर में स्वीकार किया है। इसमें किसी भी ऐतिहासिक व पौराणिक महापुरूष के ख्यातवृत्त को लेकर जीवन की सर्वाङ्गीण व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। इसमें विषय की महत्ता और उदात्तता का अंकन किया जाता है और नायक को समाज के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिससे वह अपने जीवन के माध्यम से तत्कालीन समाज के स्वरूप को प्रस्तुत करने में समर्थ हो जाए।

महाकाव्य के स्वरूप को भली–भाँति समझने के पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध में आलंकारिकों द्वारा समय–समय पर दिए गए लक्षणों पर एक विहंगम दृष्टि डाल ली जाए।

भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' काव्यशास्त्र का सर्वप्राचीन ग्रन्थ है। इसके पूर्व काव्य का उल्लेख तो मिलता है परन्तु महाकाव्य पर कोई लक्षण नहीं प्राप्त होता है। तदन्तर 'अग्निपुराण' में सर्वप्रथम काव्यस्वरूप का उल्लेख मिलता है। अग्निपुराण के समय के विषय में मतभेद है। एक मत इन्हें भामह से पहले मानता है। दूसरा मत इन्हें बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी का मानता है। अग्निपुराण के अनुसार – 'ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य यही वाङ्मय कहलाता है। इस वाङ्मय में शास्त्र, इतिहास और काव्य तीनों ही आते हैं।'[१]

---

१. अग्निपुराण, अध्याय ३३७/१,२

अग्निपुराण में 'महाकाव्य' की परिभाषा इस प्रकार की गई है – "महाकाव्य का विभाजन सर्गों में होता है। इसका आरम्भ संस्कृत से होता है। स्वरूप को न छोड़ते हुए, अन्य भाषा प्राकृत आदि से आरम्भ करना भी दोष नहीं है। इसका इतिवृत्त इतिहास की कथा से सम्बद्ध हो अथवा सभ्यों में प्रचलित हो। मन्त्रणा, दूतप्रयाग, युद्धादि का अतिविस्तार न हो। शक्वरी, अतिजगती, अतिशक्वरी, त्रिष्टुप्, पुष्पिताग्रा, वक्त्रादि छन्दों से समन्वित हो। सर्गान्त में छन्दः परिवर्तन हो और सर्ग भी अत्यन्त संक्षिप्त न हो। अतिशक्वरी आदि छन्दों के साथ–साथ कोई सर्ग मात्रा छन्दों से भी रचित होना चाहिए। जिस पद्धति में सज्जनों का अनादर होता है, वह निन्दित है, अतः यहाँ त्याज्य है।

नगर–वर्णन, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्र, सूर्य, आश्रम, पादप, उद्यान, जलक्रीड़ा, मद्यपानादि उत्सवों तथा दूतीवचन, कुलटाओं के आश्चर्यजनक चरित्रों के साथ–साथ प्रगाढ़ अन्धकार, प्रचण्ड पवन आदि लोकातिशायी तत्त्वों की चर्चा से महाकाव्य संयुक्त होना चाहिए। इसका कथानक सब प्रकारकी वृत्तियों से समन्वित हो, सब प्रकार के भावों से संकलित हो, रीति एवं रस से संयुक्त हो तथा अलंकारों से पुष्ट हो। इस प्रकार के गुणों से संयुक्त महाकाव्य का रचयिता 'महाकवि' कहलाता है। इस प्रकार के महाकाव्य में नानाविध वाक्कुशलता का प्राधान्य होते हुए भी इसकी आत्मा तो रस ही है। अतः कवि व्यर्थ के वाणीविक्रम को छोड़कर उसका कलेवर रसासिक्त कार्य और नायक के नाम की कथा से चतुर्वर्ग की फलप्राप्ति को दिखलाए। यह महाकाव्य नायक के नाम से ही विख्यात होता है। इसमें कौशिकी वृत्ति की प्रधानता होती है जिससे महाकाव्य में कोमलता आती है।" [1]

भामह :–

महाकाव्य की विधिवत् परिभाषा देने वाले प्रथम आंलकारिक आचार्य 'भामह' हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार' में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार किया है –

"सर्गबन्धो महाकाव्यं महतांच महच्च यत्।
अग्राम्यशब्दमर्थ्य च सालंकारं सदाश्रयम्॥
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्।
पंचभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्यांख्येयमृद्धिमत्॥
चतुर्वर्गभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्॥"

भामह के इस महाकाव्य–लक्षण में कोई भी मौलिक एवम् आधारभूत विशेषता छूटी नहीं है। उनके

1. अग्निपुराण, अध्याय ३३७/२४–३३

मतानुसार– "महाकाव्य उसे कहेंगे जो सर्गबद्ध, आकार से बड़ा, ग्राम्य शब्दों से रहित, अर्थ–सौष्ठव से सम्पन्न, अलंकार से युक्त, सदाश्रित, मन्त्रणा, दूत–प्रेषण, अभियानयुद्ध, नायक के अभ्युदय तथा नाटकीय पंचसंधियों से समन्वित अनतिव्याख्येय एवम् ऋद्धिपूर्ण हो । यों तो उसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों का निरूपण हो, किन्तु प्रधानता अर्थ की रहे । लौकिक व्यवहार का अतिक्रमण न हो तथा सभी रस व्यापक रूप से विद्यमान हो ।"

दण्डी :–

भामह के बाद आचार्य दण्डी ने अपने ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में महाकाव्य के लक्षण में इतना और जोड़ा कि नायक चतुरोदात्त होता है तथा प्रबन्ध रसानुभूतिप्रधान होता है । उनका यह भी मानना है कि लोकरंजन महाकाव्य का लक्ष्य होता है ।[१]

रूद्रट :–

आचार्य रूद्रट ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में महाकाव्य की परिभाषा करते हुए महाकाव्य के कथानक के दो भेद बताए हैं – १. उत्पाद्य और २. अनुत्पाद्य ।

इसके अतिरिक्त उन्होंने नायक के साथ प्रतिनायक एवम् अवान्तर कथानक (उपकथानक) को भी महत्त्वपूर्ण बतलाया है ।[२] रूद्रट द्वारा दी गई महाकाव्य की परिभाषा में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उन्होंने सामयिक युग के अनेकविध रूपों, पक्षों, घटनाओं आदि को महाकाव्य में अङ्कित करने के निर्देश दिए हैं । रूद्रट द्वारा दिए गए महाकाव्य के लक्षण में दी गयी बातों को देखकर यह प्रतीत होता है कि उस समय तक महाकाव्य का स्वरूप काफी व्यापक हो चुका था ।

विश्वनाथ :–

आचार्य विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यो द्वारा दी गयी महाकाव्य की परिभाषा को मात्र संकलित करके समवेत रूप में 'साहित्यदर्पण' में प्रस्तुत किया है । उन्होंने महाकाव्य का लक्षण करते हुए कहा है[३] – "जिसमें सर्गो का निबन्धन हो, वह महाकाव्य कहलाता है । इसमें धीरोदात्तादि गुणों से युक्त एक देवता अथवा कुलीन क्षत्रिय नायक होता है । कहीं–कहीं एक ही वंश के कुलीन बहुत से राजा नायक होते हैं । श्रृंगार, वीर तथा शान्त में से कोई एक रस अङ्गी होता है । अन्य रस अङ्ग (गौण) होते हैं । नाटक की प्रायः मुख प्रतिमुखादि सभी सन्धियाँ होती है । कथावस्तु ऐतिहासिक अथवा लोकप्रसिद्ध सज्जन सम्बन्धी होती है । धर्म,

---

१. 'चुतरोदात्तनायकम्' १/१५ दण्डी–'काव्यादर्श'

"सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरूपेतं लोकरञ्जकम् ।

काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सालङ्कृति ।"

दण्डी–काव्यादर्श १/१६

रूद्रट – 'काव्यालंकार' १६/२–१९

साहित्यदर्पण ६/३१५–३२४

अर्थ, काम, मोक्ष में से एक प्रधान प्रयोजन होता है ।

कथा का प्रारम्भ आर्शीवाद, नमस्कार या वर्ण्यवस्तु के निर्देश से होता है । कहीं–कहीं खलों की निन्दा व सज्जनों का गुण–वर्णन होता है । न बहुत छोटे, न ही बहुत बड़े कम से कम आठ सर्ग अवश्य होते हैं । प्रत्येक सर्ग एक ही छन्द में निबद्ध होता है, परन्तु प्रत्येक सर्ग का अन्तिम छन्द भिन्न होता है । कहीं–कहीं एक ही सर्ग में अनेक छन्दों का भी प्रयोग होता है । सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना दे दी जाती है ।

जहाँ तक महाकाव्य के वर्णनीय विषयों का प्रश्न है, इसमें – सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, प्रातः मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, सम्भोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथा सम्भव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए । इसका नाम कवि के नाम से (यथा–माघ), चरित्र अथवा चरित्र–नायक के नाम से (यथा–रघुवंशम्) होना चाहिए । कहीं–कहीं इनके अतिरिक्त भी नामकरण देखा जाता है । यथा – (भट्टि) सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नामकरण किया जाता है ।'' ध्यातव्य है कि आर्षकाव्य के सर्ग को 'आख्यान', प्राकृत महाकाव्य में 'आश्वास', अपभ्रंश भाषा में सर्ग को 'कुडवक' कहते हैं । उदाहरणतया क्रमशः महाभारत, सेतुबन्ध तथा कर्णपराक्रम ।

महाकवि का कविकर्म या महान् काव्य 'महाकाव्य' :–

विभिन्न काव्य शास्त्रियों के महाकाव्य के स्वरूप विवेचन के पश्चात् यह जिज्ञासा उठती है कि महाकवि का 'कविकर्म' या 'कृत्ति' महाकाव्य है अथवा 'महत् काव्य' महाकाव्य कहलाता है । वस्तुतः 'महाकवि' और 'महाकाव्य' दोनों पृथक् शब्द है । महाकवि की कृति को महाकाव्य इसलिए नहीं कह सकते क्योंकि 'महाकवेः काव्यं' की व्युत्पत्ति से 'महाकाव्यम्' नहीं अपितु 'माहाकाव्यम्' [1] शब्द बनेगा । महाकाव्य किसी भी महापुरूष के महत् चरित्रों का काव्यमय वर्णन होता है ।

महाकाव्य का रचयिता महाकवि भी हो सकता है और साधारण कवि भी । आनन्दवर्धन ने 'महाकवि' की परिभाषा दी है – ''महाकवि वह है जिसकी वाणी प्रतीयमान रस भांवादि से युक्त अर्थतत्त्व को प्रवाहित करती है । ऐसी वाणी उन महाकवियों के अलौकिक, भास्वर प्रतिभाविशेष को व्यक्त करती है ।'' [2]

---

१. संस्कृत को 'रघुवंश की देन', – डॉ० शंकर दत्त ओझा पृ० ७४

२. ''सरस्वतीस्वादु तदर्थवस्तु निष्यन्दमाना महतां कवीनाम् ।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभा विशेषम् ।।''
(तत् वस्तुतत्वं निष्यन्दमाना महतां कवीनाम–भारती अलोकसामान्यं प्रतिभाविशेषं परिस्फुरन्त अभिव्यनक्ति)
आनन्दवर्धन – 'ध्वन्यालोकः' १/६

इस आधार पर सम्पूर्ण कवि परम्परा में केवल पाँच–छः महाकवियों की ही गिनती आनन्दवर्धन करते हैं । जिनमें सर्वप्रथम नाम कालिदास का है । आनन्दवर्धन के अनुसार महान् नायकों के उदात्त कृत्य ही महाकाव्य के वर्ण्य– विषय होते हैं । महाकाव्य में महापुरूषों के चरित्रों का गुणगान करना भी अभीष्ट है । भामह ने अपने महाकाव्य– लक्षण में 'महताँच महच्च यत्' में इसी स्वरूप का संकेत किया है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि कालिदास के समय तक सम्भवतः न 'महाकाव्य' शब्द का प्रचलन हुआ था और न उसका लक्षण ही बन पाया था । 'अग्निपुराण' यदि भामह से पहले का भी माना जाता है तो भी वह कालिदास के बाद का ही प्रतीत होता है । अतएव स्पष्ट है कि महाकाव्य के रचयिता महाकवियों के लिए 'रामायण' ही प्रधान रूप से आदर्श प्रतीत होता है । रामायण के अनुसार ही इन परवर्ती महाकाव्यों में सर्गबन्धता, सर्गों के अन्त में छन्द–परिवर्तन, चन्द्रोदय, ऋतु, नदी, वन, पर्वत, प्रभात, रजनी इत्यादि का वर्णन महाकाव्यों के लिए आवश्यक अङ्ग बन गया । जैसा रामायण था, ठीक उसी तरह किसी महापुरूष के उदात्त जीवन–वृत्त को वर्ण्यविषय बनाया गया । उसके बाद कालिदास के महाकाव्यों ने इस परिपाटी को स्थिरता प्रदान की । उनकी तथा उनके परवर्ती अश्वघोष इत्यादि की रचनाओं के आधार पर महाकाव्य की परिभाषा की गयी ।

संस्कृत महाकाव्य–परम्परा

महाभारत :–

संस्कृत महाकाव्य–परम्परा में आदि कवि विरचित रामायण के बाद महाभारत ही वह प्रभावशाली ग्रन्थ है जिसकी ओर काव्यालोचकों की दृष्टि गयी है । इसके रचयिता महर्षि वेदव्यास जी ने इसकी अलौकिकता पर स्वयं ही कहा है कि "जो कुछ इसमें है, वह दूसरे स्थलों पर है, पर जो इसके भीतर नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है ।" [१] इसमें मात्र कौरवों–पाण्डवों का इतिहास वर्णन ही नहीं, वरन् हिन्दू धर्म का विस्तृत वर्णन भी सम्मिलित है ।

व्यासकृत 'महाभारत' को भी रामायण के तुल्य 'विकसनशील महाकाव्य' अथवा 'इपिक आफ ग्रोथ' की संज्ञा दी गई है । तात्पर्य यह है कि वर्तमान समय में महाभारत में 'एक लाख' श्लोक विद्यमान है । इसलिए इसे 'शतसाहस्त्र–संहिता' कहते है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि पहले ये लिखित रूप में नहीं थे बल्कि कण्ठाग्र थे । महाभारत का वर्तमान स्वरूप अनेक वर्षों में अनेक रचयिताओं द्वारा किए गए प्रयास का समवेत प्रतिफल है । इसके इस विकास के तीन स्तर है -- १. जय, २. भारत, ३. महाभारत ।

१. जय :–

ग्रन्थ का मौलिक रूप 'जय' नाम से ही प्रसिद्ध था । यह व्यास की मौलिक रचना है । इस ग्रंथ के आदि पर्व में एक श्लोक है जिसमें नमस्कारात्मक मंगलाचरण करके 'जय' नामक ग्रन्थ के पठन का विधान है । [२]

२. भारत :–

सर्वप्रथम व्यास ने अपना ग्रन्थ अपने पाँच शिष्यों में से एक शिष्य वैशम्पायन को सुनाया । द्वितीय स्तर पर

---

१. "धर्मे ह्यर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वाचित् ।।" (महाभारत)

२. "नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम ।
देवी सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।।" (महाभारत – मंगल श्लोक)

तथा

१८ वें पर्व में "जयो नामेतिहासोऽयम्" का उल्लेख है तथा 'महाभारत' का प्रत्येक पर्व उपर्युक्त मंगलाचरण से आरम्भ होता है ।

वैशम्पायन ने अपना काव्य वक्तव्य भी इस ग्रन्थ में जोड़कर इसे नागयज्ञ (सर्पसत्र) के अवसर पर जनमेजय को सुनाया । तब तक इसमें सम्भवतः २४,००० (चौबीस हजार) श्लोक थे और आख्यानों से रहित था ।[१] जय नामक ग्रन्थ इस प्रकार विकसित होते–होते भारत नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

३. महाभारत :–

तृतीय स्तर पर जब इसके आकार में काफी वृद्धि हो चुकी थी तो सौति ने शौनक को उनके द्वादशवर्ष याग के अवसर पर सुनाया था । शौनक द्वारा पूछे गए अनेक प्रश्नों का उत्तर सौति ने दिया है । इस अवस्था तक पहुँचते–पहुँचते इसमें एक लाख श्लोक हो गए ।[२]

इस प्रकार प्रारम्भ में एक इतिहास, पुराण अथवा आख्यान रूप में होते हुए आज परिवर्धित होते–होते नैतिक व धार्मिक शिक्षा के विशाल ग्रन्थ का रूप प्राप्त कर चुका है । इस लम्बे काल में प्रवचन आदि सैकड़ों आख्यान व उपाख्यान सुनाए गए होंगे । उन सबका संग्रह सम्भवतः इसमें हो गया होगा इसमें 'हरिवंश' नामक वृहत् परिशिष्ट भी जोड़ दिया गया । इस प्रकार महाभारत एक विशालकाय ग्रन्थ के रूप में हमारे समक्ष विद्यमान है ।

सम्प्रति महाभारत के दो रूप मिलते हैं एक उत्तरीय और दूसरा दाक्षिणात्य । इसमें उत्तर भारत के पाँच और दक्षिण के तीन स्वरूप प्रचलित है । महाभारत के तीन प्रामाणिक संस्करण हैं –

१. बम्बई ऐसियाटिक सोसायटी

२. भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना

३. गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित महाभारत ।

महाभारत का वैशिष्ट्य :–

महाभारत का नाम सुनते ही जनसामान्य के मन में ऐसी विभीषिका का चित्र डूबने–उतरने लगता है जिसमें नैतिकता की सारी अवधारणाएँ ध्वस्त होती दिखाई देती हे । मनुष्यता के भीतर छिपी आसुरी वृत्ति का चेहरा दिखाई देता है । यह कहानी युद्ध के उस परिणाम को इङ्गित करती है जो लाखों लड़ाकुओं में से केवल नौ व्यक्तियों को जीवनदान देता है जहाँ विजेता भी फूट–फूट कर रोते है और ईर्ष्यालु भी पश्चात्ताप करते हैं ।

---

१. "चतुर्विंशतिसाहस्त्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः ।।" (महाभारत)

२. "अस्तिमस्तु मानुष्ये लोके वैशम्पायन उक्तवान् ।
एकं शतसहस्त्रं तु मयोक्तं वै निबोधत ।।"

किन्तु यह केवल महासंग्राम को ही नहीं वरन् मानवता की श्रेष्ठता को घोषित करते हुए कहता है कि मनुष्य सर्वोपरि है यह नारायण को ही नर के रूप में उसका सारथि बना देता है । आज के समाजशास्त्रियों का यह सिद्धान्त कि 'मनुष्य ही सर्वोपरि' है । व्यास के ही कथन पर आधारित है ।[1]

मानव–जीवन में पुरुषार्थ का बड़ा महत्व है । व्यास इसे 'पाणिवास' शब्दों से व्यक्त करते हैं । संसार में जिन लोगों के पास हाथ है जो दक्ष व उत्साही हैं उनके सब प्रयोजन सिद्ध होते हैं ।

महाभारत वर्णाश्रम व्यवस्था को 'संस्कार विज्ञान' के रूप में प्रतिपादित करते हुए कहता है कि जन्म से सभी शुद्ध होते हैं । संस्कार व्यक्ति को ब्रह्मण आदि वर्ण प्रदान करते हैं । 'कर्म' और 'गुण' का निर्देश करते हैं ।

महाभारत में वर्णित राष्ट्र–भावना उदात्त और ओजस्वी है । राजनैतिक नेताओं के लिए महाभारत एक विलक्षण आदर्श उपस्थित करता है –

"राजां प्रजानां प्रथमं शरीरं
प्रजाश्च राज्ञोऽप्रतिमं शरीरं
राजाविहीनाः न भवन्ति देशाः ।
देशैर्विहीना न नृपाः भवन्ति ।।"

महाभारत का युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का प्रतीक है जिसमें सत्यमेव जयते की शिक्षा मिलती है ।

महाभारत के उद्योग–पर्व में नीति की शिक्षा देते हुए श्रीकृष्ण का कथन है –

"यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यः ।
तस्मिन् तथा वतिर्तव्यं स धर्मः ।
मायाचारों मायया वतिर्तव्यः ।
साध्वाचारो साधुना प्रत्युपेयः ।।"

महाभारत अध्यात्म की सूक्ष्म बारीकियों में न पड़कर हमें सीधा व नियमित जीवन बिताने की शिक्षा का मन्त्र देता हुआ सा प्रतीत होता है ।

महाभारत हमें इन्द्रिय–निग्रह की शिक्षा देता है, क्योंकि दुर्योधन का गौरव अपने ईर्ष्या आदि आवेगों को न दबा पाने के कारण नष्ट हुआ है । समस्त कौरव–वंश घोर विपत्ति में पड़ा और अन्ततः संहार को प्राप्त हुआ ।

---

१. "न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित ।।"

महाभारत शान्तिपर्व १८० / २०

यही बात पाण्डवों के साथ है वे द्यूतरूपी व्यसन में पड़कर अपना राज्य व पत्नी भी हार गए । बाद में एकनिष्ठ साधना से वे कौरवों पर विजय पाने में समर्थ हुए । इस प्रकार महाभारत प्रकारान्तर से इन्द्रिय–निग्रह का सन्देश देता है – "वेद का उपनिषद् अर्थात् रहस्य है – सत्य, सत्य का भी उपनिषद् है – दम और दम अर्थात् इन्द्रिय–दमन का रहस्य है मोक्ष । समस्त अध्यात्म शास्त्र का यही निचोड़ है ।" [१]

महाभारत की कथा के माध्यम से हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहना चाहिए, महिलाओं को अबलात्व का परित्याग करना चाहिए । दुर्व्यसन से परे होना चाहिए । अन्याय व अत्याचार का परित्याग करना चाहिए और उसका विरोध करना चाहिए ।

महाभारत में विभिन्न विरोधी गुणों का समावेश है इसमें एक ओर जहाँ दुर्योधन जैसा अंहकारी है, तो युधिष्ठिर जैसा अजातशत्रु है । भीष्म–पितामह जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं तो, दूसरी ओर शिखण्डी जैसे क्लीव, श्रीकृष्ण जैसे योगीराज नीतिज्ञ हैं, तो दुःशासन जेसे दुःचरित्र है । विदुर जैसे ज्ञानी व पुण्यात्मा है, तो शकुनि जैसे दर्पजीवी भी हैं ।

भीम जैसा पराक्रमी है, तो जयद्रथ जैसा कायर भी । इसमें एक ओर राजधर्म का उपदेश है, तो दूसरी ओर मोक्ष धर्म का भी । इस प्रकार महाभारत विरूपता में एकरूपता, विश्रृंखलता में समन्वय तथा अनेकता में एकता, प्रेम में श्रेय व धर्म में मोक्ष का समन्वय है ।

महाभारत एक उपजीव्य :–

महाभारत की रोचकता, विशालता व विद्वता ने परकालीन साहित्यकारों को इतना प्रभावित किया कि वे महाभारत को अपना प्रमुख **उपजीव्य ग्रन्थ** मानने लगें । यदि संस्कृत के उन ग्रन्थों को पृथक् कर दिया जाय जो महाभारत से प्रभावित है तो शेष कृतियों की संख्या अति अल्प रह जाएगी । कुछ ग्रन्थ है – **व्यास** कृत पञ्चरात्रं, दूतवाक्य, मध्यमव्यायोग, दूत घटोत्कच, कर्णभार, कुरुभङ्ग ; **कालिदास** रचित अभिज्ञान–शाकुन्तलम्, **भारवि** प्रणीत् किरातार्जुनीयम्, **माघ** कृत शिशुपालवधम्, **भट्टनारायण** का वेणीसंहार, **राजशेखर** का बालभारत, **नीतिवर्मन** का कीचक वध, त्रिविक्रम भट्ट का नल–चम्पू, **श्रीहर्ष** का नैषधीयचरित्र, **क्षेमेन्द्र** का भारत–मंजरी, **कुलशेखर वर्मन** का सुभद्रा–धनंजय, रामचन्द्र का नल–विलास, **देव प्रभसूरि** का पाण्डव चरित इत्यादि ।

---

१ "वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः ।
दमस्योपनिषद् मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम् ।।"

शान्तिपर्व २९९/१३

महाभारत हमें एक ऐसा मस्तिष्क प्रदान करता है जिसके लिए विवेकानन्द के शब्द हैं – "ऐसा मस्तिष्क पृथ्वी ने अब तक पैदा नहीं किया और न आगे पैदा कर सकेगी वह मस्तिष्क व्यास है वेदों का सम्पादक। ब्रह्म सूत्र, पुराण इत्यादि के प्रणेता और गीता के अतीन्द्रिय लेखक।"

महाभारत श्रीकृष्ण के करूणामय चरित्र का उद्घाटन करता है। महाभारत संग्राम के लिए तत्पर दोनों सेनाओं के बीच श्रीकृष्ण व अर्जुन को खड़ा कर उनके माध्यम से 'धर्म' और 'अध्यात्म' की गीता उच्चारित करता है – "तुम जागो, अपने को पहचानो। तुम मरने वाला शरीर नहीं हो अजर, अमर आत्मा हो। परमात्मा का अंश हो अपने को सर्वत्र देखो क्योंकि सर्वत्र तुम में ही समाया हुआ है।" [१]

इस प्रकार महाभारत केवल भरतवंशीय राजाओं का इतिहास ही नहीं वरन् सारे भारत–वर्ष की संस्कृति की कथा है, समाजशास्त्र है, राजनीति है, कूटनीति है, तर्कशास्त्र है। महाभारत सम्पूर्ण चिन्तन है जीवन सत्य का मंथन है यह सामान्य पुस्तक नहीं पुस्तकों का केन्द्र–बिन्दु है। इस महान् ग्रन्थ का उन्नायक एक अवतार एक पूर्ण पुरूष है जो भागवत् में बाँसुरी बजाता आनन्द का रास रचता है तो महाभारत में पाञ्चजन्य फूंकता हुआ महामरण का ताण्डव करता है। इस प्रकार महाभारत निष्काम कर्मयोग का उद्‌गाता, भक्ति व अध्यात्म का पथ–प्रदर्शक व मानव की महत्ता का गान है। यह कोटि–कोटि जनों के श्रद्धासूत्र से बधाँ अद्वितीय महाकाव्य है।

---

१. "अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।"

गीता द्वितीय अध्याय/१७

"अन्तवत् इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्य भारत।।"

गीता द्वितीय अध्याय/१८

कालिदास

'रामायण' एवं 'महाभारत' के बाद कालिदास के महाकाव्यों ने परवर्ती महाकाव्य परम्परा को प्रेरणा प्रदान की है। संस्कृत साहित्य का यह सौभाग्य है कि उसने महाकवि कालिदास जैसे कविरत्न को प्राप्त किया है जो महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा नाट्य तीनों काव्यविद्याओं की रचना में कुशल हैं।

कर्तृत्व :–

कालिदास की सच्ची रचनाओं का निर्णय दुष्कर कार्य है, क्योंकि परवर्ती कवियों पर कालिदास का इस प्रकार प्रभाव पड़ा कि कई कवियों ने 'कालिदास' का प्रसिद्ध अभिधान धारण कर अपने व्यक्तित्व को छिपा रखा। परिणामस्वरूप कालिदास की वास्तावेक रचनाएँ कितनी है? यह विषय निर्विवाद नहीं रह सका। कालिदास के नाम पर विरचित जिन कृत्तियों का उल्लेख किया जाता है। उनमें से प्रमुख हैं – (१) ऋतुसंहार, (२) कुमारसम्भव, (३) मेघदूत, (४) रघुवंश, (५) मालविकाग्निमित्र, (६) विक्रमोवर्शीय, (७) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (८) श्रुतबोध, (६) राक्षसकाव्य, (१०) श्रृङ्गारतिलक, (११) गङ्गाष्टक, (१२) श्यामलादण्डक, (१३) नलोदयकाव्य, (१४) पुष्पबालविलास, (१५) ज्योतिविदाभरण, (१६) कुन्तलेश्वर–दौव्य, (१७) लम्बोदर प्रहसन, (१८) सेतुबन्धन तथा (१६) कालिस्तोत्र इत्यादि।

उक्त कृतियों में संख्या २ से ७ तक की रचनाएँ निर्विवाद रूप से कालिदास की मानी जाती है। प्रथम कृति 'ऋतुसंहार' के बारे में विद्वान् एकमत नहीं हैं। परन्तु इसे भी कालिदास–कृति ही स्वीकार किया जाता है। इन सात कृतियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

१. ऋतुसंहार :–

यह कालिदास की प्रथम कृति है। इसमें छः सर्गों में कवि ने ग्रीष्म से लेकर बसन्त तक छहों ऋतुओं का बड़ा ही स्वाभाविक, सरस एवं सरल वर्णन किया है। ग्रीष्म की प्रचण्डता का वर्णन अत्यन्त सजीव बन बड़ा है[1] – "सूखे कण्ठ से सीकर जल को ग्रहण करते हुए सूर्य की किरणों से सताये, जल के इच्छुक हाथी शेर से भी नहीं डरते हैं।" इसी प्रकार कालिदास की शरत् काश की नई साड़ी पहनकर, खिले कमलों के मुख की सुन्दरता लिये, मस्त हंसो के कूजन रूपी नूपुरों से मनोहर बनी, फल के भार से झूकी हुई पकी शालि की तरह लज्जा (या यौवनभार) से झुके कोमल शरीरवाली नववधू बनकर आती दिखाई देती है।[2]

---

१. "विशुष्ककण्ठाहृतसीकराम्भसो गभस्तिभिर्भानुमतोऽनुतापिताः।
प्रवृद्धतृष्णोपहता जलर्थिनो न दन्तिनः केसरिणोऽपिविभ्यति।।"

ऋतुसंहार १–१५

२. "काशांशुका विकचपद्‌ममनोज्ञवक्त्रा,
सोन्मादहंसनवनूपुरनादरभ्या।।
आपक्वशालिरूचिरानतगात्रयष्टिः
प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरभ्या।।"

ऋतुसंहार ३–१

इसमें कवि ने ऋतुओं का सहृदयजनों के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव का भी हृदयग्राही चित्रण है। इस काव्य में कालिदास की कमनीय शैली का दर्शन न होने से कुछ विद्वान् इसे कालिदास की रचना नहीं मानते।

२. कुमारसम्भव :–

यह कालिदास की सच्ची निःसन्दिग्ध रचना है। यह एक महाकाव्य है। इसके सत्रह सर्गों में से सात सर्ग ही कवि की लेखनी का फल हैं। कालिदास की कविता के प्रवीण पारखी मल्लिनाथ ने इन्हीं सात सर्गों पर अपनी टीका 'संजीवनी' लिखी है। इस महाकाव्य में शिव–पुत्र कार्तिकेय की कथा वर्णित है। कथा का स्त्रोत सम्भवतः 'महाभारत' (३–२२५) रहा है, किन्तु कालिदास ने उसमें कुछ हेर–फेर अवश्य किए हैं। नौ से लेकर ग्यारह सर्ग किसी साधारण लेखक द्वारा लिखित प्रक्षेप–शास्त्र है। इसमें भगवान शङ्कर के द्वारा मदनदहन, रतिविलाप, पार्वती की तपः आदि का वृतान्त बड़े ही कमनीय ढङ्ग से वर्णित है।

३. मेघदूत :–

मेघदूत कालिदास की अनुपम प्रतिभा का विलास है। कवि ने १११ या ११८ पद्यो[1] के इस छोटे से काव्य की गागर में अपनी सारी प्रतिभा का सागर भर दिया है। अपनी वियोग–विधुरा कान्ता के समीप यक्ष के द्वारा मेघ को सन्देश वाहक बनाकर भेजना कवि की मौलिक कल्पना है। मेघदूत को आदर्श मानकर कवियों ने अनेक काव्यों का निर्माण किया। जिसे 'संदेशकाव्य' कहते हैं। इसकी महत्ता का आकलन इसी से किया जा सकता है कि इस पर पचास टीकाएं लिखी गई है। पूर्वमेघ में महाकवि, रामगिरि से लेकर अलकापुरी तक के मार्ग का विशद वर्णन करते समय, भारतवर्ष की प्राकृतिक छटा का अतीव हृदयावर्जक चित्र प्रस्तुत करता है। पूर्वमेघ में बाह्य–प्रकृति का सजीव चित्र आँखों के समक्ष नाचने लगता है। उत्तरमेघ में मानव की अन्तः प्रकृति का ऐसा विशद चित्रण हुआ है कि सहृदय का चित्त नाच उठता है। आलोचकों की **'मेघे माघे गतं वयः'** उक्ति यथार्थ ही है।

४. रघुवंश :–

महाकवि कालिदास कृत 'रघुवंशम्' समग्र संस्कृत साहित्य में एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसके १९ सर्गों में सूर्यवंश के ३१ राजाओं का वर्णन समाहित है। इसमें महाकाव्य के सभी कारण है कि आलंकारिकों ने 'रघुवंश' को लक्षित महाकाव्य का सर्वोत्तम निदर्शन माना है। कथानक का मूल स्त्रोत 'रामायण' है। महाकवि ने वैदर्भी रीति का आश्रय लिया है, जैसी की उक्ति भी प्रचलित है – **"वैदर्भी रीति सन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते"**

रघुवंश महाकाव्य के ही एक श्लोक पर रीझकर कवियों ने महाकवि कालिदास को 'दीपशिखा कालिदास' की उपाधि से अलङ्कृत किया है। वह प्रसिद्ध श्लोक[2] इन्दुमती – स्वयंवर में उल्लिखित है। इसकी

---

१. वल्लभदेव के अनुसार मेघदूत में १११ पद्य है, मल्लिनाथ के मत से ११८। सम्भवतः ये ७ पद्य बाद के प्रक्षेप हैं।

२. "सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः ।।"
महाकवि कालिदास कृत 'रघुवंश' षष्ठ सर्ग / ६७

रस–योजना, अलङ्कार–विधान, चरित्र–चित्रण तथा प्रकृति–चित्रण सभी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच कर सहृदय समाज का रसावर्धन करते हुए कालिदास को 'रघुकार' पदवी से विभूषित किया है ।

५. मालविकाग्निमित्रम् :–

यह पाँच अंको का एक नाटक है । इसमें शुङ्गवंशीय राजा अग्निमित्र तथा मालविका की प्रणयकथा का मनोहर तथा ह्रदयहारी चित्रण है । इसमें विलासी राजाओं के अन्तःपुर में होने वाली कामक्रीडाओं तथा रानियों की पारस्परिक ईर्ष्यादि का अतीव यथार्थ तथा सजीव चित्रण है ।

६. विक्रमोवर्शीयम् :–

ऋग्वेदादि में वर्णित चन्द्रवंशीय राजा पुरूरवा तथा अप्सरा उर्वशी का प्रेमाख्यान इस नाटक का इतिवृत्त है । इसमें पाँच अङ्क है । नाट्य–कौशल की उपेक्षा कर कवि ने इसमें अपने काव्यात्मक चमत्कार का ही प्रदर्शन किया है ।

७. अभिज्ञानशाकुन्तलम् :–

शाकुन्तलम् नाटक कालिदास के ग्रन्थों में ही शीर्षस्थ पदासीन ही नहीं है अपितु संस्कृत साहित्य के नाट्य–माला में मणि के समान देदीप्यमान है । महाकवि कालिदास ने महाभारत के 'शकुन्तलोपाख्यान' की कथा के आधार पर ही इस नाटक की रचना की है । परन्तु उन्होंने इस नीरस, निरीह कथानक को अपनी नाट्य–कुशलता से सजीव व सरल बना दिया है । कालिदास की नाट्य–कला की चरम परिणति 'शाकुन्तलम्' में हुई है ।[1]

कविवर रवीन्द्र ने शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' तथा कालिदास के शाकुन्तल का सुन्दर सामन्जस्य दिखलाया है – "टेम्पेस्ट में शक्ति है, शाकुन्तल में शक्ति है; टेम्पेस्ट, में बल के द्वारा जय हुई है और शाकुन्तल में मंगल के द्वारा सिद्धि । टेम्पेस्ट में आधे मार्ग पर विराम हो गया है और शाकुन्तल में सम्पूर्णता का अवसान है । टेम्पेस्ट में मिरांडा सरल माधुर्य से परिपूर्ण है, परन्तु इस सरलता की नींव अज्ञता–अनभिज्ञता पर अवलम्बित है; शकुन्तला की सरलता अपराध, दुःख, अभिज्ञता, धैर्य तथा क्षमा से परिपक्व गम्भीर तथा स्थायी है । गेटे की समालोचना का अनुससर कर मैं फिर भी यही कहता हूँ कि शकुन्तला के आरम्भ के तरूण सौन्दर्य ने मंगलमय परम परिणति से सफलता प्राप्त कर मर्त्य को स्वर्ग के साथ सम्मिलित करा दिया है" । (प्राचीन साहित्य)[2]

---

१. "कालिदास सर्वस्वमाभिज्ञानशाकुन्तलम् ।
काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला ।।"

२. आचार्य बलदेव उपाध्याय – संस्कृत साहित्य का इतिहास/पृ० ५०२

सौन्दर्य भावना :–

कालिदास श्रृङ्गार तथा प्रेम के भावुक कवि हैं । अतः उनकी दृष्टि सौन्दर्य तथा कोमल भावना को प्रकट करने में नितान्त चतुर है । वे बाह्य प्रकृति तथा अन्तः प्रकृति के उपासक हैं । बाह्य प्रकृति जो अभिरामता प्रस्तुत करती है वही अन्तः प्रकृति में भी विद्यमान है । शकुन्तला की कोमलता का एक वर्णन देखिए –

"अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुमामिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ।।[१]

शकुन्तला का अधर नये पल्लव की लालिमा लिए हुए है । बाहू कोमल शाखाओं का अनुकरण करते हुए झुके हुए हैं । विकसित फूल के समान लुभावना यौवन अंगों में प्रस्फुटित हो रहा है । यह अनूठा वर्णन कवि के सौन्दर्य भावना का परिचय देता है ।

इसी प्रकार 'कुमारसंम्भव' का एक प्रसंग देखिए –

"पुष्पं प्रबालोपहितं यदि स्याद् मुक्ताफलं वा स्फुट–विद्रुमस्थम् ।
ततोऽनुकुर्याद् विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य ।।[२]

अर्थात् यदि उजला फूल थोड़ा रक्त लिए नये पल्लव पर रखा जाए और यदि मोती लाल–लाल मूँगों पर निहित हो, तभी ये दोनों पार्वती के लाल होठों पर फैली हुई मधुर मुस्कराहट की समानता पा सकते हैं ।

रस सिद्धि :–

कालिदास रससिद्ध कवि हैं । उन्होंने सभी रसों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है, किन्तु श्रृंगार और करूण रसों की विलक्षण चारूता इनकी कविता में मिलती है । शाकुन्तलम् में प्रेम और करूण का अपूर्व सम्मेलन है । चौथे अंक में जब शकुन्तला अपने पतिगृह जा रही है, कवि ने वहाँ जैसा करूण चित्र अंकित किया है वैसा शायद ही कहीं चित्रित हो । दुष्यंन्त के पास अपनी पुत्री शकुन्तला को भेजते समय संसार से विमुख होने पर भी कण्व की करूण दशा देखिए –

"यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ।।"[३]

---

१. कुमारसंभवम्, १/४४
२. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४/६
३. शाकुन्तलम् १/२०

शकुन्तला के चतुर्थ अंक में प्रकृति और मनुष्य को एक अटूट बंधन में बँधा हुआ दिखाया गया है । आश्रम की बालिका शकुन्तला को अलङ्कृत करने के लिए प्रकृति स्नेह से आभूषण प्रदान करती है । मृगशावक शकुन्तला को जाने नहीं देता । प्रकृति पत्तों के गिरने के व्याज से आँसू बहाती है । ऐसा सहानुभूतिपूर्ण वर्णन संस्कृत साहित्य में अन्यत्र विरल है । यह कालिदास के प्रकृति प्रेम तथा करूण रस की वर्णनशैली का परिचायक है ।

शकुन्तला के जाते समय तपोवन कितना दुःख प्रकट कर रहा है –

"उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूरी ।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ।।"[१]

मृगीगण कुश के ग्रास को वियोग से दुःखी होकर गिरा रही हैं । शकुन्तला के आश्रम छोड़ने से वे इतनी शोकग्रस्त हैं कि उन्हें खाना नहीं सुहाता । जो मयूरी आनन्द और उल्लास से नाच रही थी उसने अपना नृत्य छोड़ दिया । लताओं से पीले–पीले पत्ते झड़ रहे हैं मानों ये आँसू बहा रही हैं ।

अचेतन प्रकृति का यह हार्दिक शोक, अन्तःकरण की करूण दशा को व्यक्त करने वाली प्रकृति की यह मूक वाणी, कालिदास के अतिरिक्त और किसे सुनायी पड़ सकती है ? मनुष्य तथा प्रकृति का यह दर्शनीय वियोग सहृदयों की हृदयतंत्री को अवश्य ही आह्लादित करता है ।

कालिदास ने श्रृंगार के उभय पक्ष – संयोग पक्ष तथा वियोग पक्ष का मार्मिक वर्णन किया है । रघुवंश के अष्टम सर्ग में कालिदास ने पुरूष कृत विप्रलम्भ का चित्र खींचा है (अजविलाप), तो कुमारसंभव के चतुर्थ सर्ग में नारी कृत विपलम्भ का वर्णन है (रतिविलाप) । 'मेघदूत' तो कालिदास की अपूर्व विप्रलम्भमयी कृति है अतः कालिदास करूण रस के वैसे ही सिद्ध कवि हैं जैसे श्रृंगार रस के ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कालिदास का स्थान संस्कृत महाकाव्य परम्परा में सर्वोत्कृष्ट है ।

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४/११

कालिदास का अश्वघोष से पूर्ववर्तित्व

कालिदास एवं अश्वघोष के काव्य–साम्य को देखकर यह प्रश्न हमारे सामने उत्पन्न हो जाता है कि दोनों में पूर्ववर्ती कौन है ? प्रोफेसर कॉवेल इत्यादि ने अश्वघोष को मात्र इसलिए कालिदास से पूर्ववर्ती माना है क्योंकि कालिदास ने अश्वघोष के इतिवृत्तामक एवं कर्कश–शब्द–विन्यास को ग्रहण कर अपनी प्रतिभा से सजाकर उसमें चमत्कार उत्पन्न कर उसे प्रस्तुत किया है, किन्तु यह तर्क अमान्य है । वास्तविकता ठीक इसके विपरीत है । 'बुद्धचरित' का अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि उस समय लेखक के समय कालिदास की कृतियाँ विद्यमान थीं ।

अश्वघोष की रचनाओं में कालिदास की काव्य–शैली, कथनीय वस्तु का व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा हे । सत्यता यह है कि अनुकृति कभी मौलिक नहीं हो सकती । अनुकरणकर्त्ता भले ही चतुरता तथा अपनी विलक्षण बुद्धि से शब्द–योजना, अलंकार–रस, अन्य प्रयोग चुरा ले, किन्तु मौलिक रचना यदि किसी रससिद्ध महाकवि की रचना है तो उस मौलिक रचना की मौलिकता तथा काव्य–प्रवाह को कहाँ प्राप्त कर सकता है । अश्वघोष की अनुकृति कालिदास की वैदर्भी–रीतिगर्भित वाणी की रसपेशलता तथा चमत्कारिता को कैसे पा सकती है ? अतः यह बात युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होती कि कालिदास 'अश्वघोष' के उस काव्य से कैसे प्रेरणा प्राप्त कर सकता है जो अपेक्षाकृत अपरिपक्व, कम चमत्कारी तथा असमर्थ थी ।

प्रोफेसर कॉवेल ने अश्वघोष के जिस श्लोक का कालिदास द्वारा विशिष्ट अनुकरण किया जाना बताया है, वे नीचे उद्धत है –

वातायेनभ्यस्तु विनिःसृतानि रस्परोपासितकुण्डलानि ।
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपंकजानि सक्तानि हर्म्येष्विवपंकजानि ।।
बुद्धचरित ३/१६

तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तराः सान्द्रकुतूहलानाम् ।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षा सहस्त्रयत्राभरण इवासन् ।।
रघुवंश ७/११

पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने कालिदास एवं अश्वघोष के काव्य का गहन तुलनात्मक अध्ययन किया है । उन्होंने अनेक उदाहरणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि अश्वघोष ने कालिदास का अनुकरण किया है । उनके सर्वेक्षण का एक अंश इस प्रकार है[1] –

---

१. द्रष्टव्य – ''द डेट ऑफ कालिदास'' पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय (रिप्रिंट फ्राम द इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज वाल्यूम ११, पृ० ८०–११०)

"My case fails if those resemblances (by the decisive character of some and the Cumulative effect of the rest) do not establish my point. But my present conviction is that they do and in such a way that if Kalidasa is not removed from the fourth or the fifth century after christ. Ashvaghosa will have to be brought down from the Kusan period or all the passages in his works resembling Kalidasa will have to be pronounced as post Kalidasa interpolations. If such an abhyupagama is made by anybody for the sake of argument. I am certainly silenced."

महर्षि वाल्मीकि, व्यास, भास, सौमिल्ल एवम् कविपुत्र इत्यादि कालिदास के उपजीव्य थे अतः महाकवि भले ही इनसे प्रभावित हुए, किन्तु उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से अपनी रचना को इतना सजाया संवारा कि वो नितान्त नवीन हो उठी । महाकवि के समक्ष सहस्त्रों शब्द–विन्यास, उपमादि अलंकार एवं रसासिक्त उक्तियाँ स्वयमेव हठात् जब उपस्थित हो उठती है तो उन्हें किसी अन्य कवि के काव्य के अनुकरण की क्या आवश्यकता ? किन्तु इसके विपरीत अश्वघोष ने कालिदास की काव्यकला का पर्याप्त अनुकरण किया । कालिदास उनके लिए मानक थे । 'रघुवंश' में वर्णित अद्वितीय सूर्यवंशी राजाओं की यशोगाथा से प्रभावित होकर सम्भवतः अश्वघोष ने यही संकल्प किया होगा कि वह भगवान् बुद्ध के जीवनवृत्त को भी रघुवंश जैसा काव्य–शरीर देने में समर्थ हो सके तथा तत्कालीन संस्कृतनिष्ठ समाज उसे सद्यः स्वीकार कर ले तथा वह काव्य लोकप्रिय हो जाए । अश्वघोष प्रकृत्या दार्शनिक थे ।

'बुद्धचरित' पर 'रघुवंश' का गहरा प्रभाव दिखाई देता है । उदाहरणार्थ "तद्बुद्धवाशामिकं यत् तदवत्तिमितो ग्राह्यं न ललितं पांसुभ्यो धातुजेभ्या नियतमुपकरं चामीकरमिति" को पढ़कर कालिदास का[१] –

"तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा ।।"

पद्य सामने आ जाता है ।

कालिदास के अनुसार उनका काव्य सुनने के वे ही सज्जन अधिकारी है जिन्हें भले–बुरे की परख है, क्योंकि सोने का खरा या खोटा–पन आग में डालने से ही जाना जा सकता है । इन दोनों पद्यों में भिन्नता होते हुए भी इनका सहज संबंध स्पष्ट दिखाई पड़ता है ।

भाव, भाषा, अलंकार, शैली, छन्द तथा रीतिगत अनुकरण में यद्यपि अश्वघोष का प्रयास यही था कि वह प्रकट न हो, किन्तु दोनों की प्रतिभा इस भेद को स्पष्ट कर देती है और अन्ततोगत्वा अश्वघोष का कालिदास से पश्चवर्ती कवि होना सिद्ध हो जाता है । 'बुद्धचरित' के तृतीय सर्ग में सिद्धार्थ वनविहार के लिए राजमार्ग

---

१. 'रघुवंश' – कालिदास १/१०

से जा रहे है । उन्हें देखने के लिए पौरागनाएँ दौड़कर गवाक्षों, खिड़कियों एवं बार्जो में एकत्र होती है । इन नारियों के चित्रण में, विवाह–मण्डप की ओर ले जाए जाते हुए अज एवं इन्दुमती की शोभायात्रा के वर्णन प्रसङ्ग में विदर्भ की अंगनाओं की चेष्टाओं के चित्रण का स्पष्ट प्रभाव है ।

उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि अश्वघोष प्रत्येक दृष्टि से चाहे वह काव्य–कला हो या अलंकार वर्णन इत्यादि सभी में कालिदास से प्रभावित रहे हैं । उन्होंने रघुवंश को आदर्श मानकर बुद्धचरित महाकाव्य की रचना की है । अतः कालिदास उनसे पूर्ववर्ती ही सिद्ध होते हैं ।

अश्वघोष :–

बौद्ध दार्शनिक अश्वघोष के जीवन–चरित्र के बारे में अभी तक सन्देह बना हुआ है । सौन्दरनन्द की पुष्पिका [1] से उनके परिचय की एक हल्की सी छाया हमें प्राप्त होती है – वे अयोध्या (साकेतक) के निवासी थे, सुवर्णाक्षी के पुत्र थे तथा महाकवि होने के अतिरिक्त वे 'महावादी' बड़े तार्किक विद्वान् थे । चीनी परम्परा के अनुसार उनका पाटलीपुत्र के महाराज कनिष्क से सम्बन्ध था । कहा जाता है कि महाराज कनिष्क ने पाटलीपुत्र पर आक्रमण कर जब मगध नरेश को पराजित किया तब उन्हें दो शर्तो पर छोड़ दिया । पहली थी भगवान् तथागत के व्यवहृत भिक्षापात्र का ग्रहण तथा दूसरी थी उनके राज कवि अश्वघोष का पुरूषपुर में निवास की प्रतिज्ञा । राजा ने इन दोनों शर्तों को मानकर प्रबल शत्रु के बन्धन से अपने को तथा अपने राज्य को बचाया ।

कनिष्क के साथ सम्बद्ध मातृचेट कवि के ऊपर अश्वघोष की कविता का विपुल प्रभाव पड़ने के कारण भी अश्वघोष का कनिष्क के समकालीन होना सिद्ध होता है । अतः अश्वघोष का समय प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध में (१–५० ई०) सामान्यतः सिद्ध होता है ।

काव्य–ग्रन्थ :–

अश्वघोष की निःसन्दिग्ध तीन साहित्यिक रचनाएँ उपलब्ध होती है –

१. बुद्धचरित

२. सौन्दरनन्द तथा

३. शारिपुत्र प्रकरण ।

---

१. आर्य – सुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतस्य भिक्षोराचार्य –
भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिनः कृतिरियम् –

सौन्दरनन्द की पुष्पिका

इनमें प्रथम दो महाकाव्य तथा अन्तिम नाटक है ।

१. बुद्धचरित :–

अश्वघोष को कीर्ति प्रदान करने वाला ग्रन्थ 'बुद्धचरित' ही है, किन्तु दुर्भाग्यवश यह हमें अपने मूल रूप में आधा ही मिलता है । संस्कृत में दूसरे सर्ग से तेरहवें सर्ग तक ही ग्रन्थ उपलब्ध है । इसके चीनी व तिब्बती संस्करण में इस ग्रन्थ का पूरा २८ सर्ग उपलब्ध होता है । महाकवि अश्वघोष का यह ग्रन्थ कालिदास के 'रघुवंशम्' से पूर्णतया प्रभावित है । बुद्ध के गर्भाधान से इस ग्रन्थ का प्रारम्भ होता है तथा अस्थि–विभाजन से उत्पन्न कलह प्रथम संगीति तथा अशोकवर्धन के राज्य से इसका अन्त होता है । इसमें महात्मा बुद्ध के जीवन के उतार–चढ़ावों का बड़ा ही उज्ज्वल चित्र अंकित किया गया है ।

२. सौन्दरनन्द :–

अश्वघोष का दूसरा प्रसिद्ध महाकाव्य सौन्दरनन्द है । जिसमें बुद्ध के सौतेले भाई सुन्दरनन्द के बौद्ध–शिक्षा ग्रहण करने का वर्णन है । इस काव्य की कथा बुद्ध के सौतेले भाई, सौन्दर्य की पूर्ण प्रतिमा सुन्दरनन्द के गृहत्याग, अपनी प्रियतमा सुन्दरी के मोहभंग तथा प्रवज्याग्रहण से सम्बन्ध रखती है । नन्द भोगविलास में आकण्ठमग्न एक सुन्दर राजकुमार है तथा उसकी पत्नी सुन्दरी नितान्त पतिव्रता सुन्दरी है । दोनों का सुखमय यौवन बीत रहा था, शुद्धोदन के भव प्रासाद में, जब तथागत की दृष्टि उन पर पड़ी । उन्होंने अपने भाई नन्द के जीवन को मङ्गलमय तथा कल्याणपूर्ण बनाने के लिए उन्हें प्रवज्या ग्रहण करने के लिए बाध्य किया । भोग की माधुरी में आसक्त नन्द जीवन के सुखों को कथमपि छोड़ना नहीं चाहता, परन्तु बड़े ही कौशल से तथा प्रलोभन से वह प्रव्रज्या–मार्ग पर अन्ततोगत्वा बाध्य किया जाता है । उसी के हार्दिक भावना की, भोग–वासना के विपुल संघर्ष की नितान्त सरस अभिव्यक्ति सौन्दरनन्द में हमें मिलती है । नन्द तथा सुन्दरी की मूक वेदना के चित्रण में अश्वघोष को जितनी सफलता मिलती है उतनी ही उन्हें बुद्धधर्म के उपदेशों को सुन्दर भाषा में अंकित करने में भी । इस काव्य की तुलना में भारी–भरकम होने पर भी बुद्धचरित हृदय के भावों के वर्णन में, काम तथा धर्म के परस्पर वैषम्यमण्डित भीषण संघर्ष के चित्रण में, बौद्धधर्म के आचार–प्रधान उपदेशों के हृदयावर्जक विवरण में निःसन्देह न्यून है । इसीलिए 'बुद्धचरित' कवि की प्राथमिक रचना प्रतीत होता है । सौन्दरनन्द में अश्वघोष ने रच–पच कर अपना काव्यकौशल दिखलाया है ।

अश्वघोष की काव्य–कुशलता :–

काव्यशैली की दृष्टि से अश्वघोष आदि कवि महर्षि वाल्मीकि के समीपवर्ती ही प्रतीत होते हैं । कुछ स्थलों को छोड़कर उनका वर्णन सरस, सरल ओर तरल है । आदि कवि की ही तरह अनेक छन्दों का प्रयोग करते हुए भी उनके ग्रन्थों में 'अनुष्टुप्' का बहुलता से प्रयोग है ।

अश्वघोष की कथावस्तु की मौलिकता तथा उर्जस्विता के लिए उन्होंने जातक कथाओं में वर्णित कथाओं

के मूल रूप में अपेक्षित परिवर्तन भी किया है । अश्वघोष के प्रथम महाकाव्य का कथा–प्रवाह वर्ण्य–विषय के साथ हाथों में हाथ डालकर चलते नजर आते प्रतीत होते हैं । चाहे श्रृंगारिक वर्णन हो या दार्शनिक कथा–प्रवाह की प्राञ्जल धारा फूट पड़ती है ।

कोरा श्रृंगार वर्णन या चित्रात्मकता के लिए कहीं भी कथा का प्रवाह रूका नहीं है । इन स्थलों पर कवि भारवि, माघ या श्रीहर्ष को भी बहुत पीछे छोड़ जाते हैं दार्शनिक स्थलों को छोड़ कर उनका वस्तु–विन्यास अत्यधिक स्वाभाविक, मनोरम, प्रवाहमान तथा प्रभावोत्पादक है । यहाँ पर अश्वघोष कालिदास के हाथों में हाथ डालकर चलते नजर आ रहे हैं ।

अश्वघोष के 'बुद्धचरित' व 'सौन्दरनन्द' महाकाव्यों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि वह 'शान्त रस' के कवि हैं किन्तु वीर, करूण तथा श्रृंगार रस का वर्णन भी बड़ा ही स्वाभाविक बन पड़ा है । बुद्धचरित का तृतीय सर्ग, चतुर्थ और पंचम सर्ग में श्रृंगार का जो उदात्त वर्णन है उसे पढ़कर कोई भी यह नहीं कह सकता कि यह एक सन्यासी कवि की कृति है । इन्होंने श्रृंगार के भव्य एवं मर्यादित स्वरूप को बड़े संयत एवं मूर्त रूप में ही व्यक्त किया है । नारी–सौन्दर्य का वर्णन एक वैराग्यशील भिक्षु के रूप में नहीं वरन् एक लौकिक साधारण पुरूष की दृष्टि से किया है ।[१] किन्तु जहाँ उनके प्रिय शान्त रस का वर्णन है वहाँ श्रृंगारिकता को कोशों दूर तक छोड़ आते हैं ।

इनका दूसरा कोमल रस 'करूण' है । बुद्धचरित का अष्टम सर्ग तथा सौन्दरनन्द का षष्ठ सर्ग करूण रस से आप्लावित है । बुद्ध को अकेले छोड़कर जब छन्दक खाली घोड़े के साथ लौटता है तो सम्पूर्ण कपिलवस्तु दयनीय करूणरस के प्रवाह में मानों डूब जाती है । यशोधरा का करूण विलाप [२], सिद्धार्थ के माता–पिता का अन्तर्नाद [२] किसके हृदय को झकझोंर नहीं देता है । यहाँ पर कालिदास के रघुवंश के कुछ स्थलों का कवि ने पूर्णतया अनुकरण किया है । अतः पुरिकाओं की करूणदशा का चित्र उत्प्रेक्षा, सहोक्ति तथा रूपक से आश्रित होकर कितना अधिक मार्मिक बन पड़ा है –

"इमाश्च विक्षिप्तविटङ्कबाहवः प्रसक्तपारावतदीनिस्वना ।
विनाकृतास्तेन सहावरोधनैर्भृशं रूदन्तीव विमानपङ्क्तयः ।।"

बुद्धचरित ८/३७

---

१. "मुहुर्मुहुर्मदव्याजस्त्रस्तनीलांशुकापरा ।
आलक्ष्यरशना रजे स्फुरद्विधुदिव क्षपा ।।" बुद्धचरित ४/३३

२. द्रष्टव्य – यशोधरा का विलाप – बुद्धचरित (८/६० – ६६)
माता–पिता का विलाप – बुद्धचरित (८/७१ – ८६)

जरा रूपी यन्त्र से पीड़ित होकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने वाले सारहीन शरीर की रस निचोड़े गये तथा जलाने के लिए सुखाए गये ऊँख से उपमा बड़ी प्रभावोत्पादक है ।[1]

महाकवि की काव्यशैली वैदर्भी है इसी कारण उसमें कहीं भी दुरूहता नहीं है । भाषा की सरलता, भावों की कोमलता तथ वर्णन की सजीवता तीनों का अद्वितीय सामञ्जस्य है ।

कवि का अलङ्कार–विधान रस का परिपोषक है । अश्वघोष के दोनों महाकाव्यों में रूपक का आश्रय लेकर वीर रस का प्रयोग किया गया है । वीर तथा शान्त दोनों रस यहाँ इस तरह एकाकार हो गए हैं कि इनके बिना महाकाव्य की समीक्षा असम्भव ही प्रतीत होती है ।[2] किन्तु कालिदास और भवभूति के समक्ष यह वर्णन नीरस जान पड़ता है ।

प्रकृति--चित्रण में अश्वघोष ने अपने नए मौलिक प्रयोग किए हैं । इसके लिए 'बुद्धचरित' का तृतीय और सप्तम तथा 'सौन्दरनन्द' का सप्तम और दशम सर्ग विशेषतया अवलोकनीय है । अन्तः और बाह्य प्रकृति की सामञ्जस्यपूर्ण उद्भावना इन्होंने अपने महाकाव्यों में करने का भरसक प्रयास किया है । इनका प्रकृति वर्णन संश्लिष्ट और चित्रोपम है ।[3] किन्तु कालिदास और भवभूति के समक्ष यह वर्णन नीरस जान पड़ता है ।

अश्वघोष का ध्यान अपने प्रतिपाद्य वर्णन वस्तु की ओर अधिक शैली, अलंकार या छन्द–विधान की अभिव्यञ्जन प्रणाली आनुषङ्गिक है । अश्वघोष की शैली में वाल्मीकि शैली का उदात्त उत्कर्ष मिलता है । आकर्षक, सरस, प्रवाहमय काव्य के माध्यम से जन–जन तक बौद्धधर्म का प्रचार इनके काव्य का मुख्य लक्ष्य था, इसलिए इनकी शैली प्रसादमयी सरलता के साथ माधुर्य उत्पन्न करती है । अश्वघोष ने गम्भीर दार्शनिक विचारों को भी अत्यन्त सरल भाषा में व्यक्त किया है । कुछ लोगों का विचार है कि इनकी उपमाएँ कालिदास से बढ़कर हैं ।[4] छन्दों के प्रयोग में भी वे सिद्धहस्त है । 'उद्गाता' जैसे कम प्रयोग में आने वाले छन्द का भी बड़ी सफलता से प्रयोग किया है ।

---

१. "यथेक्षुरत्यन्त–रस–प्रपीडितो भुवि प्रविद्धो दहनाय शुष्यते ।
तथा जरायन्त्र–निपीडता तनुर्निपीतसारा मरणाय तिष्ठति ।।"
सौन्दरनन्द ६/३१

२. "ततः स बोध्यङ्गशिताात्तशस्त्रः सम्यप्रधानोत्तमवाहनस्थः ।
मार्गाङ्गमातङ्गवता बलेन शनैः शनैः क्लेशचम् जगाहे ।।"

३. "स्थितः स दीनः सहकारवीथ्यामालीनसम्मूर्च्छितषट्पदायाम् ।
भृशं जजृम्भे युगदीर्घबाहुध्यरिवा प्रियां चापमिवायचकर्ष ।।"

४. "अथो नतं तस्य मुखं सवाष्पं प्रवास्यमसेषु शिरोसहेषु ।
वक्राग्रनालं नलिनं तडागे वर्षोदकक्लिन्नमिवावभासे ।।"

छन्द काव्य में संगीतात्मकता उत्पन्न करते है । बिना संगीत के काव्य में सम्प्रेषणीयता उत्पन्न नहीं होती । भावहीन संगीत और छन्द–विहीन काव्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । छन्द का आश्रय लेकर कवि अपने भावों को उत्कर्ष पर पहुँचाता है । इस दृष्टि से भी अश्वघोष की शैली विषयानुकूल और सर्वत्र समर्थ है ।

भारवि

कालिदास के पश्चात् संस्कृत काव्यों में एक नया युग प्रारम्भ हुआ । कालिदास के समय तक काव्य में भावपक्ष की प्रधानता रही किन्तु बाद के कवियों ने काव्य में कलात्मकता लाने पर विशेष ध्यान दिया । महाकवि भारवि इस नई शैली के अग्रणी प्रतिष्ठापक थे ।

भारवि के जीवनवृत्त व समय के विषय में अभी भी अधंकार ही बना हुआ है भारवि का उल्लेख ऐहोल शिलालेख में मिलता है ।[1] जो ६३४ ई० में उत्कीर्ण हुआ था । दण्डी विरचित 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के अनुसार भारवि दण्डी के प्रपितामह थे । इस कथा के अनुसार भारवि पुलकेशिन द्वितीय के अनुज विधुवर्धन के सभापण्डित थे ।

इसके अतिरिक्त भारवि के किरातार्जुनीय का उद्धरण वामन तथा जयादित्य की 'काशिकावृत्ति' में उपलब्ध होता है । भारवि कालिदास से प्रभावित है तथा माघ पर भारवि का प्रभाव परिलक्षित होता है । अतः मेरे विचार से भारवि का समय ५५० ई० से ६०० ई० के मध्य् मानना ही उचित है ।

कर्त्तृत्व :–

संस्कृत के इस देदीप्यमान रत्न की ज्योति जिस प्रकाश से प्रकाशित हुई वह प्रकाश है **किरातार्जुनीयम्** । जो महाभारत में वर्णित एक उपाख्यान पर आधारित है । शिव को पाशुपात शस्त्र की प्राप्ति के लिए प्रसन्न करने के निमित्त की गई तपस्या को आधार बनाकर ही भारवि ने १८सर्ग के इस महाकाव्य की रचना की है ।

इतिवृत्त का प्रारम्भ द्यूतक्रीडा में हारे युधिष्ठिर के दूतवास से होता है । युधिष्ठिर एक वनेचर को दुर्योधन की शासन–प्रणाली जानने के लिए भेजते हैं । वनेचर के लौटने पर काव्य का इतिवृत्त चल पड़ता है । वनेचर इस बात का सङ्केत देता है कि दुर्योधन जाती हुई धरती को नीति से भी जीत लेने की चेष्टा में लगा है ।[2] द्रौपदी तथा भीम युधिष्ठिर को युद्ध करने के लिए प्रेरित करते हैं, परन्तु धर्मपरायण युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञा से नहीं हटते । तत्पश्चात् वेद व्यास आते हैं अर्जुन को पाशुपात अस्त्र प्राप्त करने के लिए इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने के लिए भेजते हैं । इन्द्र तपस्या से डर कर अनेक अप्सराओं को तपस्या भङ्ग करने के

---

१. "येनायोनिजवेश्य स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।
स विजयतां रविकीर्ति कविताश्रितकालिदासः भारविः कीर्तिः ।।"
– ऐहोल शिलालेख

२. "दुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयेन जेतुं जगती सुयोधनः ।"

लिए भेजते हैं पर अर्जुन का तप भङ्ग नहीं होता । इन्द्र प्रकट होकर उन्हें शिव की तपस्या का उपदेश देते हैं । अर्जुन पुनः तपस्या करते हैं । शिवजी अर्जुन की परीक्षा लेने के लिए एक किरात का रूप धारण करते हैं तथा एक मानवी शूकर को अर्जुन के पास भेज देते हैं । अर्जुन और किरात एक साथ उस शूकर पर बाण चलाते हैं । अर्जुन का बाण सूअर को मार डालता है । बाद में बचे हुए बाण के लिए किरात तथा अर्जुन में वाद–विवाद होता है । जो युद्ध का रूप धारण कर लेता है । अन्ततोगत्वा दोनों में बाहुयुद्ध होता है । इसी समय अर्जुन को पाशुपातास्त्र प्राप्ति के साथ ही काव्य की समाप्ति होती है –

"व्रज जय रिपुलोकं पादपद्मानतः सन्,
गदित इति शिवेन श्लाघितो देवसङ्घैः ।
निजगृहमथ गत्वा सादर पाण्डुपुत्रो,
धृतगुरूजय लक्ष्मीर्धर्मसूनुं ननाम ।।"
(१८/४८)

इस महाकाव्य का प्रारम्भ 'श्रीः' शब्द से तथा प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग कवि ने किया है ।

भारवि की काव्य–प्रतिभा :–

भारवि का किरातार्जुनीय महाकाव्य 'वृहत्त्रयी' का प्रथम रत्न है । भारवि का काव्य भाषा, काव्य–सौन्दर्य रस–परिपाक, वर्णन–वैविध्य, सालंकारिता विभिन्न छन्द योजना और शास्त्रीय पाण्डित्य का सुन्दर निदर्शन है । किरातार्जुनीय में कवि की उत्कृष्ट कल्पना उनके सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति की परिचायक है । काव्यरसिकों ने जिस सुन्दर अर्थ से मुग्ध होकर उन्हें **'आतपत्रभारवि'** से सुशोभित किया था वह अर्थ इस प्रकार है –

"कमल के वन खिले हुए हैं । हवा का झोंका पराग को आकाश में उड़ाकर चारों ओर फैला रहा है । चारों ओर फैला हुआ और मध्य में दण्डाकार पराग सुर्वण–छत्र के तुल्य शोभित हो रहा है ।" [१] इस श्लोक का अर्थ बिल्कुल अनूठा व मौलिक है ।

भारवि 'वैदर्भी–रीति' के कवि है । इनकी शैली की विशेषता यह है कि यह प्रसन्न होते हुए भी गम्भीर है । **'प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती'** भारवि की भाषा शैली को प्रकट करने वाला महनीय मन्त्र है । बड़े से बड़े अर्थों

---

१. "उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मा–दुद्धूतःसरसिजसम्भवः परागः ।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्ता दाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ।।"
– किरातार्जुनीयम् ५/३९

को थोड़े से थोड़े शब्दों द्वारा प्रकट करना वास्तव में उनकी अनुपम काव्यचातुरिता को प्रकट करता है । जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में बिहारी थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहकर 'गागर में सागर' के लिए प्रसिद्ध है । उसी प्रकार संस्कृत साहित्य में भारवि थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कहकर 'गागर में सागर' को चरितार्थ करते हैं । इनकी इसी विशेषता के कारण प्राचीन आलोचक इन्हें **'भारवेऽर्थगौरवम्'** की उपाधि से विभूषित करते हैं । अल्प शब्दों में विपुल अर्थ का सन्निवेश कर देना ही 'अर्थ गौरव' है । उनका एक पद वाक्य के अर्थ को प्रकट करने की योग्यता रखता है । 'कृष्ण कवि' ने भारवि की रचना को 'सन्मार्गदीपिका' के सदृश कहा है ।[१] प्रसिद्ध टीकाकार 'मल्लिनाथ' ने भारवि की उक्तियों को 'नारिकेलफल' के सदृश कहा है ।[२]

भारवि ने स्वयं अपने ग्रन्थ के द्वितीय सर्ग में युधिष्ठिर द्वारा जिन शब्दों में भीम के भाषण की प्रशंसा की है वे उनके कलासम्बन्धी सिद्धान्त के निदर्शन है –

"स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित ।।" [३]

भारवि ने व्याकरण सम्बन्धी निपुणता प्रदर्शित करने में कालिदास को भी पीछे छोड़ दिया है । कालिदास के काव्यों में निपुणतादि प्रदर्शन का कहीं कोई प्रयास नहीं दिखायी देता । वे प्रकृत्या विनीत है और उनका काव्यालङ्करण सहज है, कृत्रिम एवं परिश्रमजन्य नहीं है । जबकि भारवि तथा उनके बाद के कवियों में ठीक इसके विपरीत प्रकृति दिखायी देती है । स्थान–स्थान पर भारवि अपने व्याकरण–ज्ञान एवं इतर शास्त्र ज्ञान का प्रदर्शन करते है । इसी प्रकार की प्रवृत्ति भट्टि, माघ तथा श्रीहर्ष में अपने पूर्ण रूप को प्राप्त हुई है । महाकवि भट्टि ने तो अपना महाकाव्य व्याकरण–पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए ही लिखा है । भारवि ने 'तन्' धातु का हास्यास्पद रूप में अत्यधिक प्रयोग किया है । कम प्रयुक्त होने वाले पाणिनि के सूत्रों का उदाहरण उन्होंने दिया है । किरातार्जुनीय में ही सबसे पहले 'काकु वक्रोक्ति' का और 'विध्यर्थ' में 'निषेधद्वय' का प्रयोग अधिक पाया जाता है ।

भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' के प्रथम सर्ग में श्रेष्ठ भाषण के तीन गुण बतलाये हैं ।[४]

---

१. "प्रदेशवृत्त्यापि महान्तमर्थप्रदर्शयन्ती रसमादधाना ।
सा भारवेः सत्पथदीपिकेव रम्या कृतिः कैरिव नोपजिव्या ।।"
– कृष्ण कवि

२. "नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते ।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथोप्सितम् ।।"
– मल्लिनाथ

३. किरातार्जुनीयम् २/२७

४. "द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो रहस्यमनुज्ञामधिगम्य भूभृतः ।
स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ।।"
– किरातार्जुनीयम् १/३

१. शब्द–सौन्दर्य :–

हृदय में स्थित भावनाओं को प्रकट करने के लिए उपयुक्त तथा समर्थ शब्दों का प्रयोग ।

२. अर्थ–गाम्भीर्य :–

अर्थ की गम्भीरता अर्थात् थोड़े शब्दों में अधिक अर्थ की अभिव्यक्ति ।

३. असंदिग्ध :–

स्पष्ट प्रमाणिक कथन ।

उपर्युक्त तीनों गुण भारवि ने अपने काव्य–रचना में प्रयुक्त किए हैं ।

भारवि का अलङ्कार–वर्णन भी अद्वितीय है । अर्थालंकार, विशेषतः साधर्म्यमूलक अलङ्कारों के प्रयोग में भारवि नितान्त प्रवीण है । उपमा, श्लेष, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, निदर्शना के अतिरिक्त श्लेष तथा यमक का उन्होंने यथास्थान प्रयोग किया है । भारवि ने चित्रकाव्य लिखने में अपनी दक्षता दिखलाने के लिए एक पूरा का पूरा सर्ग – पञ्चदश सर्ग (१५) ही रच डाला इस सर्ग में अनेक ऐसे कटु काव्यों की रचना है जिसके प्रत्येक पद में एक ही व्यञ्जन ध्वनि पाई जाती है । जो **एकाक्षर पद चित्रकाव्य** कहे जाते हैं ।[१]

यद्यपि भारवि की उपमाएँ कालिदास के सदृश्य मनोहारी नहीं है, तथापि उपमा प्रयोगों में सौन्दर्य, सरसता तथा पाण्डित्य का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है । त्रयोदश तथा सप्तदश सर्ग में उपमा अलंकारों का सुन्दर वर्णन है । उपमा का एक श्रृङ्गारी प्रयोग अधोवत् है[२] –

"ततः स कूजत्कलहंसमेखलां सपाकसस्याहित–पाण्डुतागुणाम् ।
उपाससादोपजनं जनप्रियः प्रियामिवासादित–यौवनां भुवम् ।।"

भारवि के छन्दों के प्रयोग में कुशल है । 'वंशस्थ' उनका प्रिय छन्द है । 'क्षेमेन्द्र' ने भारवि की वंशस्थ–विचित्रता के लिए प्रशंसा की है ।[३] इसके अतिरिक्त उपजाति, वैतालीय, द्रुतविलबित, प्रमिताक्षरा,

---

१. "स सासिः सासुसूः सासो येयायेयाययायः ।
ललौ लीलां ललोऽलोलः शशीशशिशुशीः शशन् ।।"
– किरातार्जुनीयम् १५/५ एकाक्षरपदः

२. किरातार्जुनीयम् ४/१

३. "वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता ।
प्रतिभा भारवेर्थेन सच्छायेनाधिकीकृता ।।"
– सुवृत्त तिलक (क्षेमेन्द्र कवि)

प्रहर्षिणी, स्वागता, उद्‌गाता, पुष्पिताग्रा तथा कई अप्रसिद्ध औपच्छदसिवक, अपरवक्त्र, चन्द्रिका तथा मत्तमयूर छन्दों का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है । भारवि के प्रमुख बारह छन्द हैं ।

निष्कर्ष रूप में डॉ० डे के कथन के साथ हम यही कहेंगे – "भारवि की कला प्रायः अत्यधिक अलङ्कृत नहीं है, किन्तु आकृति–सौष्ठव की नियमितता व्यक्त करती है । शैली की दुष्प्राप्य कान्ति भारवि में सर्वथा नहीं है, ऐसा कहना उचित नहीं है, किन्तु भारवि उसकी व्यञ्जना अधिक नहीं कराते । **भारवि का अर्थगौरव,** जिसके लिए विद्वानों ने उनकी अत्यधिक प्रशंसा की है उनकी गम्भीर अभिव्यञ्जना शैली का फल है, किन्तु यह अर्थगौरव एक साथ भारवि की शक्ति तथा भावपक्ष की दुर्बलता दोनों को व्यक्त करता है । भारवि की अभिव्यञ्जना शैली का परिपाक अपनी उदात्त स्निग्धता के कारण सुन्दर लगता है, उसमें शब्द तथा अर्थ सुडौलपन की स्वस्थता है, किन्तु महान् कविता की उस शक्ति की कमी है, जो भावों की स्फूर्ति तथा हृदय को उठाने की उच्चतम क्षमता रखती है ।"

भट्टि

भारवि के पश्चात् महाकाव्य–परम्परा में भट्टि का स्थान है यथा –

"आदौ कालिदासः स्यादश्वघोषः ततः परम् ।
भारविश्च तथा भट्टिः कुमारश्चापि पञ्चमः ।।"
माघरत्नाकरौ पश्चात् हरिश्चन्द्रस्तथैव च ।
कविराजश्च श्रीहर्षः प्रख्याताः कवयो दशः ।।"

भट्टि ने 'भट्टिकाव्य' अथवा 'रावणवध' नामक महाकाव्य की रचना की है । यह महाकाव्य व्याकरणशास्त्र के नियमों के उदाहरण प्रस्तुत करने के निमित्त रचा गया है । यह मुख्यतः व्याकरण शास्त्र का काव्य है । इसमें राम की कथा का जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक का वर्णन है । इसका इतिवृत्त वाल्मीकि रामायण से लिया गया है । पूरी कथा २२ सर्गों में विभक्त हैं । विद्वानों ने भट्टि को वलभी के शासक श्रीधरसेन द्वितीय (६१० – ६१५) ई० का समकालीन माना है ।

काव्य–प्रतिभा (शैली) :–

कविवर भट्टि ने इस ग्रन्थ का निर्माण व्याकरण–ज्ञान को लक्ष्य करके किया, लेकिन वास्तविकता यह है कि यह एक सफल महाकाव्य है न कि व्याकरण–ग्रन्थ । इसमें महाकाव्य के सभी अपेक्षित गुण विद्यमान हैं । भट्टि काव्य का प्रधान रस 'वीर' है तथा श्रृङ्गार का वर्णन भी प्रसङ्गवश मनोहारी है । वीर रस का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

"अधिज्यचापः स्थिरबाहुमुष्टिरूदञ्चिताऽक्षोऽञ्चितदक्षिणोरूः ।
तान् लक्ष्मणः सन्नतवामजङ्छो जधानशुद्धेषुरमन्दकर्षी ।।"
२ – ३१

भट्टि काव्य का द्वितीय सर्ग प्रकृति–वर्णन के लिए प्रसिद्ध है । द्वितीय सर्ग का शरद वर्णन [1] तथा द्वितीय सर्ग का प्रभात–वर्णन [2] किसके हृदय को द्रवित नहीं करता ।

---

१. "बिम्बागतैस्तीरवनैः समृद्धिं निजां विलोक्याऽपहृतां पयोभिः ।
कूलानि साऽमर्षतयेव तेनुः सरोजक्ष्मीं स्थलपद्महासैः ।।"
(२ – ३)

२. "प्रभातवाताहति–कम्पिताकृतिः, कुमुद्वती–रेणु–पिशङ्ग विग्रहम् ।
निरास–भृङ्गं कुपितेव पद्मिनी, न मानिनी संसहतेऽन्यसंगमम् ।।"
(२ – ६)

इसी प्रकार सूर्योदय का वर्णन कितना रमणीय है –

"दूरूत्तरे पङ्के इवाऽन्धकारे
मग्नं जगत् सन्ततरश्मिरज्जुः ।
प्रनष्टमूर्तिप्रविभागमुद्यन्
प्रसमुज्जहारेव ततो विवस्वान् ।।"
११/२०

सहृदयों के मन को आह्लादित करने वाली उपर्युक्त उत्प्रेक्षा महाकवि माघ के प्रभात--वर्णन की स्मृति दिलाती है । अधिकांशतः अलङ्कार ग्रन्थों में दृष्टान्त रूप में प्रयुक्त एकावली अलङ्कार का प्रसिद्ध उदाहरण भी भट्टि की ही रचना है ।[1]

पात्रों के यथार्थ वर्णन में भी महाकवि कुशल है । महाकवि भट्टि की भाषाविचित्रता भी अद्भुत है जिससे इनके बहुभाषाभिज्ञ होने का प्रमाण मिलता है ।[2]

महाकवि भट्टि ने पात्रों के भाषणों में विद्वत्ता का परिचय दिया है । पंचम सर्ग में शूर्पणखा का भाषण उसके स्वभाव की कुटिलता का पोषक है । भट्टिकाव्य के कतिपय पात्रों के भाषण यह सिद्ध करते हैं कि महाकवि भट्टि वक्तृत्व–कला में नितान्त कुशल हैं ।

रावण की सभा में शूर्पणखा का भाषण निश्चय ही प्रभावोत्पादक बन पड़ा है ।[3]

द्वादश सर्ग की विभीषण की उक्तियाँ कवि के राजनीतिक–ज्ञान का परिचय देती है । विभीषण तथा माल्यवान् अनेक नीतिपूर्ण उक्तियों से रावण को समझाते है । रामचन्द्र जी सेना लेकर समुद्र तट पर आ गए

---

१. "न तज्जलं यन्न सुचारूपङ्कजं न पङ्कजं तद् यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ।।"
– भट्टिकाव्य, (२ – १६)

२. "चारुसमीरणरमणे हरिकलङ्ककिरणावलीसविलासा ।
आबद्धराममोहा वेलामूले विभावरी परिहीणा ।।"
– भट्टिकाव्य, (१३ – १)

३. "वृतस्त्वं पात्रेसमितैः खट्वारूढः प्रमादवान् ।
पानशौण्डः श्रियं नेता यात्यन्तीनत्वमुन्मनाः ।।"
– भट्टिकाव्य, (५ – १०)
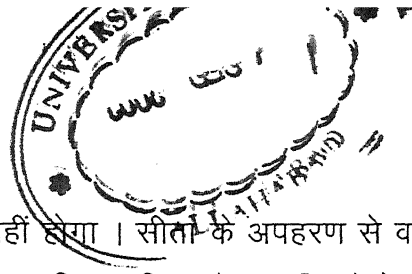
है । पर सीता के लौटा दिये जाने पर वे लौट जायेंगे युद्ध नहीं होगा । सीता के अपहरण से वह बहुत दुःखी है तथा राक्षस भी अक्षादि बान्धव के माने जाने से दुःखी हैं इसलिए उचित होगा यदि दोनों दुःखी होने के कारण एक दूसरे से सन्धि कर लें । जैसे दो तपे हुए लौह–पिण्ड एक–दूसरे से सश्लिष्ट हो जाते हैं, उसी तरह दोनों तप्त व्यक्तियों – राम और रावण में सन्धि हो जाए –

"रामोऽपि दाराऽऽहरणेन तप्तो वयं हतैर्बन्धुभिरात्मतुल्यैः ।
तप्तेन तप्तस्य यथाऽऽयसो नः सन्धिः परेणास्तु विमुञ्च सीताम् ।।"
(१२ / ४०)

भट्टि के त्रयोदश सर्ग पर प्रवरसेन के 'सेतुबन्ध' महाकाव्य का प्रभाव है । इसमें जो समुन्द्र–वर्णन की कल्पनाओं का रोचक वर्णन किया गया है । उस पर प्रवरसेन का पूर्णतया प्रभाव है और इसमें समासान्त–शैली की पदावली का प्रयोग है ।

इस सर्ग की विशेषता यह भी है कि इसमें संस्कृत और प्राकृत का एक साथ प्रयोग है । इस सर्ग का छन्द स्कन्धक है जो प्राकृत का प्रमुख छन्द है । छन्द की दृष्टि से भी प्रवरसेन का प्रभाव है, क्योंकि सेतुबन्ध महाकाव्य का प्रमुख छन्द स्कन्धक ही है ।[१]

भट्टि काव्य में छन्दों का प्रयोग कम हुआ है । अधिकार तथा तिङन्त काण्ड वाले व्याकरण सम्बन्धी सर्गों में भट्टि ने केवल अनुष्टुप् छन्दों का ही प्रयोग किया है । परन्तु प्रकीर्ण सर्गों में उन्होंने उपजाति, रूचिरा, मालिनी आदि छन्दों का प्रयोग किया है ।

महाकवि भट्टि ने अपने इस ग्रन्थ का निर्माण करके उस महाकाव्य–परम्परा का शुभारम्भ किया, जिसमें महाकाव्यों द्वारा व्याकरण के नियमों का प्रदर्शन करना ही कवियों का प्रमुख लक्ष्य रहा है । भट्टि की परम्परा का अनुसरण करते हुए ही भूम या भौमक नामक कवि ने **'रावणार्जुनीय'** नामक काव्य की रचना की, जिसमें रावण तथा कार्तवीर्य की कथा के द्वारा पाणिनि के नियमों का प्रदर्शन किया है । उसके बाद हलायुध ने **'काव्यरहस्य'** में राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज तृतीय की प्रशस्ति के साथ धातु–पाठ का प्रदर्शन किया । **'कुमारपाल चरित'** काव्य में जैनाचार्य हेमचन्द्र ने हैमव्याकरण शब्दानुशास्त्र के नियमों का प्रदर्शन किया और वासुदेव के **'वासुदेव–चरित'** तथा नारायण भट्ट के **'धातुकाव्य'** में भी इसी भट्टि–परम्परा का अनुसरण पाया जाता है ।

भट्टि तथा उनके काव्य पर विस्तृत रूप से विचार आगे के अध्याय में किया जायेगा ।

---

१. स्कन्धक छन्द का लक्षण –

"चउमत्ता अट्ठगणा पुत्वद्धे उत्तद्ध होई समरूआ ।
सो रवन्धआ विआणहु पिङ्गल पभणेइ मुद्धि बहुसम्भेआ ।।"

– प्राकृतपैङ्गल

कुमारदास

कालिदास, भारवि तथा भट्टि के बाद महाकाव्य परम्परा में कुमारदास का नाम आता है । **जानकीहरण** इनकी एकमात्र रचना है । ये कुमारभट्ट अथवा भट्टकुमार के नाम से भी प्रसिद्ध है । कुमारदास के अनेक सुन्दर पद्यों को उद्धरण के रूप में शाङ्र्गधरपद्धति, सुभाषितावली, सदुक्तिकर्णामृत में प्रयुक्त किया गया है तथा अनेक कोश–ग्रन्थ, व्याकरण–ग्रन्थ तथा अलंकार–ग्रन्थ (हेमचन्द्र का काव्यानुशासन, भोज के श्रृंगार–प्रकाश तथा राजशेखर की काव्य–मीमांसा) में उनके वैयक्तिक जीवन, पद्यों तथा काव्य–प्रतिभा के बारे में पर्याप्त सङ्केत मिलता है । राजशेखर (१००० ई०) ने कुमारदास का उल्लेख किया है ।[१]

'श्रूयन्ते' से यह सङ्केत मिलता है कि कुमारदास राजशेखर से बहुत पहले ही प्रसिद्धि पा चुके थे । अधिकांश विद्वानों के मतानुसार कुमारदास का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध लगभग ६२० ई० है ।

कवि कुमारदास का जानकीहरण बीस सर्गों में निबद्ध महाकाव्य है । यह महाकाव्य कालिदास के दोनों महाकाव्यों से पूर्णरूपेण प्रभावित है । इस ग्रन्थ की पृष्ठभूमि रामायणी कथा है । **'जानकीहरण'** के लिए भट्टि का रामपरक काव्य भी उपजीव्य रहा है । इसका इतिवृत्त काफी हद तक भट्टि–काव्य पर आधृत है, किन्तु वे भट्टि की अपेक्षा कालिदास से अधिक प्रभावित हुए हैं । इसी सत्य को प्रमाणित करने वाला श्लोक अधोवत् है –

"जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति ।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ ।।"
राजशेखर – काव्यमीमांसा

काव्य–वैशिष्ट्य :–

कालिदास ने जिस रससिद्ध शैली का प्रणयन किया था वह स्थान 'विचित्र शैली' ने ले लिया । इस विचित्र शैली के अन्तर्गत काव्य के मूल–वस्तु को विभिन्न अलंकारों से सुसज्जित करके तथा अपने वैदुष्य के प्रदर्शन को प्रधानता दी गयी । इस शैली के प्रमुख प्रतिनिधि कवि 'भारवि' माने जाते हैं । कालिदास भी इसी युग के कवि थे ।

जानकीहरण में कोमल भावनाओं को व्यक्त करने में, सुमधुर शब्द विन्यास में तथा हृदय में रोमाञ्च उत्पन्न

---

१. "अप्रतिभस्य पदार्थसार्थः परोक्ष इव, प्रतिभावतः पुनरपश्यतोऽपि प्रत्यक्ष इव ।
यतो मेधाविरूद्रकुमारदासादयों जात्यन्धाः कवयः श्रूयन्ते ।।"
राजशेखर – काव्यमीमांसा, चतुर्थ अध्याय, पदवाक्यविवेक

करने वाले पद्यों में कवि की काव्य–प्रतिभा उत्कृष्ट–रूप में निखर कर सामने आयी है । नारी–सौन्दर्य के चित्रण में वे कुशल हैं । कजरारी भौहों के बाँकेपन का कितना सुन्दर चित्रण है :–

"युग्मं भ्रुवोश्चन्चल जिह्मपक्षसम्पर्कभीत्यासितलोचनायाः ।
प्रोक्षम्य दूरोत्सरणं विधित्सुर्मध्ये न तस्थाविति मे वितर्कः ।।" [१]

इसी प्रकार केशराशि की सौन्दर्य–श्री का वर्णन् अधोवत् है –

"तत्केशपाशावजितात्मवर्हभारस्य वासः शिखिनो वनेषु ।
चक्रे जनस्य स्पृशतीति शंका चेतस्तिरश्चामापि जातु लज्जाम् ।।" [२]

उपर्युक्त दोनों श्लोकों में कालिदास की कल्पना को उपजीव्य बनाया गया है ।

कुमारदास **'बाल–मनोविज्ञान'** का बड़ा ही हृदयहारी चित्रण प्रस्तुत करते हैं । बाल–स्वभाव का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन करने में यह सिद्धहस्त है –

"राम यहाँ नहीं हैं, "कहाँ चले गये" जब स्त्रियाँ खिलवाड़ में कहने लगी तो उनके सामने ही बालक राम ने बहाने से अपने हाथों से अपना मुँह ढक लिया जैसे वहाँ है ही नहीं ।[३]

एक और मनोहारी वर्णन द्रष्टव्य है –

"स्त्रियाँ पूछ रहीं हैं – अरे, बताओ तो तुमने चूहे से क्या लिया ? ऐसा पूछे जाने पर पहले से ही सिखाया–पढ़ाया वह बालक अपने नये–नये दाँत के चौके को दिखा देता था । कितना स्वाभाविक है यह शिशुलीला का चित्रण ! [४]

---

१. जानकीहरण – कुमारदास ७/४०

२. जानकीहरण – कुमारदास १/४१

३. "न स राम इह क्व यात इत्यनुयुक्तो वनिताभिरग्रतः ।
निजहस्तपुटावृताननो विदधेऽलीकनिलीनमर्भकः ।।"

जानकीहरण – कुमारदास ४/४८

४. "अयि दर्शय तत् किमुन्दुराद् भवतोपात्तमिति प्रचोदितः ।
दरिदर्शयति स्म शिक्षया नवरं दन्त–चतुष्टयं शिशुः ।।"

जानकीहरण – कुमारदास ४/११

जानकीहरण के सप्तम सर्ग के प्रथम पद्य से लेकर १८ पद्य तक सीता के 'नख–शिख' वर्णन् में कुमारदास ने **'कुमारसम्भव'** में वर्णित पार्वती के सौन्दर्य वर्णन का पूर्णरूपेण अनुसरण किया है ।

'जानकीहरण' के नवमसर्ग के चौथे पद्य से लेकर सातवें पद्य तक जनक द्वारा नवविवाहिता सीता को दिए गए उपदेश वर्णित है । जिन पर **'शाकुन्तल'** में वर्णित कण्व के प्रसिद्ध उपदेश का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।[1]

'जानकीहरण' में अलंकारों की भावानुकूल योजना प्रस्तुत की गयी है । यमक का प्रयोग बहुतायत हुआ है । एकादश सर्ग के निम्नांकित पद्यों में यमक का विन्यास किया गया है – ११, ३८, ५०, ५५, ६१, ७१, ७६, ८२ तथा ८६ । इसी प्रकार चतुर्दश सर्ग में सेतु बन्धन के चित्रण में भी अलंकार की योजना की गयी है – २, १०, १४, १८, २४, ३२, ३६, ४४, ५०, ५५, ६०, ७३ तथा ७५ । सत्रहवें सर्ग में युद्ध–वर्णन प्रसङ्ग में भी आद्योपान्त यमक की छटा दिखाई गयी है ।[2] इस अलंकार–प्रियता के कारण उन पर भारवि का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है । जहाँ पर वर्णन चित्रात्मक हो उठा है वहाँ पर कवि ने उत्प्रेक्षाओं और समासोक्तियों का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है ।

कुमारदास प्रकृति–चित्रण में भी कुशल हैं । उन्होंने प्राकृतिक उपादानों पर मानवीय व्यवहारों का आरोप किया है ।

अतः स्पष्ट है कि कुमारदास ने **'जानकीहरण'** महाकाव्य की रचना में सभी महाकाव्यगत गुणों का सन्निवेश किया है । किन्तु **'जानकीहरण'** का **'अष्टम सर्ग'** जिसमें राम–सीता की रति–क्रीडाओं का विस्तृत वर्णन है । बहुत ही आप्रासङ्गिक व भद्दा प्रतीत होता है । इसके अतिरिक्त सभी प्रसङ्ग बहुत ही मनोहारी व रमणीय बन पड़े हैं ।

---

१. "गतापि भर्त्रे परिकोपमायतं गिरः कृथा मा परूषार्थदीपनी ।
कुलस्त्रियो भतृर्जनस्य भर्त्सने परं हि मौन प्रवदन्ति साधनम् ।।"

जानकीहरण – कुमारदास ९/६

२. "कृता बलौघेन तथा यता यता रजस्ततिः प्रावृतदिग्घना घना ।
यथा खैरश्वपरम्परा परा ययौ निमज्जत्सुरमालयालया ।।"

जानकीहरण – कुमारदास ७/३१

माघ

महाकवि माघ संस्कृत काव्य जगत् के महनीय गौरवमय पद पर आसीन हैं । ये दत्तक के पुत्र तथा राजा श्रीवर्मल के कार्याध्यक्ष सुप्रभदेव के पौत्र थे । इनका जन्मकाल ७०० ई० के आस-पास अर्थात् सातवीं सदी उत्तरार्द्ध मानना उचित है ।

ग्रन्थ :-

'शिशुपालवध' महाकाव्य इनकी एकमात्र रचना है । इनका महाकाव्य बृहत्त्रयी का द्वितीय रत्न नहीं प्रत्युत् महाकाव्यगत समस्त गुण उत्कृष्ट रूप में इसमें विद्यमान है । उन्होंने अपने पूर्ववर्ती समस्त कवियों के उत्कृष्ट गुणों का समन्वय किया है । उन्होंने कालिदास से काव्य-सौन्दर्य, भारवि से अर्थ-गौरव व दण्डी से पद-लालित्य का संकलन किया है । माघ के काव्य में इन तीनों गुणों का मणिकाञ्चन संयोग है । उनमें कलापक्ष व भावपक्ष की निपुणता है, व्याकरण-पटुता है, वीर व श्रृंगार का क्रमशः मनोहारी व ओजस्वी चित्रण है । राजनीति के उपदेश हैं । दर्शन का दिग्दर्शन है । अलंकारों की छटा है । उनकी भाषा में परिष्कार, लालित्य प्रवाह व भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता है । इसका कथानक महाभारत से लिया गया है ।

माघ की विद्वत्ता :-

माघ का **काव्य-सौंदर्य** परवर्ती सभी कवियों के लिए अनुकरणीय और प्रंशसनीय रहा है । इन्हीं गुणों के कारण भारतीय आलोचकों ने माघ पर प्रभूत प्रशंसा वृष्टि की है -

"उपमा कालिदासस्य, भारवेर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयो गुणाः ।।"

यह प्रशस्ति गान किसने व कब किया यह निश्चित रूप से कहना कठिन है । ऊपरी तौर पर इस सूक्ति का सीधा अर्थ यही निकलता है कि माघ में भारवि, कालिदास व दण्डी तीनों के गुण विद्यमान हैं । स्पष्टतः इस भाव के साथ हमारे मन में माघ के समक्ष कालिदास, भारवि और दण्डी का लालित्य न्यून पड़ने लगता है और माघ सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं ।

इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि जब हम ग्रीष्म के प्रखर ताप से संतप्त हो कलश के ीतल जल की प्रशंसा इन शब्दों में करते हैं कि - **"बर्फ मात है इसके सामने"** तो हमारा मन्तव्य यह नहीं होता कि पानी की शीतलता हिम से अधिक है बल्कि उस समय वह जल उतना ही सुख देता है जो बर्फ दे सकती है । लगभग यही स्थिति इसी सूक्ति में भी है । माघ की कविता कामिनी में इन तीनों में से किसीं का अभाव नहीं खटकता है । इन विशेषताओं का विवेचन अधोवत् है -

१. उपमा :–

नवीन–चमत्कारी उपमा का विन्यास माघ की विशेषता है । कालिदास की 'दीपशिखा' के समान ही इन्हें भी उपमा के कारण **घण्टामाघ** की उपाधि से अलंकृत किया गया है । उपमा प्रयोगों में कहीं शास्त्रीय पाण्डित्य हैं, कहीं सूक्ष्म दृष्टि और कहीं गम्भीर चिन्तन । भाग्य और पुरूषार्थ की समानता 'शब्द' और 'अर्थ' से कितनी सूझ–बूझ के साथ की गयी है ।[१]

काव्यशास्त्रीय उपमा का एक सुन्दर उदाहरण है – "सामान्य राजा, प्रमुख राजा के उसी प्रकार सहायक होते हैं जैसे संचारी भाव स्थायी भाव के ।[२]

भगवान् श्रीकृष्ण का रूप तथा उनका समष्टि चरित्र कवि की उपमाओं के माध्यम से बड़े सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त हुआ है ।[३]

कवि की असाधरण प्रतिभा साधारण पदार्थों में विशिष्टता उत्पन्न करती है । प्राची में सूर्योदय का यह रंगीन चित्र एक चिरस्मरणीय वस्तु है –

"विततपृथुवस्त्रातुल्यरूपैर्मयूखैः,
कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्ययाणः ।
कृत्तचपलविहङ्गालापकोताहलभि–
र्जलनिधिजलमध्यदेष उत्तीर्यतेऽर्कः ।।"

इसके अतिरिक्त माघ स्वभावोक्ति के सफल चित्रकार हैं । रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, सहोक्ति, तुल्ययोगिता, समासोक्ति, काव्यलिङ्ग, विरोध जैसे अनेक अर्थालङ्कारों का सुन्दर प्रयोग माघ में मिल जाता है । शब्दालङ्कारों का भी जैसे – यमक, अनुप्रास का सुन्दर प्रयोग एक ही श्लोक में किया गया है –

---

१. "नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरूषे ।
शब्दार्थौ सत्कविरिव इयं विद्वानपेक्षते ।।"

माघ – शिशुपालवध २/८८

२. "स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिको यथा ।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभूतः ।।"

३. "स तप्तकार्त्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः ।
विदिधुते वाऽवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः ।।"

माघ – शिशुपालवधम् १/२०

"मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरून्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ।।" [1]

अर्थ–गौरव :–

भारवि के समान माघ में भी अर्थ–गौरव के उत्पादन की विशेष क्षमता है । अर्थान्तरन्यास अलंकार से युक्त अनेक सुभाषित वाक्य अर्थ–गौरव के उदाहरण हैं –

१. सदाभिमानैक धना हि मानिनः । १/६७

२. बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति । २/१००

३. अनेकशः संस्तुतमप्यनल्पा नवं नवं प्रीतिरहो करोति । ३/३०

४. मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्य । ५/४६

५. शोभायै विपदि सदाश्रिता भवन्ति । ८/५५

६. चपलात्मिका प्रकृतिरेव हीदृशी । १५/

७. उपदेशपराः परेष्वपि स्वविनाशाभिमुखेषु साधवः । १६/४१

८. उपकृत्य निसर्गतः परेषामुपरोधं न हि कुर्वन्ते महान्तः । २०/७४

राजनीति तथा **अर्थशास्त्र** की गहन बातें कितनी सीधे ढंग से कह दी गयी है । जिससे माघ का सफल राजनीतिज्ञ होना स्पष्ट झलकता है – "शास्त्र जिसकी बुद्धि है । **स्वामी, अमात्य** आदि जिसके अङ्ग हैं जिसका कवच दुर्वेध्य मन्त्र की सुरक्षा है जिसके नेत्र गुप्तचर हैं जिसका मुख सन्देशवाहक दूत होता है ऐसा राजा सामान्य जन न होकर अलौकिक पुरूष होता है ।"

सांख्य दर्शन में प्रतिपादित 'प्रकृति' और 'विकृति' से पृथक् पुरूष के स्वरूप का दार्शनिक तत्व छोटे से श्लोक में उपस्थित कर सांख्य दर्शन का गहन भाव भर दिया गया है –

"उदासितारं निगृहीतमानसै, गृहीतमध्यात्मदृशाकथञ्चन ।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरूषं पुराविदः ।।" [2]

चतुर्दश सर्ग का यज्ञ वर्णन इतना विशद है कि आस्तिक जन रीझ उठते हैं तथा कवि की अनुष्ठान विधिज्ञता के बारे में पता चलता है । मन्त्र के उच्चारण का विधान ऋत्विक् गण इस प्रकार कर रहे थे कि उसके

---

१. माघ – शिशुपालवध ६/२०

२. माघ – शिशुपालवध १/३३

अर्थ को समझने में किसी प्रकार के सन्देह का स्थान नहीं था । आशय यह है कि मन्त्रों में जहाँ कहीं सन्देह उत्पन्न करने वाले समास आ जाते थे जिनका विग्रह कई प्रकार से हो सकता था तो ऐसे स्थलों पर व्याकरण के ज्ञाता ऋत्विक् गण स्वर के ही द्वारा यजमान के प्रस्तुत कार्य के अनुकूल अर्थ का निश्चय विग्रह द्वारा कर रहे थे ।[1]

पदलालित्य :–

माघ पद विन्यास के अद्वितीय शिल्पी है । उन्होंने नित्य–नूतन श्रुतिमधुर, शब्दावली का इतना व्यापक प्रयोग किया है कि संस्कृत जगत् में यह आभाणक ही प्रसिद्ध है कि माघ के नव सर्ग बीतने पर कोई नवीन शब्द मिलता ही नहीं है –

"नवसर्गगतेमाघे नव शब्दो न विद्यते ।"

उनके शब्दों में इतनी संगीतात्मकता है कि वीणा के तारों की झंकार की भाँति अर्थावबोध की प्रतीक्षा किए बिना ही वह श्रोताओं के हृदय को रसाप्लावित कर देती है । बसन्त की सुषमा का संकेत कितनी सुन्दरता से ध्वनि हो रहा है । श्लोक के सरस वर्णों का उच्चारण करते समय मानों जीभ फिसलती चली जाती है ।[2] भाषा–सौन्दर्य के कुछ सुन्दर उदाहरण अधोवत् हैं –

१. पतन् पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः । १/१२

२. जिघाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं । १/१६

३. क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः । ४/१७

भाषा का यह लोंच और माधुर्य यमक अलंकार के प्रयोग स्थल पर विशेष रूप से दिखलायी देता है । बसन्त ऋतु के वैभव का श्रुति–मधुर पदावली में कितना सुन्दर वर्णन है ।[3]

इस महाकाव्य का अंगी रस 'वीर' है तथा श्रृंगार, हास्यादि अङ्ग रस है । शैली माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुण से समन्वित है । उनका काव्य प्रौढ़ एवं उदात्त शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है । प्रत्येक भाव, प्रत्येक वर्णन साधारण शब्दों में न कहकर अलंकारों से मण्डित भाषा में प्रकट किया गया है । वस्तुतः प्रस्तुत महाकाव्य में कालिदास के समान काव्यसौन्दर्य, भारवि के समान अर्थगाम्भीर्य, दण्डी के समान पदलालित्य तथा भट्टि के समान व्याकरणपरख इन चारों का यदि कहीं एकत्र समन्वित रूप है, तो वह **'शिशुपालवधम्'** ही है ।

---

१. "संशयाय दधतो सरूपतां दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति ।
शब्दशासनविदः समासयोर्विग्रहं व्यनससुस्वरेण ते ।।"

२. मधुरया मधुबोधित माधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकाराङ्गनया मुहुरुन्मद ध्वनिभृतानिभृताक्षरमुज्जगे ।।" (६/२०)

३. "नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमरूपयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ।।" (६/२)

श्रीहर्ष

श्रीहर्ष बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए। ये कन्नौज के राजा विजयचन्द्र एवं जयचन्द्र के दरबार के उद्‌भट विद्वान् एवं कवि थे। श्रीहर्ष ने स्वयं लिखा है कि वे कान्यकुब्जेश्वर (कन्नौज) के सभापण्डित थे। इन्हें सभा में दो बीड़े पान के दिये जाने का सम्मान प्राप्त था।[1] कहते हैं उन्हें चिन्तामणि मन्त्र की सिद्धि मिल गयी थी, इन्हें सरस्वती का वर प्राप्त हो गया था।

ग्रन्थ :–

श्रीहर्ष ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। इन सभी ग्रन्थों के नाम कविवर ने अपने 'नैषधीयचरित' में उल्लिखित किया है। नैषध में उल्लेख–क्रम से ग्रन्थों का नाम अधोवत् है –

१. स्थैर्य – विचारण प्रकरण

२. विजय – प्रशस्ति

३. खण्डनखण्डखाद्य

४. गोडोर्वीशकुलप्रशस्ति

५. अर्णववर्णन

६. हिन्द प्रशस्ति

७. शिवशक्तिसिद्धि

८. नवसाहसाङ्कचरितचम्पू

९. नैषधीयचरितम्।

उपर्युक्त सभी रचनाओं में नैषधीयचरितम् महाकाव्य संस्कृत साहित्य का अत्युत्कृष्ट महाकाव्य है। इसकी मूलकथा **'महाभारत'** के अन्तर्गत विद्यमान **'वनपर्व'** के प्रसिद्ध **'नलोपाख्यान अध्याय ५२ – ५७'** में ही प्राप्त होती है किन्तु महाभारत के छोटे से प्रसङ्ग को उन्होंने २२ सर्गों के महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है।

---

१. "ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।"

श्रीहर्ष – नैषधीयचरितम् २२/१५३

काव्य शैली :–

श्रीहर्ष की काव्य–शैली प्रायः वैदर्भी है, किन्तु यह पाण्डित्य से परिपूर्ण है । उन्होंने स्वयं ही कहा है – "वैदर्भी रीति, श्लेषालङ्कार वक्रोक्ति–विलास, गुण, रस इत्यादि के द्वारा यह नैषधचरित महाकाव्य पूर्ण है ।" [1]

अलंकार :–

श्रीहर्ष की शैली की प्रधान विशेषता है उनके अलंकार । उनके प्रत्येक छन्द, अलङ्कार से परिपूर्ण है । इसी कारण **'नैषधे पदलालित्यं'** कहकर पदों की प्रशंसा की गयी है । कुछ सुन्दर पद प्रस्तुत है –

श्लेष अलंकार से तो कवि का विशेष अनुराग है । श्लेष का सुन्दरतम् उदाहरण १३ वें सर्ग के पञ्चनली श्लोक में मिलता है, एक श्लोक के पाँच अर्थ हैं –

> "देवः षतिर्विदुषिः नैषधराजगत्या, निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्या ।
> नायं नलः खलु तवातिमहानलाभो यद्येनमुज्झसिवरः कतरः पुनस्ते ।।"
>
> १३ / ३४

इसके अतिरिक्त उत्प्रेक्षाओं में उनकी मौलिकता तथा चमत्कार–प्रदर्शन का पता चलता है । [2]

उपमा, उत्प्रेक्षादि अलंकारों के अतिरिक्त अतिशयोक्ति, विरोधाभास, स्वभावोक्ति, समासोक्ति, दृष्टान्त आदि अनेक अलंकारो का भी समुचित प्रयोग अपने महाकाव्य में यथास्थान किया है ।

यत्र–तत्र नाट्यशास्त्र तथा साहित्यशास्त्र से सम्बन्धित उपमानों को भी महाकवि ने अपनाया है । निम्नलिखित श्लोक में उन्होंने पौराणिक–कथा का उपयोग किस चातुर्य के साथ किया है दर्शनीय है [3] –

---

१. "धन्यासि वैदर्भीगुणैरूदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि ।" ३ / ११६
"नलेन भायाः शशिना निशेव, त्वया स भायान्निशया शशीव ।" ३ / ११७

२. "यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जिम ।
तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ ।।"
१ / ८

३. "यथोह्यमानः खलु भोगभोजिना प्रसह्य वैरोचनिजस्य पत्तनम् ।
विदर्भजाया मदनस्तथा मनोऽनलावरूद्धं वयसैव वेशितः ।।"
१ / ३२

छन्द :—

नैषध—चरित में १६वें छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

प्रकृति—वर्णन :—

महाकाव्यगत्—लक्षणों के अनुकूल नैषध में भी प्रकृति—वर्णन मनोरम है । प्रथम सर्ग में ही हमें दिखाई पड़ता है—

"विवेश गत्वा स विलासकाननं ततः क्षणात् क्षोणिपतिर्धृतीच्छया ।
प्रवालरागच्छुरितं सुषुप्सया हरिर्घनच्छायामिवाम्भसां निधिम् ।।"

१ / ७४

प्रकृति का मानवीकरण करके उनमें मानवोचित भावनाओं का वर्णन किया गया है[1] पशु—पक्षियों का मानव—सदृश आचरण हमें नैषध में तब प्राप्त होता है जब 'हंस—विलाप' के प्रसङ्ग में हंस अपनी माँ, पत्नी व शिशुओं के प्रति चिन्तित रहता है ।

वास्तविकता तो यह है प्रकृति—चित्रण में वह उद्दीपन रूप का वर्णन करते हैं । बाइसवें सर्ग में कवि ने एक साथ ही अनेक चमत्कारिणी कल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिनकी रोचकता से कविह्रदय आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता ।

रस :—

नैषध का प्रधान रस 'श्रृङ्गार' है, किन्तु उत्साह, हास, विस्मय, जुगुप्सा, शोक, क्रोध और वात्सल्य की भी यथास्थान अत्यन्त मनोरम व्यञ्जना हुई है । श्रृङ्गार के दोनों पक्षों का मनोरम चित्रण है ।

इसमें चतुर्थ प्रकार के प्रेम का वर्णन है ।[2] संस्कृत—साहित्य में मेघदूत के सिवा कहीं भी इतना मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति नहीं हुई है । जितनी नैषध में विरही के लिए चन्द्र व मदन दोनों तापकारक होते है, फिर बेचारी

---

१. "कालः किरातः स्फुटपद्मकस्य बधं व्यधाद् यस्य दिनद्विपस्य ।
तस्येव सन्ध्या रूचिरास्त्रधारा ताराश्च कुम्भस्थलमौक्तिकानि ।।" (२२ / ६)

२. संस्कृत साहित्य में ४ प्रकार का दाम्पत्य वर्णित है —

(क) प्रथम प्रकार का प्रेम है, जो राम—सीता का है । — रामायण

(ख) दूसरे प्रकार का प्रेम गन्धर्व विवाह जिसमें नायक—नायिका अकस्मात् मिल जाते हैं — अभिज्ञानशाकुन्तलम् ।

(ग) तृतीय प्रकार का प्रेम जिसमें नायक—नायिका का विलास महल के भीतर होता है जैसे — रत्नावली, कर्पूरमञ्जरी ।

(घ) चतुर्थ प्रकार का प्रेम जो गुप्त—श्रवण, चित्र, दर्शन, स्वप्न—दर्शन आदि से उत्पन्न होता है उषा — अनिरूद्ध का प्रेम, नल—दमयन्ती ।

मुग्धा कोमला दमयन्ती की क्या दुर्दशा होगी —

"स्मर हुताशनदीपितया तया बहु मुहुः सरसं सरसीरूहम् ।
श्रीयतुमर्धपथे कृतमन्तरा श्वसितनिर्मितमर्मरमुज्झितम् ।"

४ / २६

नैषध में नल जीवन के जितने अंश का वर्णन है, उनमें नायिका व नायक का समान प्रेम वर्णित है । किसी का कम नहीं । कवि की वाणी में जो सत्य की अनुभूति मिलती है, वह अमूल्य है ।

वात्सल्य :—

वात्सल्य की झाँकी नैषध में ३ स्थानों पर मिलती है । दमयन्ती की मूर्च्छा सुनकर राजा भीम का घबड़ाकर अन्तःपुर में प्रवेश करना वात्सल्य—मूलक है —

"यमधिगम्य सुताऽऽलयमेतवान् द्रुततरः स विदर्भपुरन्दर"

वात्सल्य की दूसरी झाँकी स्वयंवर से विदा होते समय सरस्वती के बार—बार पीछे की ओर घूमकर दमयन्ती को देखने में है ।[1]

पुत्री को विदा करते समय विदर्भराज के अपने राज्य की सीमा तक पहुँचाने में भी वात्सल्य की झलक है ।[2]

---

१. "स्वस्यामरैर्नृपतिमंशममुं त्यजद्भि—
रंशच्छिदाकदनमेव तदाऽध्यगामि ।
उत्का स्म पश्यति निवृत्य निवृत्य यान्ती
वाग्देवताऽपि निजविभ्रमधाम भैमीम् ।।"

१४ / ६६

२. "सानन्दं तनुजाविवाहनमहे भीमः स भूमीपति—
वैदर्भीनिषधाधिपौ नृपजनानिष्टोक्तिसम्भृष्टये ।
स्वानि स्वानि धराधिपाश्च शिविराण्यद्दिश्य यान्तः क्रमा—
देको द्वौ बहवश्चकार सृजतः स्मातनिरे मङ्गलम् ।।"

नैषधचरितम् १४ / ६७

वीर रस :–

नैषध में वीर–रस के चारो रूप धर्मवीर, दानवीर, दयावीर व युद्धवीर का चित्रण दिखाई पड़ता है। युद्धवीरता का चित्रण विस्तार से हुआ है।[1]

दयावीर का भी प्रसङ्ग प्रथम सर्ग में भी नल द्वारा हंस के रोदन को सुनकर आँसू निकलने में है। हंस को छोड़ देना दयावीरता का ही द्योतक है।[2]

दानवीरता का अत्यन्त विस्तृत चित्रण हुआ है। पञ्चम सर्ग में इन्द्र के कहने पर "अर्थिनो वयममी समुपेमस्त्वां नलेति फलितार्थमर्वहि।"

उन्हें अर्थिनाम सुनते ही रोमाञ्च हो जाता है और यह परिणाम होता है – "दुर्लभं दिगाधिपैः किममीभिस्वादृशं कथमहोपदहीनम्।"

करूण रस :–

नैषधचरित के प्रथम सर्ग में वर्णित हंस–विलाप करूण–रस का उत्कृष्ट उदाहरण है। वह कभी राजा को धिक्कारता है तो कभी भाग्य को उलाहना देता है। हंस अपने नवजात शावकों की मरणान्त दुर्दशा की कल्पना करता है। यह कल्पना ही इतनी कष्टतम् है कि हंस उसे सोचकर ही मूर्च्छित हो जाता है –

"सुताः कमाहूय चिराय चुङ्कृतैर्विधाय कम्प्राणि मुखानि कंप्रति ?
कथासु शिष्यध्वमिति प्रमल्थि च स्त्रुतस्य संकाद् बुबुधे नृपाश्रुणः।।"

हास्य :–

दमयन्ती–स्वयंवर में दमयन्ती की सखियों द्वारा व्यङ्गयोक्ति का प्रयोग हुआ है तथा बारातियों के भोजन के समय हास–परिहास का खुलकर प्रयोग हुआ है –

---

१. "स्फुरद्धनुर्निस्वनतद्धनाऽशुगप्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य सङ्गरे।
निजस्य तेजश्शिखिनः परःशता वितेनुरङ्गारमिवाऽयशः परे।।"

नैषधचरितम् १/६

२. "इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद्दीनदयालुतयाऽवनिपालः।
रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं यथेच्छमथेत्यभिधाय।।"

नैषधचरितम् १/१४३

"मुखे विधाय क्रमुकं नलानुगैरथौज्झि पर्णालिखेक्ष्य वृश्चिकम् ।
दमार्पितान्तर्मुखवासनिर्मितं भयाविलैः स्वभ्रमहासिताखिलैः ।।"
१६/१०६

रौद्र रस :–

देव–कलि–संवाद में क्रोध की व्यञ्जना हुई है । चार्वाक की बात सुनकर उच्च स्वर में इन्द्र का यह कथन

"किमात्थ रे किमात्थेयमस्मदग्रे निरर्गलम्"

क्रोध को प्रकट करता है यमराज और केलि का संवाद रौद्र–रस का उदाहरण है ।

भाषा :–

'**खण्डनखण्डखाद्य**' जैसे ग्रन्थ की रचना करने वाले रचनाकार की भाषा का सरल होना उचित नहीं है फिर भी श्रीहर्ष ने कहीं–कहीं प्रसादगुणयुक्त सरलभाषा का प्रयोग किया है । नैषध में तो उन्होंने भावानुकूल भाषा का प्रयोग किया । इसलिए विद्वानों ने 'नैषध पदलालित्यम्' कहकर प्रशंसा की है । अपनी इस भाषा में उन्होंने कहीं–कहीं लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग भी किया है । कतिपय उदाहरण अधोवत् है –

१. क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः । १/१०२

२. कार्यनिदानाद्धि गुणानधीते । ३/१७

३. आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः । ५/१०३

४. मुग्धेषु कः सत्यमृषा – विवेकः ? ८/१८

५. जनाऽऽनने कः करमर्पयिष्यति ? ६/१२५

६. सतां हि चेतः शुचिताऽऽत्मसांक्षिका । ६/१२६

अलङ्कारों का सुन्दर प्रयोग अनेक पदों को और सुन्दर बना देता है वस्तुतः नैषध में प्रति श्लोक अलङ्कारों की अद्भूत सुषमा है ।

दोष :–

काव्य–रचना में पूर्णतया स्वतन्त्र होने पर भी कवि को कुछ विशेष नियमों का पालन करना पड़ता है । उनकी उपेक्षा प्रमाद कही जाती है । नैषध में भी कतिपय दोष है, पर उन्हें दोष न कहकर दोषाभास कहना उचित होगा–

१. प्रसिद्धिहत :–

प्रथम सर्ग में उपवन–विहार [१] के समय चम्पक कलिकाओं पर भ्रमर के बैठने का जो वर्णन है लोक प्रसिद्ध के विरूद्ध है क्योंकि चम्पा के पुष्प पर भ्रमर नहीं बैठता ।

---

१. "विचिन्तवतीः पान्थपतङ्गहिसनैरपुण्यकर्माण्यलिकज्जलच्छलात् ।
व्यलोकयञ्चम्पककोरकावलीः स शम्बराऽरेबलिदीपिका इव ।।"
नैषधचरितम् १/८६

२. अधिक–पदता :–

कुण्डेनपुर की वीथियों के वर्णन प्रसङ्ग में पद आवश्यकता से अधिक हैं । कहीं–कहीं पुनरूक्तिदोष व काठिन्य–दोष भी है, किन्तु यह दोष उसी रूप में है जैसे रत्न में कहीं–कहीं कीटानुबेध आदि दोष हो जाते हैं ।

नैषध की क्लिष्टता का कारण है कवि ने शास्त्रीय सिद्धान्तो के वर्णन में अपना पाण्डित्य प्रदर्शन किया है इसीलिए इसे विद्वानों के लिए औषध अथवा रसायन माना गया है – "नैषधं विद्वदौषधम्" ।

फिर भी श्रीहर्ष के परवर्ती–काल की संस्कृत काव्य–रचनाओं पर सर्वाधिक प्रभाव नैषध का पड़ा है । बाद के कवियों ने केवल नैषध की वर्णन–शैली ही नहीं, अपितु नल चरित पर अनेक काव्य, नाटक व चम्पू लिखे । नैषध पर टीका लिखना विद्वत्ता का प्रमाण माना जाता है ।

❒

महाकवि भट्टि का समय एवं कर्तृत्व

महाकवि भट्टि का जीवनवृत्त :–

प्राचीन भारतीय विद्वानों, मनीषियों, काव्यकारों एवं अन्य साहित्य चिन्तकों द्वारा अपने जीवन वृत्त के विषय में कुछ भी न लिखे जाने की परम्परा रही है । काव्य शिल्पियों का सहज विनय भाव ही इसका मूल–कारण रहा है, यद्यपि ऐतिहासिकता की दृष्टि से यह प्रवृत्ति एक कमी की ही द्योतक सिद्ध हुई है । इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए 'रावणवध' के प्रणेता महाकवि भट्टि भी अपने जीवन–वृत्त के विषय में मौन है । भट्टि काव्य द्वारा कवि के विषय में मात्र इतना ज्ञात होता है कि भट्टि काव्य की रचना श्रीधरसेन शासित वलभी राज्य में हुई थी –

"काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां
श्रीधरसेन पालितायाम् ।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य
क्षेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम् ।।"

महान् गुप्त साम्राज्य के ध्वंसावशेष पर संस्थापित वलभी राज्य में सन् ५०० ई० से ६०० ई० तक धरसेन नामक चार राजाओं के शासन काल की प्रमुख तिथियाँ वंशवृक्षानुसार निम्नलिखित बतायी जाती है –
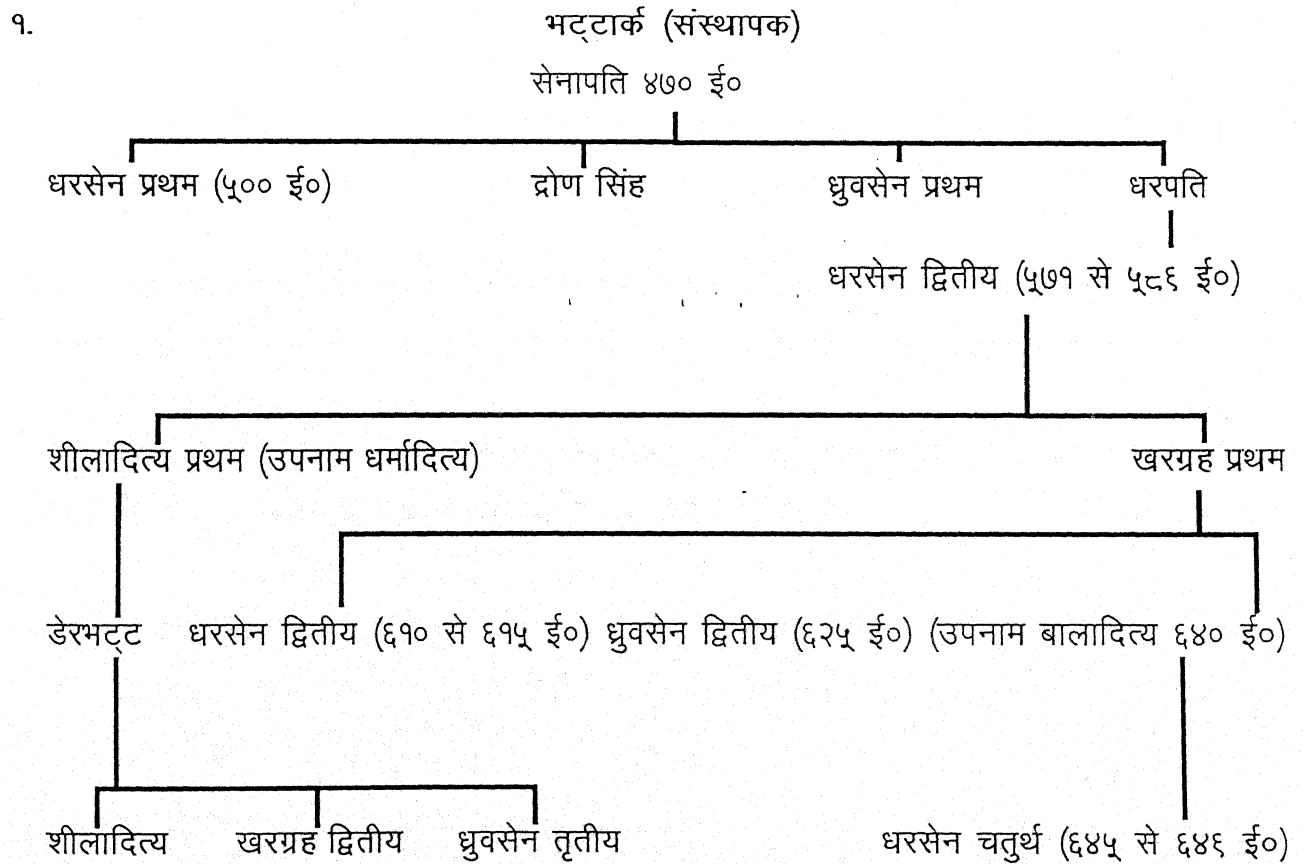
धरसेन प्रथम :–

गुप्त वलभी संवत् २५२ (सन् ५७१ ई०) के धरसेन द्वितीय के ताम्रपत्र में धरसेन प्रथम को सेनापति कहा गया है–

"दीनानाथोपजीव्यमानविभवः परममाहेश्वरः सेनापतिर्धरसेनः"

जबकि भट्टि ने अपने आश्रयदाता को 'नरेन्द्र' शब्द से अभिहित किया है । अतः भट्टि का संकेत धरसेन प्रथम की ओर कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि वह मात्र 'सेनापति' ही था ।

प्रो० बी०सी० मजूमदार[१] ने मन्दसोर के सूर्यमन्दिर में मिले शिलालेख (संख्या १८) के श्लोक लेखक वत्सभट्टि १४७३ ई० तथा **'रावणवध'** कर्त्ता भट्टि के द्वितीय सर्ग के शरद् वर्णन में समानता के आधार पर एकता सिद्ध की है, परन्तु प्रो० कीथ[२] ने प्रो० मजूमदार की इस मान्यता को भ्रमपूर्ण माना है ।

धरसेन द्वितीय :–

वलभी राजवंश के इतिहास में धरसेन द्वितीय शासनकाल ५६६ से ५६६ ई० तक रहा है । इसके शासनकाल के कुल १३ ताम्रपत्र प्राप्त है ।

इण्डियन ऐन्टीक्वेटी भाग – १५, पृ० ३३५ से उद्धत ताम्रपत्र में धरसेन द्वितीय को 'महाराज' कहा गया है । श्री ए०एस० गर्डे[३] के मतानुसार उसे 'महाराजधिराज' की उपाधि प्राप्त थी ।

डॉ० भोलाशंकर व्यास[४] के अनुसार भट्टि धरसेन द्वितीय के आश्रित एवं उनके राजकुमारों के शिक्षक थे । राजकुमारों को व्याकरण की शिक्षा देने के लिए ही उन्होंने 'भट्टिकाव्य' का सृजन किया ।

धरसेन द्वितीय के एक ताम्रपत्र में भट्टि नामक ब्राह्मण को भूमिदान करने का उल्लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि भट्टि धरसेन द्वितीय के दरबारी एवं आश्रित कवि थे ।[५]

---

१. जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, १६०६, पृ० ३६५–३६७ ।

२. वही, पृ० ७५६ ।

३. बम्बई विश्वविद्यीलय, जर्नल, भाग – ३, पृ० ७४ ।

४. संस्कृत कवि दर्शन, भोलाशंकर व्यास, पृ० १६ ।

५. सेठ कन्हैया लाल पोद्दार, संस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग – १, पृ० १०६, (१६६८)

धरसेन तृतीय :–

वलभी राजवंश के अभिलेखों एवं ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि धरसेन तृतीय का शासनकाल ६१० ई० से ६१५ई० तक रहा है ।

श्री वामन शिवराम आप्टे ने सम्भावना व्यक्त करते हुए लिखा है कि भट्टि धरसेन द्वितीय या तृतीय के शासनकाल में रहे होंगे । उन्होंने भट्टि का समय ५६० ई० से ६५० ई० के मध्य का माना है ।

धरसेन चतुर्थ :–

धरसेन चतुर्थ ने अपने ६४६ ई० के ताम्रपत्र[1] पर अपने महाराजाधिराज को परमेश्वर चक्रवर्तिन् कहा है । वी०एस० आप्टे के अनुसार भट्टि धरसेन चतुर्थ के आश्रित नहीं हो सकते, क्योंकि भट्टि ने अपने आश्रयदाता को मात्र **'नरेन्द्र'** शब्द से अभिहित किया है, जबकि धरसेन चतुर्थ एक चक्रवर्ती सम्राट था ।

जिनभद्र–कृत विशेषावश्यक भाष्य[2] में उल्लिखित है कि भट्टिकाव्य की समाप्ति धरसेन द्वितीय के पुत्र शीलादित्य के शासनकाल में सन् ६०८ – ९ ई० में हुई है ।

डॉ० भगवत् शरण उपाध्याय[3] का मत है कि भट्टि काव्य की रचना धरसेन चतुर्थ के शासनकाल में हुई ।

'आदिभारत' के रचनाकार अर्जुन चौबे कश्यप[4] के अनुसार धरसेन चतुर्थ साहित्य–प्रेमी सम्राट था । सम्भवतः भट्टिकाव्य की रचना इसी के शासनकाल में हुई थी ।

२. काशिका वृत्तिगत प्रमाण :–

पाणिनीय सूत्रों पर जयादित्य एवं वामन ने **'काशिका'** नामक वृत्ति की प्रस्तावना में यह श्लोक लिखा है–

"वृत्तौ भाष्ये तथा धातु नाम पारायणादिषु ।
विप्रकीर्णस्य तंत्रस्य क्रियते सारसंग्रहः ।।"

जिनेन्द्रबुद्धि ने **'काशिका विवरण पंजिका'** में इस श्लोक की व्याख्या में कहा है कि चूल्लि, भट्टि तथा

---

१. इण्डियन ऐन्टीक्वेटी, भाग – १५, पृ० ३३५

२. पी०ओ०, भाग – ११, पृ० २९

३. प्राचीन भारत का इतिहास, १९७३, पृ० ३६७

४. आदि भारत, १९५३, पृ० ४२१

नल्लूर ने इसकी व्याख्या काशिका से पूर्व की थी ।[१]

चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार जयादित्य का मृत्युकाल ६६१ ई० है । अतः आप्टे महोदय के अनुसार यदि यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है तो भट्टि का समय ६०० से ६४० ई० के मध्य होगा ।

आंग्ल विद्वान् प्रो.० कीथ[२] के अनुसार इत्सिंग से ज्ञात होता है कि उसके भारत–भ्रमण से ४० वर्ष पूर्व अर्थात् ६५७ ई० में प्रसिद्ध भारतीय वैयाकरण भर्तृहरि की मृत्यु हुई थी ।

'रेडक्रास ऑफ बुद्धिस्ट रेलीजन' के अनुसार इत्सिंग कहता है कि उसका मन विरक्ति तथा गृहस्थ जीवन के मध्य सदा दोलायमान रहता था, जिससे वह सात बार मठ और संसार के मध्य आता जाता रहा ।

प्रसिद्ध जर्मन् विद्वान् प्रो० मैक्समूलर[३] के मतानुसार यहाँ शतकों के रचयिता भर्तृहरि का उल्लेख है, यद्यपि इत्सिंग ने शतकों का उल्लेख नहीं किया है ।

यह तथ्य भी स्पष्ट है कि शतकत्रय[४] के रचयिता भर्तृहरि बौद्ध नहीं अपितु वेदान्त कोटि के शैव थे, जो शिव को ब्रह्म रूप अन्तिम सत्य का उत्कृष्टतम रूप मानते हैं ।

यह सम्भव है कि भर्तृहरि कभी राजदरबारी एवं शैव मत के अनुयायी रहे होंगे, किन्तु वृद्धावस्था में विरक्त हो बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिए थे ।

१. दूसरी ओर ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध चीनी यात्री इत्सिंग को या तो भर्तृहरि के शतकों का ज्ञान न रहा हो ।

अथवा

२. उसने जानबूझ कर शतकों का उल्लेख न किया हो, क्योंकि शतकों का बौद्धधर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

अथवा

३. बौद्ध मतानुसन्धान के बाद भर्तृहरि ने वृद्धावस्था में बौद्धधर्म का परित्याग कर शैव धर्म स्वीकार कर

---

१. पी०वी०काणे, संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास, अनुवादक–डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री

२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रो० कीथ, अनुवादक – मंगलदेव शास्त्री, १९६२, पृ० २२१

३. इण्डिया, १९८३, पृ० ३४७

४. (क) श्रृंगार शतक, (ख) नीति शतक तथा (ग) वैराग्य शतक

'शतकत्रय' की रचना की हो ।

किन्तु यदि यह तथ्य इत्सिंग को ज्ञात होता तो भी वह इसका विवरण उल्लिखित नहीं करता, क्योंकि इससे बौद्धधर्म की हिन्दू (शैव) धर्म से लघुता प्रकट होती ।

३. दानपत्र एवं शिलालेख के प्रमाण :—

वलभी राज्य के सेन वंशीय राजाओं के अनेक दानपत्र एवं शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जिसमें भट्टि, भट्ट, भर्त्तृ आदि अनेक नामों का प्रयोग मिलता है । इन नामों के आधार पर 'रावणवध' का रचनाकाल निर्धारित करने का प्रयत्न कुछ इस प्रकार किया जा सकता है –

१. दिविरपति वत्सभट्टि :—

ध्रुवसेन द्वितीय के ६२९ ई० के एक दानपत्र[1] में दानग्रहीता को दिविरपति वत्सभट्टि लिखा गया है ।

२. राजस्थानीय भट्टि :—

ध्रुवसेन प्रथम के ५३६ ई० के एक दानपत्र[2] में दानग्रहीता को द्रूतक राजस्थानीय भट्टि कहा गया है ।

३. स्कन्द भट्टि :—

धरसेन चतुर्थ के दानपत्र[3] में दानग्रहीता को दिविरपति वत्स भट्टि के पुत्र दिविरपति स्कन्द भट्टि लिखा गया है ।

४. भट्टि–भट्ट :—

इण्डियन एन्टीक्वेटी भाग–एक के पृ० ८४ से ९२ पर उद्धत एक दानपत्र में दानग्रहीता को भट्टि–भट्ट कहा गया है ।

५. भट्टि काव्य की अष्टम से दशम दशक के मध्य में लिखित जयमंगला टीका की प्रस्तावना में कवि के भट्टि, भट्टस्वामी तथा भर्तृस्वामी तीन नाम लिखे हैं ।

---

१. इण्डियन ऐन्टीक्वेटी, भाग – ६, पृ० १२

२. जर्नल आफ रायल ऐशियाटिक सोसाइटी, १८८५, पृ० ३७६

३. इण्डियन ऐन्टीक्वेटी, भाग – १५, पृ० ३३५

प्रचलित किंवदन्ती :—

भर्तृहरि के विषय में यह प्रसिद्ध है कि प्रसव वेदना से पीड़िता उनकी माता उन्हें जन्म देकर स्वर्ग—सिधार गई एवं उनके पिता ने भी इस अनित्य संसार से सन्यास ग्रहण कर लिया । राजभवन से आश्रित दम्पति के इस दुःखद प्रकरण को सुनकर बलभी पति श्रीधरसेन ने अनाथ शिशु का धाय द्वारा पालन कराकर उसे अपने पुत्रों का शिक्षक नियुक्त किया । संस्कृत साहित्य के आधुनिक विद्वानों के अनुसार भर्तृहरि ही वलभी का भट्टि है । जिसने धरसेन के पुत्रों को व्याकरण की शिक्षा देने हेतु **'रावणवध'** की रचना की ।

निष्कर्ष :—

इस प्रकार काव्यगत तथ्यों एवं विवरणों से वलभी के सेन शासको के दानपत्रो एवं शिलालेखों एवं चीनी यात्री इत्सिंग के भारत—भ्रमण वर्णनों से यह ज्ञात होता है कि भट्टि को अन्तिम धरसेन चतुर्थ (६५० ई०) से पीछे नहीं रखा जा सकता । अतः विद्वानों ने भट्टि का समय छठी शताब्दी के उतरार्द्ध एवं सातवीं शती के मध्य में निश्चित किया है ।

कर्तृत्व :—

महाकवि भट्टि विरचित महाकाव्य उन्हीं के नाम पर **'भट्टिकाव्य'** नाम से संस्कृत जगत् में प्रसिद्ध है । इसका अपर नाम **'रावणवध'** भी है । इसमें कुल २२ सर्ग तथा १६२६ श्लोक हैं । इसमें विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण के जाने की घटना से प्रारम्भ करके राम के राज्याभिषेक तक रामायण कथा वर्णित है । भट्टि का मुख्य लक्ष्य रामकथा वर्णन न होकर वरन् व्याकरण के जटिल—नियमों का काव्यशैली में उदाहरण प्रस्तुत करना है । इस प्रकार यह एक **'शास्त्र—काव्य'** भी है । आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने **'सुवृत्ततिलक'** में इसे काव्यशास्त्र की संज्ञा दी है ।[1]

---

1. शास्त्र, काव्यं, शास्त्रकाव्यं, काव्यशास्त्रं च भेदतः ।
   चतुष्प्रकारः प्रसरः सतां सरस्वतो मतः ।।
   शास्त्रं काव्यविदः प्राहुः सर्वकाव्याङ्गलक्षणम् ।
   काव्यं विशिष्टशब्दार्थसाहित्यसदलङ्कृति ।।
   शास्त्रकाव्यं चर्तुवर्गप्रायं सर्वोपदेशकृत —
   भट्टि—भौमह—काव्यादि **'काव्यशास्त्रं'** प्रचक्षते ।

   क्षेमेन्द्र कृत — सुवृत्ततिलक ३/२,३,४

महाकवि ने इन २२ सर्गों को चार काण्डों में विभाजित किया है –

१. प्रकीर्ण काण्ड २. अधिकार काण्ड ३. प्रसन्न काण्ड तथा ४. तिङन्त काण्ड ।

डा० कृष्णमाचारियार ने उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर भट्टि को भामह के बाद का बताया है –

"BhattiKavyam is a work of Great Renown. In Four parts, Prakirna, Prasanna, Adhikara and Tinanta. It illustrates the grammatical formations according to the aphorisms of panini, figures of speech and other Rhetorical devices, but often we see verses of real poetic merit. In canto X, these are illustrations of Alankaras and from their number and their significance, it is conjectured that Bhatti came ofter Bhamaha. [1]

१. प्रकीर्ण काण्ड :–

प्रथम सर्ग से पाँच सर्ग तक का भाग 'प्रकीर्ण काण्ड' के नाम से विख्यात है । प्रथम सर्ग में व्याकरण के नियमों का प्रयोग न्यून दृष्टिगत होता है किन्तु भट्टि की कवित्वशक्ति का उत्तम परिचय मिलता है । पञ्चम सर्ग के अधिकांश पद्य प्रकीर्ण बताये गए हैं ।

२. अधिकार काण्ड :–

षष्ठ, सप्तम, अष्टम तथा नवम सर्गों में क्रमशः सुग्रीवाभिषेक, सीतान्वेषण, अशोकवाटिकाभङ्ग तथा मारुति–संयम की कथा वर्णित है । इन चारों अधिकार काण्डों में प्रमुख रूप से क्रियाओं के प्रयोग सम्बन्धी नियमों का विवरण है ।

३. प्रसन्न काण्ड :–

अपने नाम को सार्थक करता हुआ इस काण्ड में अलङ्कारों का प्रयोग है, तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार अलङ्कार से सुसज्जित नारी को देखकर द्रष्टा का मन प्रसन्न अर्थात् आह्लादित हो उठता है, उसी प्रकार काव्य रूपी नायिका के शरीर के शोभादायक उसके अलङ्कारों को देखकर श्रोता तथा अध्येता दोनों ही प्रसन्नचित्त हो उठते हैं । इसीलिए इसे 'प्रसन्न काण्ड' भी कहते हैं । इसके अन्तर्गत दशम, एकादश, द्वादश तथा त्रयोदश सर्ग आते हैं । दशम सर्ग में शब्दालङ्कारों तथा अर्थालङ्कारों का सोदाहरण विवेचन है । ग्यारहवें तथा बारहवें सर्ग में क्रमशः माधुर्य एवं प्रसाद गुणों का वर्णन है । त्रयोदश सर्ग में 'भाषासम' नामक श्लेषभेद का प्रदर्शन है ।

४. तिङन्त काण्ड :–

इसमें यथानाम लौकिक व्याकरण के नौ लंकारों का वर्णन है । इस क्रम में १४वें सर्ग से २२वें सर्ग पर्यन्त

---

1. History of classical Sanskrit Litrature, Page 143, M. Krishnamachariyar

एक–एक सर्ग में क्रमशः एक–एक लकार का प्रयोग किया गया है । अधोलिखित तालिका से यह स्पष्ट विदित हो जायेगा –

लंकार	सर्ग	प्रयोग संख्या
लित्	१४	४३७
लुङ्	१५	४१६
लृट्	१६	१११
लङ्	१७	३४५
लट्	१८	१२६
लिङ्	१९	७३
लोट्	२०	८४
लृङ्	२१	३५
लुट्	२२	३१

उपर्युक्त लकारों का विस्तृत विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया गया है ।

भट्टि काव्य की कथावस्तु, इतिवृत्त का मूल स्रोत :–

संस्कृत के अधिकांश व्याकरण युक्त काव्यों की भाँति भट्टिकाव्य अर्थात् **'रावणवध'** का मूल स्रोत **'वाल्मीकि रामायण'** ही है । वाल्मीकि रामायण वस्तुतः वीररसात्मक काव्य है, जिसमें राम का पावन–चरित्र वीर रसप्रधान, कल्पनारम्य तथा उदात्त भावों से परिपूर्ण है । रामायण में अङ्कित राम की वैयक्तिक वीरता, नैतिक विचारों से आक्रान्त सामाजिक नैतिकता के अंकुश से नियन्त्रित है ।

आर्षचक्षु आदिकवि के विष्णु के अवतार राम को महामानव, धर्म रक्षक, दुष्ट विनाशक, मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया गया है एवं रामायण में रामजन्म से रामराज्य तक के समस्त कथाप्रसङ्गों में राम के धर्म, कर्म एवं नीति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है ।

आर्यभाषा एवं साहित्य में रामकथा के विकास का आधार रामायण ही है, फिर भी कवियों एवं साहित्यकारों ने आदिकवि के अनुकरण के साथ ही मौलिकता उत्पादन हेतु अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का प्रयास किया है, इससे राम के परम्परागत चरित्र में उत्कर्ष एवं अपकर्ष दृष्टिगोचर होता है ।

रामपरक काव्य के प्रणेता कवियों की रचनाओं में वर्णित राम के चरित्र एवं कथा–प्रसङ्गों में रामायण की तुलना में पर्याप्त मात्रा में अन्तर हो जाता है। यह अन्तर अथवा विषयवस्तुगत एवं शैलीगत संशोधन–परिवर्धन उन–उन परवर्ती कवियों की विशिष्ट प्रतिभा का ही परिचय देते हैं।

हम यहाँ यह देखने का प्रयास करेंगे कि भारतीय जनमानस के महानायक राम के वेदविहित, मर्यादित एवं परम्परागत चरित्र–निर्वाह में जन्म से लेकर राज्याभिषेक पर्यन्त चारित्रिक कथा प्रसङ्गों में कविवर भट्टि कितने सफल तथा असफल रहे हैं।

आदिकवि की प्रतिभा संस्पर्श से कितना संशोधन एवं परिवर्धन :–

महाकवि भट्टि ने अपनी कृति **'रावणवध'** में रामायण की काण्डानुसार कथावस्तु का निम्नांकित प्रकार से सर्ग विभाजन कर काव्यसृष्टि की है –

'वाल्मीकि रामायण'	'रावणवध'
१. बाल काण्ड	१. राम सम्भव २. सीता परिणय
२. अयोध्या काण्ड	३. राम प्रवास
३. अरण्य काण्ड	४. शूर्पणखा निग्रह ५. सीता हरण
४. किष्किन्धा काण्ड	६. बालि–वध
५. सुन्दर काण्ड	७. सीतान्वेषण ८. अशोक वाटिका भङ्ग ९. मारुति संयम १०. सीताविज्ञान दर्शन ११. लंकागत प्रभात वर्णन
६. युद्ध काण्ड	१२. विभीषण आगमन १३. सेतु बन्धन १४. शरबंध १५. कुम्भकर्ण–वध १६. रावण–विलाप

१७. रावण–वध

१८. विभीषण प्रलाप

१९. विभीषणाभिषेक

२०. सीताप्रत्याख्यान

२१. सीताग्नि परीक्षा

२२. अयोध्या प्रत्यागमन

महाकवि भट्टि ने रामचरित–निर्वाह में आदिकवि के इतिवृत्त से कितना परिवर्धन किया है, इसे ज्ञात करने के लिए हम काण्डानुसार राम के चरित्र–चित्रण का अवलोकन करेंगे –

१. बालकाण्ड :–

बालकाण्ड राम के जीवन का वह प्रारम्भिक बिन्दु है, जिसमें रामावतार, विद्याध्ययन, यज्ञरक्षण, विवाह एवं परशुराम पराभव की कथा वर्णित है । वाल्मीकि रामायण के 'बालकाण्ड' में राम के विद्याध्ययन एवं ज्ञानार्जन का वर्णन है फिर भी इसमें कुछ प्रसङ्ग ऐसे है जो उनके जीवन को महानता प्रदान करते हैं ।

महाकवि भट्टि भी भगवान विष्णु को दशरथ का पुत्र राम के रूप में अवतरित कराते हैं[1] महर्षि वशिष्ठ ब्रह्म की पूजा के अनन्तर बालग्रहों के निवारण हेतु बाल संस्कार करते हैं ।[2]

दूसरे सर्ग में जब वे मुनि के साथ यज्ञरक्षा हेतु वन जाते हैं तो वन्यमृग भी उनके अलौकिक प्रभाव से पारस्परिक भेद–भाव भूल जाते हैं :–

"क्षुद्रान्न जक्षुर्हरिणान्मृगेन्द्रा विशश्वसे पक्षिगणैः समन्तात् ।
नन्नम्यमानाः फलदित्सयेव चकाशिरे तत्र लता विलोलाः ।।"
रावणवध, २/२५

ऋषियों द्वारा उनकी पूजा एवं आतिथ्य–संस्कार किया जाता है ।[3] राम ब्राह्मणों तथा धर्म के रक्षक हैं वे मारीच से कहते हैं – "दूसरों को सताना तुम्हारा धर्म है, परन्तु मेरा भी उस परद्रोह से बिल्कुल विपरीत परद्रोही का विनाश करना रूपी दूसरा धर्म है । अतः क्षत्रियवृत्ति धर्म के फलस्वरूप मैं धनुर्बाण धारण कर ब्राह्मणद्रोही तुम्हारा नाश करता हूँ –

---

१. भट्टिकाव्य, १/१

२. वही, १/१५

३. वही, १/२६

"धर्मोऽस्ति सत्यं तव राक्षसाऽयं मन्यो व्यतिस्ते तु ममाऽपि धर्मः ।
ब्रह्मद्विषस्ते प्रणिहन्मि येन राजन्यवृत्तिर्धृतकार्मुकेषुः ।।" [१]

विवाह के बाद राम क्षात्रकुल द्रोही परशुराम को दर्प विमुक्त कर उनके पुण्य द्वारा अर्जित लोको का संहार करते हैं ।[२]

२. अयोध्या काण्ड :–

वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड में राम के महनीय चरित्र में सम्बद्ध प्रमुख कथाएँ हैं :–

१. राज्याभिषेकोत्सवं

२. रामवनगमन

३. दशरथ–मरण तथा

४. राम–भरत समागम

अयोध्या की इन घटनाओं का राम के साथ–साथ महाराज दशरथ, कैकेयी, भरत एवं नागरिकों से भी सम्बन्ध है ।

रामाभिषेक की घोषणा के बाद सारा नगर हर्षित है, प्रोत्साहित है, किन्तु कैकेयी की वरयाचना से हर्ष की किरणें शोकान्धकार में परिणत हो जाती है । पिता के आदेश से राम वन के लिए प्रस्थान करते हैं । पुत्र शोकाभिभूत दशरथ स्वर्गवासी हो जाते हैं । भरत ननिहाल से आकर राम को वापस लाने हेतु वन जाते हैं, किन्तु राम उन्हें कर्त्तव्योपदेश देकर वापस अयोध्या भेज देते हैं ।

भट्टि के दशरथ राम के प्रताप एवं कार्यों से प्रसन्न हो प्रजारंजनार्थ उन्हें राजसिंहासन देना चाहते हैं ।[३] महाकवि भट्टि के राम भी वाल्मीकि रामायण के राम की ही भाँति दशरथ, कैकेयी, भरत एवं प्रजावर्ग से सम्बन्धित है । कैकेयी द्वारा राम वनवास का वर माँगने पर प्रजावर्ग द्वारा कैकेयी एवं भरत की निन्दा की जाती है ।[४]

वनगमन के समय राम पुरजनों को आश्वस्त कर पित्रादेश पालन को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म बताते हैं ।[५] वे

---

१. भट्टिकाव्य २/३५

२. वही, २/५३

३. वही, ३/२

४. वही, ३/१०

५. वही, ३/१२ – १४

पुरवासी को कहते हैं कि भरत को मुझसे भिन्न न माने –

"पौरा निवर्तध्वमिति न्यगादित् तातस्य शोकाऽपनुदा भवते ।
मा दर्शाताऽन्यं भरतं च मतो निवर्त्तयेत्याह रथं स्म सूतम् ।।"

रावणवध, ३/१५

राम जी कहते है – "हे पौरजनों! आप लोग लौट जाओ, पिताजी के शोक को दूर करो और भरत को मुझसे भिन्न न मानकर मेरे समान ही मानो नागरिकों को ऐसा कहकर सारथि (सुमन्त्र) को भी रथ वापस लौटाने को कहा ।"

वनगमन के समय राम पुरूषों को अनेक प्रकार से आश्वस्त करते हैं । पुत्रवत्सल महाराज दशरथ पुत्र–वियोग में स्वर्ग–सिधार जाते हैं । सारी प्रजाएँ, सारा राज्य शोक–सागर में डूब जाता है । विधवा रानियाँ करूण–क्रन्दन करने लगती हैं ।[१]

ननिहाल से वापस लौटकर भरत शोकाभिभूत हुए पितृ–वियोग में विलाप करते हैं एवं कैकेयी को ही सभी अनर्थों का हेतु मानते हुए बार–बार अपनी माता को उलाहना देते हैं ।[२]

पिता का श्राद्धकार्य समाप्त होने पर भरत राज्याभिषेक को छोड़कर राम को वापस लाने के लिए वन की ओर प्रस्थान करते हैं । वनवासी राम मृत पिता को जलांजलि देकर भरत को पित्रादेश पालन करने का उपदेश देते हैं[३] –

"अरण्ययाने सुकरे पिता मां प्रायुङ्क्त राज्ये बत! दुष्करे त्वाम् ।
मा गाः शुचं धीर! भरं वहाऽमुमाभाषि रामेण वचः कनीयान् ।।"

श्रीराम अनेक प्रकार के वचनों से उपदेश देकर भरत को पिता का आदेश पालन करने का सुझाव देते हैं ।[४] भरत के न मानने पर राम नाना प्रकार के प्रबोधनात्मक वचन बोलकर अपनी चरणपादुका देकर उन्हें अयोध्या वापस जाने का आदेश देते हैं ।[५]

---

१. भट्टिकाव्य, ३/१२
२. वही, ३/३१ – ३२
३. वही, ३/५१
४. वही, ३/५२ – ५३
५. वही, ३/५६

इस प्रकार राम समस्त धार्मिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए वन की पावन कर्मभूमि में प्रवेश करते हैं ।[1]

३. अरण्य काण्ड :—

वाल्मीकि रामायण में अरण्य काण्ड की कथा श्रीराम की कर्मभूमि है । इस काण्ड के कथा—वृत्त में महावीर राम वनवासी ऋषि—मुनियों के तप एवं यज्ञ की रक्षा करते हैं । इसी काण्ड में सीता का हरण होता है । राम सीता के वियोग से विक्षिप्त होते हुए भी पितृ—अर्ध्य, पक्षी जटायु के दाह संस्कार एवं शबरी के आतिथ्य—कर्म को नहीं भूलते हैं ।

अरण्य—काण्ड के प्रमुख प्रसङ्गों की उद्भावना के स्थल अधोलिखित हैं —

१. विराध एवं शरभङ्ग प्रकरण ।

२. शूर्पणखा निग्रह एवं खरदूषण वध ।

३. रावण—मारीच संवाद, सीता हरण ।

४. राम—वियोग ।

५. जटायु का दाह संस्कार ।

६. शबरी का प्रकरण ।

महाकवि भट्टि ने धर्म—कर्म की साक्षात् मूर्ति श्रीराम के शीलवर्द्धक प्रसङ्गों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है ।

चतुर्थ सर्ग में भरत के वापस लौटने पर रामचन्द्र जी दण्डकारण्य में पहुँचते हैं और वही विराध नामक राक्षस का वध करते हैं ।[2]

शरभङ्ग—प्रकरण में शरभङ्ग ने रामचन्द्र जी को सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम बताकर अग्नि में अपने शरीर का हवन यह कहते हुए कर दिया — "हे राघव ! आप लोग यहाँ आयेंगे, इस कारण मैं इस वन में रह रहा था, मैंने आप लोगों का दर्शन कर लिया । आप लोगों का कल्याण हो । अब मैं अपने पुण्य से अर्जित लोक में जाता हूँ । इस प्रकार कहकर शरभङ्ग ऋषि ने अपने शरीर को अग्नि में हवन कर दिया ।"[3] —

"यूयं समैष्यथेत्यस्मिन्नसिष्महि वयं वने ।
दृष्टाः स्थ स्वस्ति वो वामः स्वपुण्यविजितां गतिम् ।।"

---

१. भट्टिकाव्य, ४/१

२. वही, ४/३

३. वही, ४/६

इसी अर्थ में शूर्पणखा माया से श्रेष्ठ स्त्री का वेष–धारण करके आती है और लक्ष्मण से प्रणय–प्रार्थना करती है ।[१]

लक्ष्मण द्वारा राम के पास भेजे जाने पर तथा पुनः राम द्वारा लक्ष्मण के समीप भेजे जाने पर बारम्बार अपमानित होकर वह लक्ष्मण के समीप गयी । तब क्रुद्ध लक्ष्मण ने उसकी नाक काट दी ।[२]

इस पर अत्यन्त क्रोधित अनेक प्रकार से तर्जन करके शूर्पणखा अपने भाई खर–दूषण के पास जाकर विलाप करने लगी ।[३] तत्पश्चात् खर–दूषण ने अपनी भगिनी शूर्पणखा को आश्वस्त कर चौदह हजार सैनिकों को लेकर राम और लक्ष्मण को दण्ड देने के लिए प्रस्थान किया ।

पञ्चम सर्ग में राम–लक्ष्मण का खर–दूषण से घमासान युद्ध का वर्णन है । अन्त में राम और लक्ष्मण के हाथों दोनों का वध हो जाता है ।[४]

फलतः शूर्पणखा समुद्र पार लङ्का में निवास करने वाले रावण के पास सहायता के लिए गयी । शूर्पणखा ने दशरथ–पुत्र राम और लक्ष्मण के द्वारा किए गए खर–दूषणवध सहित राक्षसों के नाश को तथा रावण की नीतिगत गुप्तचरों की अकुशलता को प्रतिपादित किया । इसी प्रसङ्ग में वह लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहती है –"लक्ष्मी व्यभिचारिणी स्त्री की तरह कुतूहल से पुरूषसंसर्ग चाहती हुई पति के पास रहकर भी छल से अन्य पुरूषों को देखती रहती है ।"

"लक्ष्मीः पुंयोगमाशंसुः कुलेटव कुतूहलात् ।
अन्तिकेऽपि स्थिता पत्युश्छलेनाऽन्यं निरीक्षते ।।"
रावणवध, ५/१७

शूर्पणखा को आश्वासन देकर रावण ने सहायतार्थ मारीच के समीप जाकर उसे समस्त वृत्तान्त सुनाया । तब मारीच ने राम के अलौकिक पराक्रम का वर्णन किया । तब रावण ने क्रोधित होकर मारीच वर्णित राम के पराक्रम का वर्णन किया ।[५]

---

१. भट्टिकाव्य, ४/१७
२. वही, ४/३१
३. वही, ४/३४
४. वही, ५/३
५. वही, ५/३२ – ३८

राम ने क्रोधित होकर मारीच वर्णित राम के पराक्रम को हीन बताकर मारीच की भर्त्सना की ।[1] तदन्तर मारीच स्वर्ण–मृग बनकर राम–लक्ष्मण को दूर ले जाता है । तभी रावण साधु–वेष में सीता जी के समीप आता है और उनका हरण कर लेता है ।[2]

इसी बीच गृद्धराज जटायु ने रावण से युद्ध किया तथा सीता को छुड़ाने का प्रयास किया, किन्तु रावण ने जटायु के पंखों को काट दिया और सीता को लेकर लंकापुरी चला गया ।[3]

षष्ठ सर्ग में लक्ष्मण द्वारा सीता जी का वृत्तान्त सुनकर राम अधीर हो उठते हैं तथा उन्मत्त होकर इधर–उधर भ्रमण करते हुए बहुत विलाप करने लगे ।

वाल्मीकि रामायण के राम के समान भट्टि के राम भी सीता–वियोग से अत्यन्त व्याकुल होते हुए भी नित्यकर्मानुष्ठान को नहीं छोड़ते हैं । स्नान के समय पूर्व की भाँति पितरों को जलाञ्जलि देते हैं ।[4] "रामचन्द्र जी ने धर्मकार्य नहीं छोड़ा, क्योंकि वास्तव में सज्जनों का नित्य–धर्म–कर्म विपत्ति में भी लुप्त नहीं होता" –

"महतां हि क्रिया नित्या छिद्रे नैवाऽवसीदति"

रावणवध, ६/२४

तत्पश्चात् गृद्धराज जटायु सीता–हरण वृतान्त सुनाकर मृत्यु को प्राप्त हो गया । राम–लक्ष्मण ने जटायु की अग्निदाह, जलाञ्जलि आदि क्रियाएँ पूर्ण की ।[5]

तदनन्तर दोनों भाई शबरी नाम वाली तपस्विनी के आश्रम में गये । उसने मधुपर्कादि अर्चन सामग्री से राम और लक्ष्मण का अतिथि–सत्कार करके "सुग्रीव आपके साथ शीघ्र ही मित्रता करेंगे और आप जल्दी ही सीता को देखेंगे ।[6] ऐसा कहकर वह अन्तर्धान हो गयी ।

राम लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत पर हनुमान् जी मिलते हैं और उन्हें अपना परिचय देते हैं ।[7]

---

१. भट्टिकाव्य, ५/३६ – ४४

२. वही, ५/६४

३. वही, ५/१०८

४. वही, ६/२३

५. वही, ६/२३

६. वही, ६/७१ – ७२

७. वही, ६/१०० – १०२

हनुमान् के माध्यम से कवि भट्टि ने लोकनायक राम के शील को सँवारने का प्रयास किया है । इसी सर्ग में श्रीराम बाली का वध करके सुग्रीव को उसकी पत्नी तथा राज्य–शासन प्रदान करते हैं ।[१]

४. किष्किन्धा काण्ड :–

किष्किन्धा पर्वत के नाम पर इस काण्ड का नाम 'किष्किन्धा काण्ड' है । किष्किन्धा पर्वत पर सुग्रीव का वास है । इस काण्ड में सीता–अन्वेषण का कार्य प्रारम्भ होता है ।[२] रामचन्द्र जी ने अपने चिन्ह की अगूँठी सीता जी को देने के लिए हनुमान् जी को सौपी ।[३] पक्षिराज सम्पति द्वारा सीता के रावण की नगरी लङ्का में होने की सूचना प्राप्त होती है ।[४] सभी वानर हर्ष से कोलाहल करते हुए पर्वतराज महेन्द्र की ओर चल दिए । वहाँ पहुचँकर समुद्र को देखा और हनुमान् जी को सीता का पता लगाने के लिए प्रेरित किया ।

५. सुन्दर काण्ड :–

सुन्दर काण्ड की कथावस्तु राम–भक्त हनुमान् के समुद्रोल्लंघन, सीता–दर्शन, वाटिका–विनाश एवं लंकादहन से सम्बद्ध है ।

महावीर हनुमान् राम की कृपा से ही इन भयानक कार्यों को पूरा करने में सफल होते हैं ।

महाकवि भट्टि ने उपर्युक्त कथावस्तु को ५ सर्गों में विस्तार कर राम के दूत हनुमान् के माध्यम से लोकनायक राम के शील को संवारने का प्रयास किया है ।

हनुमान् जी ने अतिशय वेग से समुद्र बाँधने के लिए आकाश में गमन किया[५] तथा मार्ग में सिहिंका नाम की राक्षसी का वध किया । मार्ग में उन्होंने अपने पिता के मित्र मैनाक पर्वत पर कुछ समय तक विश्राम किया ।[६] तदनन्तर लंका के लिए चल दिए । लंका में उन्होंने रावण के सुन्दर भवनों में सीता का अन्वेषण किया । यहीं पर उन्हें अतिशय सुन्दर अशोक–वनिका दिखाई दी । पति के वियोग से मलिन मुखवाली तथा हास्य से रहित सीता जी को देखा । हनुमान् ज़ी ने अपना परिचय देते हुए पहचान रूपी अंगूठी दी हनुमान्

---

१. भट्टिकाव्य, ६/१४४

२. वही, ७/३५ – ४२

३. वही, ७/४६ – ५०

४. वही, ७/६७

५. वही, ८/१ – ४

६. वही, ८/८ – ६

जी ने उन्हें अपने यश की वृद्धि का अभिलाषी होकर अशोक वनिका नाम वाले उपवन को तोड़ डाला ।[१] रावण ने हनुमान् को मारने के लिए अस्सी हजार सेवकों को भेजा । भयानक युद्ध हुआ रावण ने अपने पुत्र अक्षकुमार को भेजा । हनुमान् ने उसे मार डाला और पुनः अशोक वाटिका तोड़ने लगे ।[२]

तत्पश्चात् इन्द्रजीत मेघनाद ने ब्रह्मपाश से हनुमान् जी को बाँधा । हनुमान् को रावण के समक्ष उपस्थित किया गया । रावण ने उसके वध का आदेश दिया, किन्तु विभीषण द्वारा दूत–वध को अनौचित्य बताने पर उनकी पूँछ को जलाने का आदेश दिया ।[३]

हनुमान् जी आग लगी पूँछ सहित लंका में इधर–उधर घूमने लगे । इस प्रकार लङ्का को दाहन और मर्दन से उन्मूलित कर वीरशिरोमणि हनुमान् जी अशोक वनिका में गये और सीता जी से आज्ञा लेकर वापस लौट गए । वापस जाकर रामचन्द्र जी का दर्शन किया और उन्हें सीता जी की **'शिरोमणि'** दिया ।[४] रामचन्द्र जी ने उसके अभीष्ट पूर्ण करने वाले पवन–पुत्र हनुमान् को चिन्तामणि के तुल्य माना –

"सामर्थ्यसंपादितवाञ्छितार्ऽथ श्चिन्तामणिः स्यान्न कथं हनुमान् ।"

रावणवध, १०/३५

तदनन्तर रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण के साथ तथा सुग्रीव व अन्य वानर–सेना के साथ लङ्का के लिए प्रस्थान किया । एकादश सर्ग में कवि ने श्रृंगारिक वर्णन किया है ।

६. युद्ध काण्ड :–

लंका की समरभूमि में अत्याचार एवं अन्याय की साक्षात् मूर्ति रावण पर राम की विजय ही रामायण–कथा की फलश्रुति है । साधन विहीन राम सर्वसाधन सम्पन्न रावण का वध जीवन की विकटतम स्थिति से संघर्षरत होकर करते हैं ।

युद्धकाण्ड की अधोलिखित घटनाएँ महत्वपूर्ण है जो मर्यादापुरुषोत्तम् राम के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक चरित्र को लोक–मानस में श्रद्धा एवं स्नेह का स्थान प्रदान करती है –

१. रावण–सभा

---

१. भट्टिकाव्य, ८/१३० – १३२

२. वही, ८/३८ – ३९

३. वही, ६/१३७

४. वही, १०/३२

२. विभीषण शरणागति

३. सेतुबन्ध

४. माल्यवान् का उपदेश

५. अंगद का दूतत्व

६. नागपाश बन्धन एवं लक्ष्मण शक्ति

७. रावण–वध एवं विभीषण विलाप

८. सीताग्नि परीक्षा

६. रामाभिषेक

महाकवि भट्टि ने युद्ध काण्ड की कथा का विस्तार ११ सर्गों में करके राम के गुणों का विस्तृत निरूपण किया है । रावण सभा में विभीषण उपस्थित होकर रावण की अनीति का वर्णन कर राम की प्रशंसा करता है ।[१]

मातामह माल्यवान् राम की वीरता एवं ब्रह्मत्व का निरूपण करते है तथा नानाप्रकार के उपदेश देते हैं ।[२]

निद्रा त्यागकर कुम्भकर्ण भी रावण की अनीति का प्रतिपादन करता है ।[३]

चतुर्दश सर्ग में मेघनाद ने अपने अस्त्र से सारी सेनाओं को तथा राम और लक्ष्मण को भी बाँध दिया । वे दोनों मूर्च्छित हो गए । तत्पश्चात् गरूड़ द्वारा दोनों नागपाश से मुक्त किए गए ।[४]

लक्ष्मण के शक्ति लगने पर हनुमान् जी संजीवनी लेने हिमालय जाते हैं ।[५] औषधि को न पहचान पाने के कारण सारा पर्वत ही उठा लाते हैं ।

रावण द्वारा निष्कासित उसके भाई को राम उसकी नगरी में ही अभय प्रदान करते हैं । रावण के मरण से पूर्व ही उसे लंकापति बना देते हैं ।

रामायण की कथा का मुख्य लक्ष्य रावणवध सप्तदश–सर्ग के अन्त में वर्णित है –

---

१. भट्टिकाव्य, १२/३६ – ५१

२. वही, १२/५६

३. वही, १२/६३ – ६६

४ वही, १४/४७ – ६६

५. वही, १७/१११

"नभस्वान् यस्य वाजेषु, फले तिग्मांशु–पावकौ ।
गुरुत्वं मेरु–सङ्काशं, देहः सूक्ष्मो वियन्मयः ।।
राजितं गारुडैः पक्षैर् विश्वेषां धाम तेजसाम् ।
स्मृतं तद् रावणं भित्वा सुघोरं भुव्यशाययत् ।।"

रावण वधोपरान्त भ्रातृ–शोक से विक्षिप्त विभीषण जब प्रलाप करने लगे तो राम उसे नाना प्रकार का प्रबोध देते हैं, उसे नीतिगत उपदेश देते हैं । विभीषण कहते हैं –"ऐसे भाई के नाश हो जाने पर वही जी सकता है, जिसको आपके समान समर्थ मित्र समझने वाले होंगे ।" –

"स एव धारयेत् प्राणानीदृशे बन्धु–विप्लवे ।
भवेदाश्वासको यस्य सुहृच्छ्क्तो भवादृशः ।।" [१]

महावीर राम रावण के अवगुण सम्पन्न होने पर भी उसके पराक्रम की प्रशंसा करते हैं ।

रावणवध के बाद राम स्वयं लंका नगरी में नहीं जाते है न ही सीता जी दरबार में आती है । रावणवध सुनकर सीता जी राम का दर्शन करना चाहती हैं ।[२]

तब राम लंकापति विभीषण को सीता को लाने का आदेश देते हैं ।[३]

किन्तु जब सीता जी उनके समक्ष आती हैं तो राम अपनी सामाजिक मर्यादा का ध्यान कर परगृहवासिनी सीता के चरित्र में सन्देह उत्पन्न करते हैं ।[४]

तत्पश्चात् सीता अग्नि में प्रवेश कर अपनी शुद्धि प्रमाणित करती है एवं ब्रह्मा, शिव एवं स्वर्गवासी दशरथ उनके चरित्र की निष्कलंकता प्रतिपादित करते हैं, तब राम उन्हें स्वीकार करते हैं ।[५]

मित्रों सहित लंका से अयोध्या आकर राम सबसे पूजित होते हैं तथा सिंहासनारूढ़ होकर भरत को श्रीराम युवराज पद पर प्रतिष्ठित करते हैं ।[६]

---

१. भट्टिकाव्य, १६/४
२. वही, २०/७
३. वही, २०/८ – ६
४. वही, २०/२१
५. वही, २१/१
६. वही, २२/३१

आर्षचक्षु महामुनि वाल्मीकि की पावन लेखनी द्वारा निबद्ध मर्यादा पुरुषोत्तम राम का मंगलमय चरित्र भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का आलोकस्तम्भ है । राम का आदर्श जीवन धार्मिक, नैतिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में अनुकरणीय है । राम को काव्याधार बनाकर काव्य–सृष्टि करने वाला जो कवि उस आलोक की जितनी किरणों को अपनी कृति में समेट सका है, वह उतना ही सफल कवि सिद्ध हुआ है ।

रामायण रूपी रत्नाकर से राम–चरित्र के अमूल्य रत्नों को ग्रहण कर कवियों ने अपनी काव्यमाला का गुम्फन कर प्रतिभा, व्युत्पत्ति एवं कल्पना की मणियों से अलंकृत किया है । कवि अपनी काव्य–सृष्टि के निर्माण में स्वतन्त्र होता है । अतः वह अपनी कल्पना–शक्ति के द्वारा आधारभूत तथा वस्तु में परिवर्तन तथा परिवर्धन का प्रयास करता है, किन्तु पौराणिक कथानक में परिवर्तन आधार के अनुरूप होने पर ही सफल कहा जा सकता है ।

कविवर भट्टि ने राम के आदर्श जीवन को वाल्मीकि के अनुकरण पर चित्रित कर अधिक सफलता प्राप्त की है । भट्टि के राम का चरित्र सर्वग्राह्य, लोकोपकारी एवं परम्परागत है ।

मूलकथानक में संशोधन–परिवर्धन :–

यद्यपि भट्टि काव्य में निर्दिष्ट राम–कथा वाल्मीकि रामायण पर ही पूर्णतया आश्रित है, परन्तु कवि ने अपने कर्त्तृत्व को मौलिक रूप प्रदान करने हेतु मूल कथानक में कतिपय विशिष्टता का प्रयोग किया है जिससे उनकी प्रतिभा एवं योग्यता का परिचय मिलता है । कतिपय् प्रसङ्ग निम्नलिखित है –

१. भट्टिकाव्य में महाराज दशरथ के शैव होने का उल्लेख मिलता है – "उन्होंने शिव के अतिरिक्त किसी अन्य की उपासना नहीं की ।" –

"न त्रयम्बकादन्यमुपास्थिताऽसौ"

रावणवध १/३

२. दशरथ द्वारा पुत्र–प्राप्ति की कामना से किए गए पुत्रेष्टि यज्ञ में कोई देवता उपस्थित (प्रकट) नहीं होते, अपितु दशरथ रानियाँ हवन की गई चरू का अवशिष्ट ही खाती हैं –

"निष्ठां गते दत्रिमसभ्यतोषे,
विहित्रिमे कर्मणि राजपत्न्यः ।
प्राशुर्हुतोच्छिष्टमुदारवंश्यास्तिस्त्र,
प्रसोतुं चतुरः सुपुत्रांन् ।।" [1]

---

१. भट्टिकाव्य, १/१३

३. रावणवध में भट्टि ने केवल राम और सीता के विवाह का ही वर्णन किया है अन्य भाइयों का नहीं ।

४. राम और लक्ष्मण दोनों भाई मिलकर खर–दूषण और उसके सहयोगी राक्षसों का वध करते हैं –

"अथ, तीक्ष्णायसैर्बाणैरधिमर्मं रघूत्तमौ ।
व्याघं त्याधममूठौ तौ यमसाच्चक्रतुर्द्विषौ ।।" [1]

५. भट्टि काव्य के षष्ठ सर्ग में शबरी द्वारा राम–लक्ष्मण का उचित अतिथ्य करके अन्तर्हित हो जाने का वर्णन है ।[2]

६. लक्ष्मण द्वारा सीता को शाप देने का वर्णन है इसमें प्राप्त होता है । लक्ष्मण द्वारा बारम्बार समझाने पर भी राम के अनिष्ट की आशङ्का से सीता जी लक्ष्मण को राम के पास जाने के लिये बाध्य कर देती हैं । तब जितेन्द्रिय और सत्यभाषी लक्ष्मण सीता को "तुम शत्रु हाथ में पड़ोगी ऐसा शाप देकर निकल गए"–

"मृषोद्यं प्रवदन्तीं तां सत्यवद्यो रघूत्तमः ।
निरगाच्छत्रुहस्तं त्वं यास्यसीति शपन्वशी ।।" [3]

मूल कथानक में इन संशोधनों से कविवर भट्टि की नवोन्मेषशालिनी, शक्तिमती एवं उर्वर प्रतिभा का पर्याप्त परिचय मिलता है । इनसे काव्य में कमनीयता के साथ–साथ चमत्कार में भी अभिवृद्धि हो गयी है ।

---

१. भट्टिकाव्य, ५/३
२. वही, ६/७२
३. वही, ५/६०

वाल्मीकि रामायण का प्रभाव तथा महाकवि की अपनी प्रतिभा का उन्मेष

"मनुष्य में शील या आचरण की प्रतिष्ठा भाव–प्रणाली की स्थापना के अनुसार ही होती है ।" [१]

तात्पर्य यह है कि भाव को कर्म का मूल प्रवर्त्तक एवं शील का ही संस्थापक मानना चाहिए । आलम्बन एवं आश्रय भाव शील दशा के ही मूर्तिमान् रूप होते हैं ।

किसी भी काव्य में वर्णित कोई भी पात्र आलम्बन या आश्रय मात्र न होकर एक प्रतीक भी होता है । काव्य में वर्णित भावना को मूर्त रूप देने के लिए ही पात्रों की सृष्टि की जाती है ।

शील का मूर्त रूप चरित्र या पात्र कहलाता है । काव्य–साहित्य में चरित्र ही कथावस्तु को रसात्मक बनाता है । साहित्य के पात्रों की स्थिति प्रतीकात्मक होती है ।

वे वर्ग प्रतिनिधि या परिवेशचैतन्य आदि के मूर्त वाहक होते हैं । उनकी स्थिति पक्ष–विपक्ष के वक्ताओं के समान होती है । रामायण में राम, लक्ष्मण, सीता आदि पक्ष के तथा रावण, कुम्भकर्ण इत्यादि विपक्ष के वक्ता हैं ।

काव्यगत पात्रों को जीवन्त और स्वाभाविक बनाने हेतु उनमें कुछ वैशिष्ट्यों एवं वैचित्र्यों की स्थापना करने वाले वैशिष्ट्य को ही शील–वैचित्र्य कहते हैं । [२]

किसी भी साहित्य का पात्र किसी न किसी जाति, समाज, राष्ट्र, विचार, सम्प्रदाय, सभ्यता अथवा संस्कृति का सदस्य होता है तथा उनका प्रतिनिधित्व करता है । अतः चरित्र–चित्रण की दृष्टि में वास्तविकता की सिद्धि के लिए पात्रों में कुछ सामान्य गुणों की स्थापना भी आवश्यक होती है ।

इसीलिए आदिकवि वाल्मीकि के काव्य नायक राम अवतारी पुरुष होते हुए भी मानवीय गुणों एवं दुर्बलताओं से युक्त हैं ।

रामायण में हमें एक ही स्थान पर पितृभक्त, आज्ञाकारी पुत्र, आदर्श प्रेमी, पति, पत्नि–परायणा पति, आदर्श मित्र, अलौकिक शत्रु के दर्शन होते हैं । रामायण के पात्रों ने अपने शील वैशिष्ट्य से देश–काल एवं समाज में आदर्शो की स्थापना की है । इस प्रकार रामायण का कथावृत्त आदर्श मानव जीवन का मानदण्ड है एवं उसके पात्र वैदिक संस्कृति के आलोक से सदैव भारतीय जनमानस को पग–पग पर आदर्शोन्मुख करते रहते हैं ।

---

१. रस–मीमांसा -- रामचन्द्र शुक्ल

२. वही ।

आदिकवि ने शतसंख्यक रामायणीय पात्रों की सृष्टि विभिन्न वर्ग, सम्प्रदाय तथा जातिगत चेतना के प्रतीक के रूप में की है ।

आदिकवि ने देवता से पक्षी तक एवं निर्जिव पर्वतों आदि में भी मानवीय गुणों एवं भावना का संचार किया है । प्रमुख पात्र श्रेणियाँ अधोलिखित हैं –

१. **देवपात्र** – ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अग्नि इत्यादि ।

२. **मानव पात्र** – राम, लक्ष्मणादि ।

३. **वानर पात्र** – हनुमान्, सुग्रीव, बाली इत्यादि ।

४. **राक्षस पात्र** – रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद इत्यादि ।

५. **पक्षी पात्र** – गरूड़, जटायु, सम्पाती ।

भट्टि ने अपने महाकाव्य में उपर्युक्त पात्रों का चित्रण कितना स्वाभाविक एवं जीवन्त रूप में किया है, इस पर एक विहंगम दृष्टि डालनी आवश्यक है ।

महाकवि भट्टि वैदिक धर्म के अनुयायी तथा भारतीय संस्कृति के परम उपासक हैं । उन्हें देववाद एवं देवशक्ति पर पूर्ण आस्था एवं विश्वास है ।

१. देवपात्र :–

भट्टि के नायक राम स्वयं सनातन विष्णु के अवतार हैं –

"गुणैर्वरं भुवनहितच्छलेन यं सनातनः पितरमुपागमत् स्वयम् ।।"

रावणवध, भट्टि, १/१

कविवर भट्टि के दशरथ इन्द्र के मित्र[१] तथा सहायक हैं एक मात्र शिव के उपासक हैं ।[२] भक्तों के कष्ट–निवारक विष्णु ने वामन और कच्छप रूप धारण कर पृथ्वी के कष्ट का निवारण किया है ।[३] इन्द्र, कुबेर, यम आदि अन्यान्य देव रावण के प्रताप से संत्रस्त हैं ।

ब्रह्मा जी रावण को विजय प्रदान करने वाले हैं तथा इन्द्रजीत के वध के संस्थापक हैं । इन्द्रजीत की पूजा

---

१. भट्टिकाव्य, १/२

२. वही, १/३

३. वही, २/

से प्रसन्न ब्रह्मा जी उसे रथ प्रदान करते हैं ।

अन्त में सीता की अग्नि–परीक्षा के समय उपस्थित होकर वे सीता के सतीत्व की शुद्धि प्रमाणित करते हैं ।[१]

महादेव शङ्कर आशुतोष है । राम भी उनके ध्याता हैं ।[२] उनके निवास कैलाश–पर्वत को उठाकर उन्हें प्रसन्न कर रावण उनसे वर प्राप्त करता है ।[३] सीता की अग्नि परीक्षा के समय वे स्वयं उपस्थित होकर सीता की पवित्रता प्रमाणित करते हैं ।[४]

इस प्रकार दैवीय शक्ति से सम्पन्न देवगण अपने स्वभाव एवं गुण के अनुरूप मानव तनुधारी राम तथा राक्षसों की समय–समय पर सहायता करते रहे हैं ।

२. ऋषि–मुनियों का चरित्र :–

रामायण–कथा में वर्णित ऋषि–मुनियों में वशिष्ठ, विश्वामित्र तथा भरद्वाज के चरित्र एवं कार्य राम के चरित्र को उत्कर्ष प्रदान करते हैं । इन सभी ऋषियों तथा मुनियों ने सभी के चरित्रोत्थापन में विशेष योगदान किया है ।

भट्टि के वशिष्ठ राम–जन्म के समय समस्त बालग्रहों का निवारण करते हैं एवं देव–ब्राह्मणों की पूजा करते हैं ।[५] विश्वामित्र पुनर्जन्म विषयक निवृत्ति तथा प्रकृति-पुरुष तत्व के ज्ञाता हैं ।[६] वे क्षात्र–द्विज को एक–दूसरे के लिए कल्याणकारी तथा सहयोगी मानते हैं ।[७] उन्हें राम के ब्रह्मत्व एवं शक्ति पर विश्वास है ।

महर्षि भरद्वाज मौनव्रती, भूमिशायी, योगाभ्यासी एवं विद्यादानी हैं –

"वाचंयमान स्थण्डिलशायिनश्च युयुक्षमाणाननिशं मुमुक्षून् ।
अध्यापयन्तं विनयात्प्रणेमुः पद्गा भरद्वाजमुनिं सशिष्यम् ।।"

रावणवध, ३/४१

---

१. भट्टिकाव्य, १२/१२ – १३
२. वही, १२/८६
३. वही, १२/१६
४. वही, २१/१६
५. वही, १/१५
६. वही, १/१८
७. वही, १/२१

राम को वापस लाने हेतु जब भरत वन में जाते हैं, तब वे उनका ससैन्य अन्न–भोजन–वस्त्रादि से सत्कार करते हैं ।[१]

इसके अतिरिक्त शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण ऋषियों का चरित्र भट्टि ने अपने महाकाव्य में वर्णित किया है ।

३. पक्षी–पात्र–चित्रण :–

आदिकवि ने अपने काव्य में ३ पक्षी शरीरधारी पात्रों का चित्रण किया है । ये हैं – पक्षीराज गरुड़, जटायु एवं सम्पाती । ये तीनों ही अपने परामर्श एवं कार्यों द्वारा रामचरित्र को उत्कर्ष एवं उनके कार्य–सम्पादन में सहयोग प्रदान करते हैं ।

भट्टि के गृद्धराज जटायु राम के भक्त हैं ।[२] सीताहरणकर्त्ता रावण से वह भयङ्कर युद्ध करता है । रावण के रथ को चूर्ण कर देता है ।[३] अन्त में पंख कट जाने पर घायल होकर गिर जाने से[४] सीता वियोग में संतप्त राम को रावण द्वारा सीता–हरण का प्रसङ्ग बताकर ही स्वर्ग को प्रस्थान करता है ।

जटायु–भ्राता सम्पाती सीता की खोज में तत्पर वानरी सेना का स्वागत कर उन्हें सीता–खोज रूपी कार्य हेतु प्रोत्साहित करने के लिए नाना–प्रकार के उपदेश देते हैं ।[५] सम्पाती ने ही सुवर्ण नगरी लङ्का का पता वानर–सेना को दिया ।[६]

पक्षीराज गरुड़ नागपाश बद्ध राम–लक्ष्मण द्वारा स्मरण किए जाने पर उपस्थित होकर उन्हें बन्धन–मुक्त कराता है । गरुड़ के स्पर्श–मात्र से ही राम–लक्ष्मण दोनों ही पीड़ा मुक्त हो जाते हैं ।[७]

४. नर–पात्र चित्रण :–

महाकवि भट्टि के काव्य में नर–पात्रों का अनेकानेक चित्रण है । किन्तु हम यहाँ प्रमुख नर–पात्रों का निरूपण करेंगे । ये प्रमुख पात्र हैं – दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, सीता इत्यादि ।

---

१. भट्टिकाव्य, १/१५
२. वही, ५/६६
३. वही, ५/१०१ – १०३
४. वही, ५/१०८
५. वही, ७/६१ – ६२
६. वही, ७/६३ – ६४
७. वही, १४/६६

भट्टि के दशरथ :–

महाकवि भट्टि के दशरथ देवताओं के मित्र, शत्रुओं को प्रताड़ित करने वाले, शस्त्रों में पारगंत हैं । इनके गुणों से प्रभावित भगवान् विष्णु इनके यहाँ पुत्र रूप में अवतीर्ण हुए ।[१]

वे वेदों के ज्ञाता, छः काम क्रोधादि शत्रुओं को जितने वाले अर्थात् जितेन्द्रिय नीति–निपुण हैं ।[२] वे महादानी, इन्द्र के मित्र तथा शिव के परम उपासक हैं ।[३] महाकवि भट्टि इन्हें इन्द्रतुल्य (शतमन्युकल्पः) बताते हैं ।

महर्षि विश्वामित्र द्वारा यज्ञ–रक्षार्थ राम–लक्ष्मण के माँगे जाने पर पुत्र–वियोग के भय से वह मूर्च्छित हो उठते हैं ।[४] राम–लक्ष्मण के वनवास चले जाने पर दशरथ उनके विक्षोभ को सहन नहीं कर सके और शोकानल से दग्ध होकर स्वर्गवासी हो गये ।[५]

इस प्रकार भट्टि ने महाराज दशरथ के शौर्य, पराक्रम, सत्यप्रियता एवं पुत्र–प्रेम का सुन्दर एवं स्वाभाविक चित्रण किया है ।

भट्टि के भरत :–

महाकवि भट्टि के भरत महर्षि वाल्मीकि के भरत की साक्षात् प्रतिमूर्ति ही हैं । ननिहाल से वापस आकर शोकसन्तप्त परिवार को देखकर, राजमरण को सुनकर क्रोधादि से प्रदीप्त हो जाते हैं ।[६] अपनी माता कैकेयी को ही राम वनवास, पितृ मृत्यु, मातृ–वैधव्य का कारण मानकर बारम्बार उन्हें उपालम्भ देते हैं ।[७] माता के इस घृणित एवं कुल–विनाशक कार्य से अपनी अज्ञानता एवं असहमति व्यक्त करते हुए वे बार–बार शपथपूर्वक अपनी निर्दोषता सिद्ध करते हैं ।[८]

गुरुजनों द्वारा बारम्बार सान्त्वना देने पर भरत स्वर्गीय दशरथ का वैदिक–विधि से दाह–संस्कार करते हैं ।[९]

---

१. भट्टिकाव्य, १/१
२. वही, १/२
३. वही, १/४
४. वही, १/२०
५. वही, ३/२१
६. वही, ३/३०
७. वही, ३/३१
८. वही, ३/३२
९. वही, ३/३५

परिजनों से युक्त, श्वेत उत्तरीय धारण किए हुए, शस्त्रहीन, पादचारी, अश्रुपूरित भरत राम के समीप उनके वियोग में मृत पिता का समाचार बताते हैं ।[१] स्वर्गवासी पिता को अर्ध्यदानादि देकर भरत से पित्रादेशानुसार राज्यभार ग्रहण करने को राम कहते हैं तब वे कहते हैं – "अग्रज भ्राता के रहते अनुज द्वारा राज्यभार ग्रहण करना कुल–कीर्ति का नाश करता है ।"

"वृद्धौरसां राज्यधुरां प्रवोढुं कथं कनीयानहमुत्सहेय ।
मा मां प्रयुक्थाः कुलकीर्तिलोपे प्राह स्म रामं भरतोऽपि धर्म्यम् ।।"

रावणवध, ३/५४

अतः आपके रहते मेरा राज्यभार ग्रहण करना सर्वदा अनुचित है ।[२] भरत को नाना प्रकार के प्रबोध देकर राम उन्हें अपनी चरणपादुका देकर अयोध्या विदा करते हैं ।[३]

राम के वनवास से वापस आने पर भरत अतिशय हर्ष से अश्रुपूरित नेत्र युक्त हो जाते हैं तथा उनका स्वागत करते हैं ।[४] राम उन्हें युवराज पद पर प्रतिष्ठित करते हैं ।[५]

भट्टि की सीता :–

रावणवध महाकाव्य में सीताजी का दर्शन सर्वप्रथम जनक की यज्ञशाला में होता है । जब विदेहपति जनक सुवर्णमयी, लतावत्, आकाशपतिता विद्युत्प्रभावत् एवं चन्द्रकान्तमणि की अधिष्ठात्री देवी सी सुन्दरी सीता को राम को समर्पित करते हैं –

"हिरण्यमयी शाललतेव जङ्गमा च्युता दिवः स्थास्नुरिवाऽचिरप्रभा ।
शशाऽङ्गकान्तेरबिदेवताऽऽकृतिः सुता ददे तस्य सुताय मैथिली ।।"

रावणवध, २/४७

श्री राम सर्वहितकारिणी तथा रघुवंश की शोभावर्धिनी सीता को स्वीकार करते हैं ।[६]

---

१. भट्टिकाव्य, ३/३६
२. वही, ३/५५
३. वही, ३/५६
४. वही, १२/२६
५. वही, १२/३१
६. वही, २/४७

पिता द्वारा निर्वासित राम के साथ सीता भी वन प्रस्थान करती है । वनवासिनी सीता के अनुपम सौन्दर्य का निरूपण करते हुए रावण से शूर्पणखा कहती है – "रामप्रिया सीता स्त्रियों में मुख्य, हंसगामिनी, कृशाङ्गी, यौवन मध्यस्था तथा गोल उदर वाली है ।" [१]

सीता इन्द्राणी, रुद्राणी, मनुपत्नी, चन्द्राणी एवं अग्न्यानी (स्वाहा) से भी सुन्दर है । [२] समस्त भूतल एवं स्वर्ग में दुर्लभ सौन्दर्य से युक्त सीता को देखकर रावण भी अपने जीवन को सफल मानता है । [३]

रावण द्वारा परिचय पूछने पर स्वाभिमानिनी सीता निर्भीकतापूर्वक प्राणपति राम को वीरता, धीरता, कुलीनता एवं धार्मिक क्रियाओं का निरूपण और गुणगान करती हैं । रावण को 'अधम' नीच बताते हुए उपालम्भ देती हैं । [४]

पतिपरायणता :–

सीता अत्यन्त पतिपरायणा नारी हैं । पति वियोग में वह अत्यन्त दुर्बल हो जाती हैं । मनुष्य भक्षक राक्षसों के मध्य राम से अत्यधिक दूर रहते हुए भी पतिभक्ता सीता को राम के पुरुषार्थ पर पूर्ण विश्वास है । रावण से साम–दान–दण्ड आदि द्वारा प्रलोभित न होकर सीता निर्भय एवं आत्मविश्वास के साथ उससे कहती हैं, – "साक्षात् विष्णु के अवतार राम अवश्य ही तुम्हारा समूल विनाश करेंगे । [५]

हनुमान् अशोकवाटिका में जब सीता के सम्मुख उपस्थित होते हैं, तब पतिवियोगिनी सीता प्राणप्रिय राम के शयन, भोजन एवं हास्यादि के विषय में हनुमान् से बारम्बार पूछती है । [६]

भट्टि ने सीता के आचरण एवं चरित्र का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से किया है ।

भट्टि के हनुमान् :–

हनुमान् अति बलवान्, उरुविग्रह एवं कामरूपधारी है । सीतान्वेषण हेतु लंका प्रस्थान के समय उनके तेज

---

१. भट्टिकाव्य, ५/१८

२. वही, ५/२२

३. वही, ५/६६

४. वही, ५/७७ – ८६

५. वही, ८/६३

६. वही, ६/८६

एवं वेग को गरुड़, सूर्य तथा वायु भी नही रोक पाते हैं ।[१] राम–कार्य में अवरोधकारिणी राक्षसी का वधकर वह समुद्र पार करते हैं ।[२]

यशाभिलाषी :–

रामकार्य में तत्पर हनुमान् प्रण करते हैं कि – "प्राण दे दूगाँ या यश प्राप्त करूगाँ" –

"विकुर्वे नगरे तस्य पापस्याऽद्य रघुद्विषः ।
विनेष्ये वा प्रियान् प्राणानुदानेष्येऽथवा यशः ।।"

रावणवध, ८/२१

उत्तमदूत :–

हनुमान् उत्तम दूत के गुणों से युक्त हैं । वे स्वामी की आज्ञा से पूर्व कर्मो का विरोध न करके अधिकाधिक कार्य करते हैं ।[३]

उनके इस दौत्य–कर्म की प्रशंसा अशोकवाटिका के राक्षसगण भी करते हैं ।[४]

स्वामिभक्त :–

सीता–दर्शन हेतु लंका में प्रविष्ट हनुमान् स्वामी राम के दुःख से इतने दुःखी हैं कि रावण सभा में आयोजित नृत्य–गान को भी नहीं देखते हैं ।[५] उन्हें स्वामी राम के दुःख को दूर करने की चिन्ता हमेशा सताती रहती है ।[६] हनुमान् रावण से कहते हैं कि तुम सीता को लौटाकर राम से मैत्री कर अर्थ, धर्म तथा कामादि त्रिवर्ग प्राप्त कर सकते हो ।[७]

महान् पराक्रमी :–

महापराक्रमी हनुमान् असंख्य राक्षसों से रक्षित अशोकवाटिका का विनाश कर देते हैं । वे राक्षसों के भयंकर

---

१. भट्टिकाव्य, ८/१
२. वही, ८/५
३. वही, ८/१२७
४. वही, ६/८२
५. वही, ८/३४
६. वही, ८/५७
७. वही, ६/११५

अस्त्र–प्रहारों को भी नष्ट करते हैं हनुमान् ने रावण–पुत्र अक्षकुमार को मार डाला ।[1] उन्होंने इन्द्रजीत के रथ को भी भङ्ग कर दिया ।

भट्टि का रावण–चरित्र :–

महाकवि भट्टि ने प्रतिनायक रावण का सफल–चित्रण प्रस्तुत किया है । रावण में प्रतिनायक के अनेक गुण–दोषों का समावेश है ।

'प्रतिनायक' की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है –

व्यसनी पापकृद् द्वेष्यो नेता स्यात् प्रतिनायकः ।

नञ्जरायशो भूषण

"बिना प्रतिनायक चरित्र–चित्रण के नायक–चरित्र का सौन्दर्य नहीं चित्रित किया जा सकता ।"

डॉ० सत्यव्रत सिंह, साहित्यदर्पण, १/१३१ विमर्श

विषयासक्त :–

भट्टिकाव्य में हमें रावण का प्रथम दर्शन उस समय होता है, जब नासिकाविहीन शूर्पणखा उसकी राज्यसभा में उपस्थित होकर इन्द्रशत्रु रावण की उद्योगशून्यता एवं निष्क्रियता पर उसे धिक्कारती है । शूर्पणखा रावण को उन्मार्गी, प्रमादपूर्ण, मद्य व्यसनी तथा विषयासक्त बताती है ।[2]

कामी रावण पंचवटी में सीता से प्रणय याचना करते हुए अपने राजभवन में रहने तथा आलिङ्गन करने को कहता है ।[3] विलासी रावण का भवन सर्वदा कामचारिणी एवं विषयासक्त स्त्रियों के राग--रंग से परिपूर्ण रहता है ।[4] सीता–सौन्दर्य से मोहित होकर वह सीता से प्रणय–याचना करते हुए उनसे अपने पास सुलाने की याचना करता है ।[5]

अहंकारी :–

रावण में अहंकार भावना का आधिक्य है । शूर्पणखा द्वारा शासन नीति आदि की चिन्ता किए जाने पर

---

१. भट्टिकाव्य, ६/३८

२. वही, ५/१०

३. वही, ५/६० – ६३

४. वही, ८/४६

५. वही, ८/८३

अहंकारी रावण आत्मप्रशंसा करते हुए कहता है कि – "देवराज इन्द्र मेरा सेवक है । उसका वज्र मेरी छाती में विदीर्ण हो जाता है ।[१] अभिमानी रावण बलहीन राम से अपने विरोध को लज्जाजनक समझता है ।[२]

माया–कपट–निपुण :–

मायावी रावण छल–कपट में निपुण है । सीता–हरण के समय वह स्नान से पवित्र, शिखा, मालाधारी, तुम्बीपात्र से युक्त, कमण्डल एवं उत्तरीय धारण कर सीता के सम्मुख साधु–वेष में उपस्थित होता है ।[३]

भ्रात–वत्सल :–

क्रूर एवं अत्याचारी रावण का हृदय भ्रातृ–वत्सलता से परिपूर्ण है । लंका–समर में मृत कुम्भकर्ण, अतिकाय, त्रिशिरा, कुम्भ, निकुम्भ आदि वीरों के गुणों एवं कार्यों का वर्णन करते हुए रावण अत्यन्त विलाप करता है । बन्धुजनों के वियोग में वह ऐश्वर्य, जीवन आदि को भी त्याग देना चाहता है ।[४]

रावण–वध के बाद उनके द्वारा निर्वासित विभीषण भी भ्राता रावण की 'भ्रातृ–वत्सलता' को याद कर विलाप करते हैं ।[५]

शत्रु–प्रशंसक :–

स्वाभिमानी होते हुए भी रावण अपने परम शत्रु राम के गुणों, वीरता, शत्रु विजय की प्रशंसा करता है ।[६]

वीर एवं पराक्रमी :–

रावण वीर, पराक्रमी एवं युद्ध–कौशल से परिपूर्ण है । जब वह युद्धभूमि में उपस्थित होता है तब पृथ्वी कम्पित हो उठती है । भयंकर वायु चलने लगती है । रावण अस्त्रसमूहों से शत्रुओं को आच्छादित कर देता है ।[७] राम और रावण के भयंकर युद्ध से सभी लोग विस्मित हो जाते हैं । वह युद्ध में असुर गन्धर्व आदि अस्त्रों

---

१. भट्टिकाव्य, ५/२५
२. वही, ५/२६
३. वही, ५/६१ – ६३
४. वही, १६/१० – २०
५. वही, १८/१०
६. वही, १५/१०
७. वही, १७/७३ – ७५

का प्रयोग करता है । विभीषण पर प्रयुक्त अपनी शक्ति को विफल देखकर रावण आठ घण्टाओं से युक्त शक्ति द्वारा लक्ष्मण को धराशायी कर देता है –

"अण्टघटां महा–शक्तिमुदयच्छन् महत्तराम् ।
रामाऽनुजं तयाऽविध्यत् स महीं व्यसुराश्रयत् ।।"
रावणवध, १७/६२

महावीर राम भी स्वयं रावण की दानशीलता, शत्रु प्रदार–कौशल, यज्ञकर्मादि गुणों की प्रशंसा करते हैं ।[१]

भट्टि के अन्य राक्षस–पात्र :–

विभीषण :– प्रतिनायक रावण के अतिरिक्त अन्य राक्षस पात्रों को महाकवि भट्टि ने अपने काव्य में यथोचित्त स्थान प्रदान किया है । रावण अनुज रामभक्त विभीषण देवार्चन के बाद चार मन्त्रियों के साथ दरबार में प्रवेश कर रावण को उत्तम कार्य एवं नीतिज्ञ विद्वानों के आदर का परामर्श देता है ।[२]

वह प्रहस्तादि मूर्खों से युक्त रावण से विनयी राम से सन्धि का आग्रह करता है ।[३] उसे राम की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है । राम अजेय हैं । उनके विग्रह से विनाश निश्चित है ।[४]

जब रावण विभीषण को पादप्रहार द्वारा दरबार से निष्कासित कर देता है, तब क्षमाशील, गर्वहीन, उत्साही, विभीषण राम की शरण में चला जाता है ।

मेघनाद :–

रावणतनय इन्द्रजीत मेघनाद परमवीर एवं पितृभक्त है । युद्ध भूमि में प्रस्थान से पूर्व वह अनेक धार्मिक अनुष्ठान करता है । ब्राह्मणों से हवन एवं स्वस्तिवचन करवाता है एवं वंश वृद्धों का पूजन भी करता है ।[५] उसकी यज्ञशाला है ।

वह माँस, मदिरा का सेवन करता है तब युद्धभूमि में उतरता है । घनघोर युद्ध में लक्ष्मण को भी मूर्च्छित कर देता है । लक्ष्मण द्वारा उसका वध हो जाता है ।

---

१. भट्टिकाव्य, १८/४०

२. वही, १२/२५

३. वही, १२/३६

४. वही, १२/४६

५. वही, १७/१ – २

कुम्भकर्ण :–

रावणानुज निद्राप्रिय कुम्भकर्ण परम वीर है । वह नीति से युक्त है । रावण के लोक–तिरस्कार को अनर्थ का मूल मानता है । भ्रातृभक्त होते हुए भी रावण के क्रूर कर्म, परस्त्री गमन की निन्दा करते हुए विभीषण और माल्यवान् की नीतियों का समर्थन करता है । फिर भी भ्रातृ–प्रेम के वशीभूत हो रावण के लिए अपनी मृत्यु को कृतकृत्य मानता है ।[1]

अपने भाई रावण की आज्ञा से युद्धभूमि में वह असंख्य वीरों का वध करता है । राम द्वारा उसके वध किए जाने पर महेन्द्र पर्वत भी कम्पित हो उठता है –

"ऐन्द्रेण ह्रदयेऽव्यासीत् सोऽध्यवात्सीच्च गां हतः ।
अपिक्षातां सहस्त्रे द्वे, तद्–देहेन वनौकसाम् ।।"

रावणवध, १५/६६

इसके अतिरिक्त माल्यवान्, वीर मारीच एवं दूत अकम्पन भी नीतिज्ञ है । वे रावण की अनीति की निन्दा करते हैं तथा राम के पौरुष, धर्म–कर्म की प्रशंसा करते हैं ।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि भट्टि पात्र–चरित्र–चित्रण उपर्युक्त, संगत एवं आदिकवि वाल्मीकि के अनुकूल है । रावणवध में सर्वथा पात्रानुकूल चरित्र–चित्रण का प्रयास कवि द्वारा किया गया है ।

---

१. भट्टिकाव्य, १२/६७

महाकाव्य की कथा (सर्गवार)

प्रथम सर्ग :–

प्राचीन काल में महाप्रतापी देवराज इन्द्र के मित्र, शत्रुसन्तापक, विद्वान्, इष्ट और पूर्व कर्मों के अनुष्ठानकर्ता, नीतिनिपुण दशरथ नाम के राजा हुए । जिस गुण श्रेष्ठ राजा के घर पर स्वयं नारायण ने लोकहित के लिए पुत्र रूप में जन्म लिया –

"गुणैर्वरं भुवनहितच्छलेन यं, सनातनः पितरमुपागमत् स्वयम् ।।"

रावणवध, १/१

उन्होंने काम, क्रोध, मोह, मद, मात्सर्य इन अन्तः स्थित षड्वर्ग शत्रुओं पर तथा राजनीति के अनुकूल व्यवहार द्वारा बाह्य शत्रुओं पर (राजाओं पर) विजय प्राप्त की । वे इन्द्रपुरी अमरावती के समान, अत्यन्त वैभवशाली, विद्वानों की वासभूमि सुन्दर उद्यानों से सुशोभित 'अयोध्या' नाम की नगरी में रहते थे ।[१]

बहुत दिनों तक कोई सन्तति न होने पर पुत्र प्राप्ति की क़ामना से राजा ने पुत्रेष्टि यज्ञ करने के लिए विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋषिश्रेष्ठ ऋष्यश्रृङ्ग को वेश्याओं द्वारा अपनी पुरी में बुलवाया । उन्होंने विधिपूर्वक यज्ञ अनुष्ठान किया । यज्ञ–कर्म सम्पन्न होने पर तीनों महारानियों ने यज्ञ–शेष चरु का सेवन किया ।[२]

नियत समय पर कौशल्या ने राम को, कैकेयी ने भरत तथा सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को जन्म दिया । विद्वानों में श्रेष्ठ वशिष्ठ जी ने उन राजकुमारों के जातकर्म से आरम्भ कर उपनयन पर्यन्त संस्कारों को क्रम से सम्पन्न किया । तत्पश्चात् उन राजकुमारों ने अङ्गों सहित वेदों का अध्ययन करके शस्त्रविद्या में दक्षता प्राप्त करके प्रजाजनों के चित्तों को अपने गुण–वैशिष्ट्य से हर लिया ।[३]

एक बार यज्ञादि कर्मों में विध्वंसकारी राक्षसों से यज्ञकर्म की रक्षा के लिए गाधि के पुत्र महर्षि विश्वामित्र रामचन्द्र जी को माँगने के लिए महाराज दशरथ के समीप आए । दशरथ ने मधुपर्कादि से उनका आतिथ्य सत्कार करने के पश्चात् कुशल मंगल एवं तपोविषयक निर्विघ्नता के सम्बन्ध में पूछा । तब उनके आने का अभिप्राय जानकर पुत्र–विरह से दुःखित महाराज दशरथ मूर्च्छित हो गये ।[४]

---

१. भट्टिकाव्य, १/६ – ८

२. वही, १/१० – १३

३. वही, १/१४ – ४६

४. वही, १/१६ – २०

तदन्तर उनके सचेत होने पर ऋषि बोले –

"हे राजन्! राक्षसों के भय से त्रस्त मैं तुम्हारे शरण में आया हूँ, जिस प्रकार पाप के भय से तुम लोग हमलोगों की शरण में आते हो। क्षत्रियत्व और द्विजत्व दोनों प्रकार का सन्देह न कर अपने पुत्रों को मेरे साथ भेजो।[1]

राजा दशरथ ने मन में यह विचार करके कि "पुत्र–वियोग रूपी शोकाग्नि तो मुझे जलायेगा ही, लेकिन विप्ररूपी अग्निदेव तो कुल का ही नाश कर देंगे।" –

"क्रुध्यन्कुलं वक्ष्यति विप्रवह्निर्यास्यन्सुतस्तप्स्यति मां समन्युम्।"

रावणवध, १/२३

तात्पर्य यह है कि यदि ऋषि क्रोधित हो गए तो उनके शाप से पूरे कुल का नाश हो सकता है। अतः पुत्र–वियोग को सहन करना ज्यादा उचित है।

इस प्रकार बहुत विचार करके दशरथ ने ऋषि के साथ राम को जाने की अनुमति दे दी। लक्ष्मण राम के साथ जाने को तत्पर हो गये।

प्रसन्नमुनि विश्वामित्र आशीर्वचनों से राजा का अभिनन्दन कर प्रातः काल आश्रम को चल दिए। राम और लक्ष्मण के ऋषि के अनुगमन करने के समय में वियोग से पीड़ित होती हुई भी नगर की युवतियों ने मङ्गल भङ्ग होने के भय से रूदन नहीं किया। मङ्गलवाद्य बजाये गये, शुभशकुन करने वाले पक्षियों ने वृक्षों पर शब्द किया।[2]

द्वितीय सर्ग :–

भ्राता लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र का अनुसरण करते हुए रामचन्द्र जी ने अयोध्या से निकलकर यत्र–तत्र शरत् की शोभा देखी। तालाब आदि के निर्मल जल और विकसित कमलों ने भी उनके मन को हर लिया। जगत्पूज्य रामचन्द्र जी का श्रेष्ठ मुनियों ने फूलों और फलों से सत्कार किया।[3]

इसके बाद शान्तिपरायण विश्वामित्र ने संग्राम में राक्षस विनाशक राम को 'विजया' और 'जया' नामक दो

---

१. भट्टिकाव्य, १/२० – २२

२. वही, १/२३ – २७

३. वही, २/१ – २०

विद्याएँ प्रदान की तथा अन्य अमोघ अस्त्रों को भी दिया । इसके बाद ब्राह्मणों को मारने वाली ताड़का नाम की राक्षसी का वध किया, तत्पश्चात् राम के बाहुबल को जानने की इच्छा से महाराज जनक के पिनाक धनुष को उन्हें ग्रहण कराया, जिससे शिवजी ने त्रिपुर नामक राक्षस की नगरी को दग्ध किया था । मुस्कराते हुए राम जी ने उस धनुष को तोड़ दिया । तब जनक जी द्वारा बुलाए गए महाराज दशरथ जी ने अपने पुत्र का पराक्रम सुनकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त होते हुए पुत्रों के विवाह कार्य सम्पादित करने के लिए चतुरङ्गिणी सेना से युक्त होकर मिथिलापुरी गये । तत्पश्चात् विवाह संस्कार–वेदी पर महाराज जनक ने स्वर्ण प्रभामयी शाललता के समान, द्यूलोक के चन्द्रमा की कान्ति को धारण करने वाली देवी के समान अपनी पुत्री सीता को दशरथ के पुत्र राम को दे दिया –

"हिरण्यमयी शाललतेव जङ्गमा च्युता दिवः स्थास्नुरिवाऽचिरप्रभा ।
शशाऽङ्गकान्तेरबिदेवताऽऽकृतिः सुता ददे तस्य सुताय मैथिली ।।"

रावणवध, २/४७

रामचन्द्र जी जनकनन्दिनी सीता को पाकर अत्यन्त सुशोभित हुए । राजा दशरथ ने सैन्य तथा पुत्रों के साथ अयोध्या नगरी के लिए प्रस्थान किया । इसके बाद उन्हें मार्ग में विशालवक्षाः, आजानबाहु, धनुर्धारी, जमदग्निपुत्र परशुराम मिले । उन्होंने क्रुध होकर राम को लक्ष्मण – "इस धनुष पर बाण चढ़ाओ, आगे मत बढ़ो ।" [1]

महाराज दशरथ जी ने उनकी वीरता तथा अपने अनुभव के आधार पर अपने पुत्र के नाश की आशङ्का से परशुराम जी से क्रोध न करने की प्रार्थना की, परन्तु उन्होंने उनकी प्रार्थना को अस्वीकार कर दशरथ की अवज्ञा की । रामचन्द्र जी ने अपने पराक्रम से परशुराम के मद को चूर्ण कर उनके द्वारा जीते गए लोकों को भी नष्ट कर दिया और सुख–पूर्वक स्वजन–समूह के साथ अयोध्या लौट आए । [2]

तृतीय सर्ग :–

राक्षसों पर विजय प्राप्त करने वाले, अपने गुण समूह से अभिराम रामचन्द्र जी को लोकप्रिय तथा राजकार्य का निर्वाहक जानकर महाराज दशरथ ने "मैं पुत्र का राज्याभिषेक करूगाँ ।" ऐसी घोषणा करके लोक में आनन्द की वृद्धि की । [3]

तब राज्याभिषेक की अनेक सामग्रियों के सम्पादित किये जाने पर कैकेयी ने उस उत्सव को देखने के

१. भट्टिकाव्य, २/५१

२. वही, २/५३ – ५५

३. वही, ३/२

लिए असमर्थ होकर अपने नाना जी के नगर में रहते हुए भरत को पूछे बिना राम को चौदह वर्ष के वनवास का वर मागाँ ।[१] रानी कैकेयी ने दशरथ की मृत्यु और लोकापवाद को भी नहीं सोचा । महाराज दशरथ ने बहुत धन तथा अनेक देश देने का संकल्प किया, लेकिन कैकेयी ने उसे अस्वीकार करके भरत के राज्याभिषेक रूपी कील दशरथ के मन–मस्तिष्क में ठोंक दी ।[२]

तब विवश होकर दशरथ के सीता और लक्ष्मण से युक्त रामचन्द्र जी को सुमन्त के सारथित्व में रथ पर चढ़कर वनयात्रा करने का आदेश देने पर शोक से विकल प्रजामण्डलों में कोलाहल होने लगा । सभी पुरवासी राम का अनुसरण करने को तैयार हो उठे । तब राम ने कहा – "हे पौरजनो ! आपलोग लौट जाँय, पिता के शोक को दूर करें, भरत को हमसे भिन्न न माने ।"[३]

वे प्रजाजनों के अनुसरण की भीति से उनके साथ जंगली जानवरों से उनकी रक्षा करते हुए वहीं एक रात बीताकर प्रातः काल नित्यकर्मादि से निवृत्त होकर वहाँ से चल दिए । तब प्रजाजन भी शोक–सन्तप्त मन को लिए सारथि सुमन्त्र के साथ वापस लौट आए ।[४]

महाराज दशरथ ने भी राम के बिना सुमन्त्र को देखकर अतिशय शोक से पीड़ित होकर प्राणत्याग दिया । रानियाँ वैधव्य से पीड़ित होकर छाती पीट–पीटकर रोने लगीं । मन्त्रियों ने भरत की प्रतीक्षा करते हुए राजा के शरीर को तैल में सुरक्षित रख दिया और परामर्श कर भरत को बुलवाने के लिए एक दूत भेजा । उधर भरत ननिहाल में अनेक अपशकुन दुःस्वप्न देख रहे थे । दूत के आने पर वह अनेक आशङ्काओं से व्याकुल होकर शीघ्र ही अयोध्या आए और यथार्थ वृत्तान्त सुनकर माता कैकेयी को पर्याप्त भर्त्सना देने लगे और स्वयं शोक–समुद्र में मग्न हो गए ।[५]

मन्त्रियों द्वारा सान्त्वना देने पर उन्हीं से राजा का सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक संस्कार कराया । भरत भी पितृमेध यज्ञ समाप्त कर, प्रजाओं द्वारा प्रकल्पित राज्याभिषेक को त्यागकर विनय से राम को लौटाने की इच्छा से प्रजाजनों के साथ वन गए । तब वन–मार्ग में तमसा नदी के तट पर विश्राम करने के पश्चात् यमुना में स्नान किया । मार्ग में सम्पन्न अतिथि–सत्कार का अनुभव कर चित्रकूट–पर्वत पर आकर रामचन्द्र जी से जा मिले । भरत से पिता की मृत्यु सुनकर शोक सन्तप्त, आक्रान्त–चित्त वाले होकर बहुत समय तक रोकर नदी

१. भट्टिकाव्य, ३/६

२. वही, ३/८

३. वही, ३/१५

४. वही, ३/१६ – १८

५. वही, ३/२१ – ३२

में जाकर पिताजी को जलाञ्जलि दी ।[1]

तत्पश्चात् रामचन्द्र जी ने भरत को वापस लौट जाने के लिए तथा राज्यभार ग्रहण करने के लिए अनेक प्रकार से प्रबोधित किया, किन्तु उसे अस्वीकार करते हुए विनम्र भरत ने कहा – "ज्येष्ठ भ्राता के रहते मेरे जैसा छोटा भाई कैसे राज्यभार वहन करने में प्रवृत्त होगा । कुछ यश को लिप्त कर देने वाले कार्य में मुझे न लगाए ।"[2]

अनन्तर रामचन्द्र जी ने उनसे कहा – "हे भरत् ! तुम मेरी चरणपादुका को लेकर अयोध्या लौट जाओ । मेरी सम्मति से सब सन्देहों को छोड़कर प्रजा के आदर–पात्र बनते हुए समस्त पृथिवी का पालन करो । जाओ, यह मेरा आदेश है । इसका पालन करो ।"

"इति निगदितवन्तं राघवस्तं जगाद
वज्र भरत! गृहीत्वा पादुके त्वं मदीये ।
च्युतनिखिलविशङ्क ! पूज्यमानो जनौघैः
सकलभुवनराज्यं कारयाऽस्मन्मतेन ।।"
रावणवध, ३/५६

चतुर्थ सर्ग :–

अयोध्यावासियों के साथ भरत को अयोध्या के राज्य संचालन का निर्देश देकर राम जी अत्रिमुनि के आश्रम गये । वहाँ आतिथ्य ग्रहण करके दण्डक वन में पहुँचे । उस वन में भ्रमण करते हुए विराध नामक राक्षस ने उनका अपहरण कर लिया । अन्त में दोनों भाइयों द्वारा वह मारा गया । विराधवधोपरान्त रघुकूलभूषण राम–लक्ष्मण ब्रह्मज्ञानी शरभङ्ग मुनि के आश्रम में गये । तब शरभङ्ग ऋषि ने उन्हें सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम बतलाकर उनके समक्ष ही अग्नि में अपने शरीर को प्रविष्ट करा दिया । रामचन्द्र जी ने सुतीक्ष्ण के आश्रम के निकट पर्णशाला बनाकर कुछ समय तक वहीं निवास किया और अनेक प्रकार के त्रास के कारणों से ऋषि–मुनियों की रक्षा की ।[3]

एक दिन पर्णशाला में विद्यमान राम–लक्ष्मण को कामुकी शूर्पणखा ने देख लिया । माया से सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके सीताजी की उपस्थिति से राम को विवाहित जानकर उनकी अवहेलना करते हुए, वह लक्ष्मण से प्रणय–प्रार्थना करने लगी । रामचन्द्र के प्रशंसक लक्ष्मण ने उन्हें राम के पास भेजा ।

---

१. भट्टिकाव्य, ३/३३ – ५०

२. वही, ३/५४

३. वही, ४/१ – १४

शूर्पणखा ने राम से प्रार्थना की। राम ने उसे पुनः लक्ष्मण के पास भेज दिया। इस प्रकार बार–बार अपमानित होती हुई लक्ष्मण द्वारा नाक काटे जाने पर नासिकाविहीन वह अनेक बार तर्जन करके भयङ्कर शरीर धारण करती हुई दण्डकारण्य में रहने वाले अपने भाई खर और दूषण के समक्ष विलाप करने लगी – "रावण जिसका रक्षक है और जो तुम्हारी बहन है उसका तपस्वियों द्वारा यह विध्वंस यदि तुम्हें क्षम्तव्य हो तो क्षमा करो। इन वनवासी जंगली फलमूल खाने वालों ने मेरा अपमान किया है, इसे देखो।"[1]

इस प्रकार शूर्पणखा का रूदन सुनकर उसके सम्मान की रक्षा के लिए चौदह हजार सैनिकों से युक्त अनेक प्रकार के अस्त्रों को लेकर राम और लक्ष्मण को दण्ड देने के लिए उन दोनों भाइयों ने प्रस्थान किया। तब युद्धभूमि में राम और लक्ष्मण ने अनेक राक्षसों को मारकर गिरा दिया। राक्षसों के विनाश को देखकर त्रिशिरा नामक सेनापति उनसे युद्ध करने आया। राम–लक्ष्मण ने उसे भी सरलता से मार कर अपनी अपराजेयता को प्रकट किया।[2]

पञ्चम सर्ग :–

राम और लक्ष्मण का खर–दूषण के साथ घमासान युद्ध हुआ। कुछ समय उपरान्त सेना सहित वे दोनों राक्षस राम और लक्ष्मण के द्वारा मारे गए। तदनन्तर असहाय शूर्पणखा समुद्र के पार स्थित लङ्का में निवास करने वाले अपने भाई रावण के पास गयी। उसने दशरथ पुत्र द्वारा किए गए खर–दूषण सहित राक्षसों के नाश को तथा रावण की नीतिगत गुप्तचरों की अकुशलता को प्रतिपादित किया। उसने राम के पराक्रम को और सीता के अनुपम सौन्दर्य का भी वर्णन किया।[3]

इसके पश्चात् रावण ने शूर्पणखा को आश्वासन देकर अपने पराक्रम का वर्णन करते हुए राम को बन्दी बनाने की वर्णन करते हुए राम को बन्दी बनाने की प्रतीज्ञा की। रांवण ने सहायता प्राप्त करने के लिए समुद्र के निकट रहने वाले मारीच के पास जाकर समस्त वृतान्त को सुनाया और मारीच ने राम को बन्दी बनाने की योजना से रावण को रोकने लिए राम के असाधारण पराक्रम का वर्णन किया।[4]

उसके वचन को सुनकर क्रोधित होकर मारीच वर्णित राम के पराक्रम को हीन बताकर मारीच की भर्त्सना करते हुए बोला – "ऐ मारीच! यदि राम ने बूढ़े परशुराम को जीत लिया तो क्या हुआ? लज्जावती नारी

---

१. भट्टिकाव्य, ४/१५ – ३८

२. वही, ४/४० – ४५

३. वही, ५/३ – २२

४. वही, ५/३१ – ३८

ताड़का को मार डाला तो उससे क्या हुआ ? पुराने धनुष को उसने तोड़ डाला तो उससे क्या हुआ ? शत्रुओं में प्रमादी खर–दूषण मारे गए तो भी क्या हुआ ? तू डरपोक और दुर्बुद्धि है ।" [१]

इसके पश्चात् रावण के भय से राम और लक्ष्मण को दूर करने के लिए मारीच ने सोने का मृग शरीर धारण कर लिया और आश्रम के समीप ही घूमने लगा । तब राम मृग–चर्म धारण करने की इच्छा वाली सीता द्वारा प्रेरित होकर बहुत दूर तक मृग के पीछे चले गए और कपट मृग बना हुआ मारीच सीता के रक्षा में नियुक्त लक्ष्मण को वहाँ से हटाने के लिए "हा लक्ष्मण" यह उच्च स्वर से चिल्लाया । मारीच के इस शब्द से विचलित सीता ने लक्ष्मण द्वारा बारम्बार समझाने पर भी राम के अनिष्ट की आशंका करके लक्ष्मण को राम के समीप जाने के लिए बाध्य कर दिया ।

लक्ष्मण के जाने के पश्चात् संन्यासी वेषी रावण कुटीर के सामने आया तथा सीता से "तुम कौन हो ?" इस प्रकार पूछकर उसके सौन्दर्य की प्रशंसा की । [२] सीता ने प्रसङ्गवश अपने आश्रयभूत राम के पराक्रम का बखान किया । [३]

तदनन्तर राम के पराक्रम को सुनकर असहनशील बने रावण ने अपना परिचय देते हुए अपनी वीरता का वर्णन किया तथा सीता से अपने महल में पत्नी बनकर रहने की बात कही । जब सीता रावण के इस प्रस्ताव से क्रोधित हो गयी, तब रावण ने भयङ्कर शरीर धारण कर उसे भुजपाश में जकड़ कर आकाश–मार्ग में चल पड़ा । रावण द्वारा ले जाई जाती हुई अत्यन्त तेजी से विलाप करती हुई सीता को गृद्धराज जटायु ने देखा । उसने सीता की रक्षा के लिए रावण पर चोंच एवं नाखूनों से प्रहार किया । रावण के रथ को भूमि पर गिरा दिया । तब दोनों में घोर संग्राम छिड़ गया । रावण ने जटायु पर क्रोधित होकर उसके पंखों को काट दिया तथा सीता को लेकर अपनी लङ्कापुरी की ओर चला गया । [४]

षष्ठ सर्ग :–

कामार्त रावण ने सीता से निराकृत होते हुए उसकी रक्षा के लिए राक्षसों को नियुक्त करके राम के वृत्तान्त का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने हेतु अपने गुप्तचरों को नियुक्त कर दिया । [५]

---

१. भट्टिकाव्य, ५/४१ – ४४

२. वही, ५/६५ – ७५

३. वही, ५/७८ – ८२

४. वही, ५/८३ – १०८

५. वही, ६/१ – ४

इधर राम ने भी मारीच का वध कर लौटते हुए बहुत से अपशकुनों से सीता के अनिष्ट की आशङ्का की । वहाँ आते हुए लक्ष्मण से सम्भावित वृत्तान्त को प्राप्त करके अत्यन्त अधीर हो उठे, पर्णशाला में सीता को न पाकर उन्मत्त होकर इधर–उधर विलाप करने लगे । उन्होंने सीता–वियोग से अत्यन्त व्याकुल होकर आँसू बहाते हुए भी अपने नित्यकर्मानुष्ठान को विस्मृत नहीं किया । राम सीता को खोजते हुए लक्ष्मण के साथ पर्वत के पास आ गए । वहाँ पर खून, कवच, अश्वसहित रथ और कटे हुए पंख वाले गृद्ध को पड़े देखकर अनेक कल्पनाओं से मोहित हुए, सीता को मारने वाला समझकर उसे मारने को उद्यत हुए ।[१]

उसके पश्चात् उस गृद्धराज जटायु ने रामजी को समस्त वृतान्त सुनाकर मृत्यु को प्राप्त हो गया । राम और लक्ष्मण ने जटायु का अग्निदाह, जलाञ्जलि आदि क्रियाएँ करके शोकाकुल हो गए । इसके पश्चात् कबन्ध नाम के लम्बी भुजाओं वाले राक्षस के द्वारा पकड़े गए दोनों भाइयों ने तलवारों से उसका वध कर दिया और तब वह राक्षस दिव्यरूप बन गया । तब राम के द्वारा पूछा गया वह – "मैं श्री नामक असुर का पुत्र हूँ । मुनि के शाप से ऐसा बन गया था ।"[२] इस प्रकार अपना वृत्तान्त कह कर "सीता रावण द्वारा लंका में पहुँचा दी गई । ऋष्यमूक पर्वत पर अपने बड़े भाई बाली द्वारा पीड़ित सुग्रीव नामक वानरराज रहता है । उसके साथ आपको परस्पर सहायता करने वाली मित्रता करनी चाहिए । उसकी सहायता से ही आपका सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होगा ।" ऐसा कहने के पश्चात् सूर्य के समान तेजस्वी वह राक्षस स्वर्ग चला गया ।[३]

तदनन्तर वे दोंनो भाई शबरी नामक तपस्विनी के आश्रम में गये । वह मधुपर्कादि, अर्चन सामग्री से दोनों भाइयों का अतिथि–सत्कार करके – "सुग्रीव आपके साथ शीघ्र ही मित्रता करेंगे और आप जल्दी ही सीता जी को देखेंगे ।" ऐसा कहकर अन्तर्हित हो गयी ।[४]

उसके पश्चात् दोनों ने पम्पासर तालाब को देखा । राम उस सरोवर में रमणीय पदार्थों के समूह–दर्शन से उत्पन्न सीता की स्मृति से बहुत समय तक शोकाकुल होकर विलाप करने लगे ।[५]

तत्पश्चात् राम–लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर चले गये । वहाँ पर बाली से भयभीत सुग्रीव उन्हें बाली का गुप्तचर जान मलय–पर्वत पर स्वयं चला गया । उनके वास्तविक वृत्तान्त को जानने के लिए सुग्रीव द्वारा प्रेरित हनुमान् जी भिक्षुवेष धारण कर रामजी के पास गये । "आप दोनों कौन हैं ?" इस प्रकार प्रश्न करने

---

१. भट्टिकाव्य, ६/५ – ३१

२. वही, ६/४६

३. वही, ६/५० – ५६

४. वही, ६/६० – ७२

५. वही, ६/७३ – ८५

पर राम द्वारा अपना परिचय देने पर हनुमान् जी ने अपना परिचय दिया और सुग्रीव से मित्रता हेतु उन्हें अपने कन्धे पर बैठाकर मलय पर्वत पर चले गये ।[1]

सुग्रीव भी राम को देखकर बाली के असीम पराक्रम की प्रशंसा की ।[2]

राम ने भी सुग्रीव को विश्वास दिलाने हेतु एक ही बाण से आकाश को छूने वाले सात–ताल–वृक्षों को काट दिया । तब सुग्रीव निःशङ्क होकर बाली के निवास स्थान पर गया । तब राम–लक्ष्मण और बाली में घमासान युद्ध हुआ । राम के बाण से घायल होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा । शूरवीर बाली ने छल से मारे जाने के कारण राम को उपालम्भ किया ।[3]

राम ने "तुम अपने भाई की पत्नी का अपहरण करने वाले पातकी हो ।" इस प्रकार फटकार कर युक्तिपूर्ण वचनों से उसके उपालम्भ को दूर किया । तब बाली ने लज्जित होते हुए राम जी से विनय की तथा राम को अपने पुत्र अङ्गद को सौंपकर सुग्रीव के साथ सान्त्वना देकर उसे उसकी प्रिय पत्नी तथा सोने की माला और राज्य–शासन समर्पित करके स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो गया ।

सुग्रीव ने अपने भाई की और्ध्वदैहिक क्रिया का विधान करके हनुमान् आदि से सम्मानित होता हुआ वर्षा ऋतु के निकट होने पर राम की आज्ञा से किष्किन्धा में चला गया ।[4]

सप्तम सर्ग :–

बालि वध के बाद सुग्रीव के राज्याभिषेक हो जाने पर धीरे–धीरे वर्षा ऋतु का प्रादुर्भाव हुआ । चमकने वाले, गरजते हुए, सूर्य को ढक देने वाले, दिन भर बने रहने वाले, विधुन्मय, अन्न को उत्पन्न करने वाले, मेघ, वर्षा करने लगे ।[5] माल्यवान् पर्वत पर रहने वाले रामचन्द्र जी उनको देखकर सीताजी की स्मृति से असहिष्णु होकर विलाप करने लगे तथा विरह को बढ़ाने वाली तत्तत् पदार्थों को उलाहना देने लगे ।[6]

वर्षा ऋतु के बीतने पर रामचन्द्र जी ने शरत् ऋतु के समीप में क्रौंच पक्षियों के समूह से विस्तृत सफेद

---

१. भट्टिकाव्य, ६/८६ – १०४

२. वही, ६/१०५ – ११०

३. वही, ६/११७ – १३६

४. वही, ६/१४५

५. वही, ७/१ – ३

६. वही, ७/४ – १३

आकाश–तल को देखा और लक्ष्मण जी को सम्बोधन कर अनेक पदार्थों का वर्णन किया । उन्होंने वर्षा के बीतने पर सीता के खोज में उद्यत न होने वाले सुग्रीव की निन्दा की और लक्ष्मण जी से कहा – "हे लक्ष्मण तुम जाकर सुग्रीव को कठोरतापूर्वक उपालम्भ दो ।" [1]

यह सुनकर लक्ष्मण जी ने चमकने वाले धनुष को लेकर सुग्रीव के समीप जाने का उपक्रम किया । कार्यों के प्रति जागरूक हनुमान् ने सुग्रीव की राजधानी में लक्ष्मण को प्रविष्ट कराया । सुन्दर स्त्रियों से घिरे हुए सुग्रीव ने लक्ष्मण को प्रणाम करके कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा – "हे प्रभो! मैं राम द्वारा प्रदत्त भोगो में रमण करता हुआ विद्युन्नाश तथा सूर्य के प्रकाश को नहीं जान सका, सम्प्रति शीघ्र ही मैं सीतान्वेषण के लिए भूमि, पर्वत और समुद्रों को जानने वाले वानरों को भेज रहा हूँ ।" [2] इस प्रकार उन्होंने उसी दिन राम दर्शन की इच्छा को भी प्रदर्शित किया । इसके बाद वानरों के साथ सुग्रीव रामचन्द्र के पास आ गए । तब सुग्रीव ने सीता जी को ढूढनें के लिए बहुत से वानरों को सभी दिशाओं में भेजा । सर्वप्रथम अङ्गद, हनुमान् और नीत के साथ जाम्बवान् को दक्षिण दिशा में जाने की आज्ञा देते हुए अनेक आदेश भी दिया एवं उनको समय के अनुसार आचरण करने के लिए कहा और एक मास पूरा होने के पहले वापस आने का निर्देश भी दिया । [3]

रामचन्द्र जी ने सीताजी को ढूढने के लिए तत्पर वानरों को देखकर अपने अभिलाष को पूर्वप्राय होने का विचार किया । उन्होंने अपने चिन्ह अगूँठी को सीता जी को देने के लिए हनुमान् जी को सौपी । [4]

इसके बाद सुग्रीव ने एक करोड़ वानरों के साथ शतबलि सेनापति को उत्तर दिशा की ओर, एक करोड़ वानरों के साथ सुषेण को पश्चिम दिशा की ओर तथा एक करोड़ वानरों के साथ विनत सेनापति को पूर्व दिशा की ओर भेज दिया । [5]

हनुमान् प्रभृति वानरों ने अपने स्वामी की आज्ञा के पालनार्थ और रामचन्द्र जी के अभिलाष को पूर्ण करने के लिए भी अनेक देशों को प्रस्थान किया । वे लोग विन्ध्यपर्वत पर सीता को ढूढने लगे । घूमते हुए वे सब पर्वत के किसी शिखर पर खिन्न होकर बैठ गए । अनन्तर एक पर्वत के मध्यभाग में बैठकर उन्होंने अनेक प्रकार के पक्षियों को और एक सुन्दर स्त्री को देखा तथा उससे कुशलता भी पूछी । उस सुन्दरी ने भी हँसकर उनका स्वागत किया और उन्हें स्वादिष्ट फलों से तथा शीतल जल से भी तृप्त किया – "किसकी यह नगरी

---

१. भट्टिकाव्य, ७/१६ – २२

२. वही, ७/२८

३. वही, ७/२६ – ४५

४. वही, ७/४६

५. वही, ७/५१ – ५२

है" ऐसा वानरों के प्रश्न करने पर उसने कहा "विश्वकर्मा द्वारा निर्मित की गई यह पुरी दानवराज की है। वे दानवराज मर्यादा को भङ्ग करने से विष्णु के द्वारा मारे गए। मेरू सावर्णि नामक उन्हीं दानवराज की मैं स्वर्णप्रभा नाम की पुत्री हूँ। अपना कार्य करने के लिए तुम लोगों को बाहर जाने की इच्छा हो तो हाथों से आँखों को बन्द कर लो, मैं तुम लोगों को बाहर कर दूँगी।"[१] तब वानरों के वैसा करने पर बाहर निकाल दिया। तब पाताल से निकलकर उन वानरों ने प्रभु से निर्दिष्ट समय को बीता हुआ जानकर दुःख का अनुभव किया।

उनमें से जाम्बवान्, अङ्गद और हनुमान् ने अनशन करने का निश्चय किया। तब उनके पास सम्पाति नाम के गृद्धराज उन्हें भक्षण करने की इच्छा से आ गये। उस गृद्धराज सम्पाति ने अपने भाई जटायु का नाम उन वानरों के मुख से सुनकर वानरों से उनका परिचय पूछा। तब उन्होंने, हम लोग रामचन्द्र जी के दूत हैं। ऐसा कहकर सीता जी के खोज की विधि बतायी तथा अन्वेषण–अवधि समाप्तप्राय होने की विवशता भी प्रकट की।

पक्षिराज सम्पाति ने त्रिकूट पर्वत की चोटी में स्थित लङ्का नाम की रावण नगरी में विद्यमान सीता की सूचना दी।[२] तब वे समस्त महेन्द्र पर्वत को चल दिए। वहाँ पहुँचकर उसके सुन्दर कुञ्ज में रहकर उन्होंने समुद्र को भी देखा। तब अङ्गद आदि वानरों ने सीताजी का पता लगाने के लिए हनुमान् जी को भेजा।[३]

अष्टम सर्ग :–

हनुमान् जी ने अतिशय वेग से आकाश में गमन किया उनके इस वेग को सूर्य, वायु तथा सुपर्ण भी न सह सके।[४] मार्ग में सिहिंका नामक कोई राक्षसी उन्हें मारने की चेष्टा करने लगी। हनुमान् ने उसके पेट का भेदन कर उसे मार दिया। उसी बीच हनुमान् ने अपने पिताजी के मित्र मैनाक नामक पर्वत को देखा। उन्होंने कुछ समय तक वहाँ विश्राम करके तथा फल–फूल खाकर अतिशय नम्रता से भृत्य की भाँति होकर उनसे अनुनय किया, अनुचितता बतलाई[५] और हनुमान् आकाश मार्ग से चल दिए।

उस समय ही देवताओं से प्रेरित सुरसा नाम की नागमाता हनुमान् जी के पराक्रम और धैर्य की परीक्षा के

---

१. भट्टिकाव्य, ७/६७ – ६६

२. वही, ७/६४ – ४७

३. वही, ७/१०८

४. वही, ८/१

५. वही, ८/१६ – २१

लिए सामने आ पहुँची । हनुमान् जी सूक्ष्मरूप लेकर उसके सौ योजन वाले मुख में प्रवेश कर निकल गये । उसके पश्चात् वे सीता जी को देखने की इच्छा से राक्षसों के समूह से व्याप्त समुद्र के तीर पर अपने स्वरूप को प्रकट न करते हुए चलने लगे ।

हनुमान् जी परस्पर विरूद्ध प्रलाप करने वाले ब्रह्म राक्षसों से और पिशाचों से संयुक्त, आतंक से रहित लङ्का नामक राक्षसराज रावण की पूरी को चले गए ।[१] उस समय पूर्व दिशा में चन्द्रमा उदित हुआ । पवनसुत हनुमान् जी सीताजी की कुशल प्रवृत्ति को जानने के लिए सुक्ष्मरूप से राक्षस भवनों में संचारण करने लगे । अपने पराक्रम को प्रकट नहीं करते हुए अनेक प्रकार की सुन्दर स्त्रियों से सुसज्जित रावण को प्रासाद के सामने चले ।[२]

वहाँ उन्होंने अमरावती को जीतने वाले, राक्षसों के स्वामी रावण को कैलास के सदृश देखा ।

अभिनव दयिता के साथ एकान्त में विद्यमान उनको देख वहाँ पर सीता को न पाकर दुःखित चित्त वाले उन्होंने अशोक वाटिका को दूर से देखा ।[३]

वहाँ हनुमान् जी ने दुःखिता, मलिना, प्रसन्नता रहित सीता को देखा । उसी समय में सीताजी का अनुनय करने के लिए रावण अनेक सुन्दर स्त्रियों से घिरकर वहाँ आया । उसने अनेक प्रकार से सीता जी से अनुयय–विनय किया ।[४]

पतिव्रता सीता जी ने ऐसी कुत्सित प्रार्थना करने वाले उस रावण की तीक्ष्ण वाक्यों से भर्त्सना की ।[५]

अनन्तर हनुमान् जी ने उपयुक्त अवसर देखकर सीताजी को आश्वासन देने के लिए रामचन्द्र जी की कथा का प्रस्ताव किया । सीता जी ने उन पर वानर रूपधारी राक्षस होने की आशङ्का करते हुए नाना प्रकार की तर्कना की ।[६] तब हनुमान् जी ने "मैं राम का सेवक दूत हूँ" ऐसा कहकर अपना परिचय दिया और राम की

---

१. भट्टिकाव्य, ८/३०
२. वही, ८/४५ – ४६
३. वही, ८/५६
४. वही, ८/७६ – ८४
५. वही, ८/८५ – ९३
६. वही, ८/१०४ –१०६
७. वही, ८/११८

पहचान के रूप में उनकी अगूँठी भी दे दी तथा अपने दूतत्व का परिचय दिया ।[७]

कोमल एवं सुन्दर वाक्य–समूह से उन्होंने सीता जी को आश्वासन दिया तथा रामचन्द्र जी की उन में असाधारण प्रणय की सूचना देकर राम के लिए प्रतिसन्देश देने की विनय की ।

सीताजी ने राम से सम्मत अत्यधिक सुन्दर चूड़ामणि को अपने अभिज्ञान के रूप में वायुपुत्र हनुमान् जी को सौंप दिया । तब हनुमान् जी अपने यश की वृद्धि का अभिलाषी होकर नन्दनवन के समान उस अशोक–वनिका उपवन को तोड़ डाला ।[१]

नवम सर्ग :–

हनुमान् द्वारा उपवन–भङ्ग को राक्षस स्त्रियों ने रावण के समीप निवेदन किया । रावण ने अस्सी हजार सेवकों को भेजा । अनेक प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित उन राक्षसों को कपिश्रेष्ठ हनुमान् ने कुछ समय तक युद्ध करके मार डाला ।[२]

तब बचे हुए सैनिकों ने रावण के समीप हनुमान् के पराक्रम की सूचना दी । रावण ने उन्हें दण्ड देने के लिए अपने मन्त्रियों को भेजा । कपिश्रेष्ठ हनुमान् जी ने भी सिंहगर्जना से दिशाओं को पूर्ण कर पुत्रों के सहित उन मन्त्रियों को मार डाला, पुनः उपवन नष्ट करने में संलग्न हो गए ।[३]

उसके बाद रावण ने हनुमान् को मारने के लिए अपने पुत्र अक्षकुमार को आज्ञा दी, दोनों में भयङ्कर युद्ध हुआ, अन्त में अक्षकुमार मारा गया ।[४]

अक्षवध के समाचार को सुनकर रावण ने इन्द्रजित् को हनुमान् को मारने के लिए भेजा । वह भी अपने पिता के चरणों की वन्दना कर आशीर्वाद लेकर अपने महल से निकला । उसके बाद हनुमान् जी ने इन्द्रजित् को कठोर वचन कहकर अपने पराक्रम को प्रकाशित करने के लिए असाधारण क्रम का सहारा लिया । उन दोनों ने इन्द्रजित् के रथ के घोड़ों को मार दिया । अनन्तर अन्य घोड़ों से युक्त रथ पर चढ़कर इन्द्रजित् ने दुर्जेय सैन्यव्यूह की रचना की ।[५]

---

१. भट्टिकाव्य, ८/१२७ – १३२

२. वही, ६/१ – १३

३. वही, ६/१४ – २३

४. वही, ६/२६ – २८

५. वही, ६/४६ – ७०

मेघनाद ने भी ब्रह्मपाश से हनुमान् जी को बाँधा। राक्षसों से बाँधे गए हनुमान् जी बन्धन मुक्ति के लिए समर्थ होते हुए भी ब्रह्माजी की मर्यादा से चालित नहीं हुए।[१]

ब्रह्मपाश से बद्ध हनुमान् जी को उन लोगों ने चमड़े की रस्सी और लौह श्रृङ्खला से बाँध दिया। ब्रह्मपाश के अतिरिक्त अन्य बन्धनों को नहीं सहने के कारण राक्षसों से किये गये हनुमान् जी के बन्धन को जानकर इन्द्रजित् ने विषाद का अनुभव किया, तत्पश्चात् उन्हें रावण के सम्मुख उपस्थित किया गया। उनके द्वारा किए गए उपवन–भङ्ग तथा राक्षसों के संहार रूप अपराध के बारे में सूचित किया गया। क्रोध से कुटिल मुख वाले रावण ने हनुमान् का शिर काटने का आदेश दिया। तब विभीषण ने दूत वध के अनौचित्य को प्रकट किया।[२]

रावण ने भी अशोकवाटिका तथा राक्षसों के विनाशक इस वानर की हत्या का समर्थन तथा अनेक प्रकार के वचन को प्रकाशित किया।[३]

तब हनुमान् जी ने कहा – "हे राक्षसराज! मेरे जैसे दूत में क्यों तुम्हें क्रोध हुआ है? अग्निहोत्रियों में झुकने वाले, किसी देश को जीतने की इच्छा न करने वाले, धार्मिकों में प्रसिद्ध तपस्वी राम में, कैसे तुम्हें क्रोध हुआ है? लोक की समृद्धि और अपने कल्याण के लिए भी परस्त्री को सौपनें से ही राम ओर सुग्रीव से मित्रता करो, तब प्रचुर वानर सेनापति तुम्हारे अनुचर हो जाएगें। इसलिए अपने कल्याण को देखकर भी सीताजी को छोड़ दो। विराध आदि विक्रान्त राक्षसों के वध से भी रामजी के स्वरूप को तुमने नहीं देखा?[४]

हनुमान् जी के ऐसे वचन सुनकर कोपाविष्ट निशाचरराज रावण ने कहा – "ओ वानर! लड़ने वाले राक्षसों का हनन करने वाले तथा अशोकवाटिका भङ्ग करने वाले तथा 'मैं दूत हूँ' ऐसा कहने वाले तेरा क्या दूत के समान आचरण है।"[५]

इसी प्रकार वह रामचन्द्र जी के दोषों को और बाली के वध में उत्कर्ष के अभाव का प्रतिपादन कर राक्षस–

---

१. भट्टिकाव्य, ६/७५ – ७६
२. वही, ६/१००
३. वही, ६/१०१ – १०८
४. वही, ६/११० – ११४
५. वही, ६/११६
६. वही, ६/१२० – १२३

धर्म का मर्म प्रकाशन तथा नरवानरों के साथ राक्षसों की मित्रता में अनौचित्य दिखलाकर चुप हो गया ।[६]

अखण्ड गर्व से उद्धत रावण के कथनों को भी अपने युक्ति–समूह से एक–एक कर हनुमान् जी ने खण्डित कर डाला । क्रोध से कर्कश होकर रावण ने भी हनुमान् जी की पूँछ जलाने का आदेश दिया ।[१]

दशम सर्ग :–

तत्पश्चात् पूँछ के जलने के पश्चात् हनुमान् जी आकाश की ओर उछल पड़े और लङ्का में विद्यमान अनेक राक्षसों के भवनों को अग्नि से जला डाला । वहाँ पर अग्नि के लपटों से बालक, वृद्ध, स्त्री और पुरुषादि लङ्कावासी अत्यन्त आकुल हुए । प्राण बचाने के लिए बहुत से पराक्रमी राक्षसों ने भी अधीरतापूर्वक पलायन की लघुता को स्वीकार किया ।[२]

इस प्रकार अपने पूँछ की अग्नि से लङ्का में त्राहि–त्राहि मचाकर पवनपुत्र ने सीता जी की वन्दना करने के लिए और राम जी के समीप जाने के लिए सीता जी से आदेश प्राप्त करने के लिए पुनः अशोकवनिका में गमन किया ।[३]

वहाँ पर पतिवियुक्ता अतिशय दुःखी सीता जी को देखकर उनसे रामचन्द्र जी के समीप माल्यवान् पर्वत पर प्रस्थान करने हेतु अपनी इच्छा का निवेदन किया और माता–सीता से आज्ञा पाकर आकाश मार्ग से चल दिए ।[४]

हनुमान् जी के महेन्द्र पर्वत पर आने से उनके लोकोत्तर वेग का अनुभव कर अन्य वानर "कहाँ से यह उपद्रव हो रहा है ? ऐसा विचार कर भय से बार–बार मोहित होने लगे । तब हनुमान् जी ने अपने वेग से वायु, सूर्य और गरुड़ को भी अभिभूत कर महेन्द्र पर्वत पर आकर कपिसमूहों को शोभित किया तथा स्वयं भी शोभित हुए । तब हनुमान् जी ने अतर्कित अपने आगमन से समस्त वानरों को हर्षित कर दिया ।[५]

उसके पश्चात् वे सब वानर 'मधुबन' नामक सुग्रीव के उपवन में यथेष्ट फल, जलपान, बिहार आदि से उपद्रव करने लगे, फिर हनुमान् जी ने तपस्वी के वेश से विभूषित लक्ष्मण से युक्त, विपत्ति विनाशक, लोक

---

१. भट्टिकाव्य, ६ / १२४ – १३७

२. वही, १० / १ – ६

३. वही, १० / ११

४. वही, १० / १५ – १८

५. वही, १० / १६ – २७

में अभिराम रामजी का दर्शन किया ।

सीता जी की 'शिरोमणि' देते हुए रामचन्द्र जी को प्रणाम किया । रामचन्द्र जी ने भी अपना अभीष्ट पूर्ण करने वाले पवन–पुत्र हनुमान् को 'चिन्तामणि' के तुल्य माना । तब कपिकुलभूषण हनुमान् जी ने सीता–दर्शन और लङ्काध्वसन प्रभृति समस्त वृत्तान्त सुनाया ।[१]

तदनन्तर राम ने हनुमान् जी की और लक्ष्मणं जी अङ्गद की पीठ पर आरूढ़ होकर लङ्का में अभियान करने के लिए वानरों सहित प्रस्थान किया और शीघ्रता से समुद्र के समीप महेन्द्र पर्वत पर पहुँच गए । वहाँ पर कामदेव से आलोडित चित्त वाले रामचन्द्र जी को देखकर शुभ लक्षण युक्त लक्ष्मण जी ने उन्हें समझाया । तब लक्ष्मण जी के कथन से प्रबोध पाकर निद्रा से अलसाए हुए रामचन्द्र जी ने रक्षार्थ वानरों को आदेश दिया तथा पल्लवों के बिछौने में लेटकर सो गए ।[२]

एकादश सर्ग :--

चन्द्रमा के अस्ताचल पर चले जाने के बाद उसके शत्रुतुल्य कमलों ने हास्य का तथा मित्रसदृश कुमुदों ने विषाद का अनुभव किया । अनन्तर भृगु के समान आकाश से गिरते हुए उपकारक उस चन्द्रमा के पीछे प्रणय करने वाली तारकाएँ भी शीघ्र गिर पड़ी –

"दूरं समारुह्य दिवः पतन्तं भृगोरिवेन्दुं विहितोपकारम् ।
बद्धाऽनुरागोऽनुपपात तूर्णं तारागणः सम्भृतशुभ्रकीर्तिः ।।"

रावणवध, ११/२

"वैसे विलासपूर्ण कटाक्ष और विलास–विभूषित वचन मेरे कहाँ हैं" ऐसा सोचकर उपमा न पाकर ही चन्द्रमा लंका की सुन्दरियों के जगने के समय में अस्ताचल को चले गये ।[३]

नवोढा वनिता पति से आलिङ्गन प्राप्त कर शिथिल शरीर वाली तथा पति के देखने पर भी लज्जा से नेत्र व्यवहार को अप्रकाशित करती हुई एवम् अभिमान न करती हुई भी प्रिय को अनुरञ्जित करने में मुख्य अनुरक्ता हो गयी ।[४]

---

१. भट्टिकाव्य, १०/३२ – ३६

२. वही, १०/४४ – ७५

३. वही, ११/४ – १२

४. वही, ११/१७

उषाकाल में युवती स्त्रियों ने राजभवनों में स्वर से राग का आलाप करके मङ्गलमय गान किया। सूर्य से दुरूत्तर कीचड़ के समान अन्धकार में विलीन अतएव अस्पष्ट आकृति से युक्त जगत् की किरण रूप रस्सी को फैलाते हुए की तरह उद्घृत किया। रतिक्रीड़ा के समय में अनभिज्ञ दन्तों से लब्ध क्षतो से लोक ने अत्यन्त राग से विरहयुक्त न होकर भी परस्पर में किए गए दन्तक्षत के अपराध की आशङ्का की। लङ्कावासी नागरिक अनुकूल वेश–धारण कर रावण के जागने के समय में राजमहल में जाने के लिए उपक्रम करने लगे। पर्वत के शिखर से निकलने वाले जलस्त्रोतों के समान शहर के भवनों से निसृत जन–समूह ने मार्ग रूप नदियों को पूरित कर राजा के अङ्गनरूप समुद्र को भर दिया।[1]

तब विविध प्रकार की सवारियों पर चढ़कर राक्षस वीर रावण के सेवार्थ चले गये। तत्पश्चात् गुणों की अपेक्षा नहीं करने वाले तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणो का प्रत्याख्यान करने वाले रावण ने अभ्युदय के लिए पापपूर्ण अभिप्राय वाले ब्रह्मराक्षसों की सर्वप्रथम पूजा की। तब नित्यकर्म का सम्पादन करने के बाद रावण ने लोक को डराने वाले, सज्जनों के द्रोही तथा मायावी राक्षसों के समूह से परिष्कृत सुवर्ण निर्मित सिंहासन पर बैठ गया।[2]

द्वादश सर्ग :–

तदनन्तर देवपूजन किए हुए विभीषण को उनकी माता ने कहा – " हे पुत्र! तुम देवताओं को आनन्द देते हुए रावण से की गई दुर्नीति का प्रतीकार करो। संग्राम में राम से रावण की हत्या होने के पहले ऐसे व्यवहार का परिहार करने के लिए यत्न का आचरण करो। जनस्थान के रहने वाले राक्षस सबसे सब मारे गये, लङ्गापुरी के योद्धा जीते गये, पेड़ उखाड़े गये, सभा भवन जलाये गये, ऐसे सङ्कट के समय रावण की रक्षा करने के लिए कोशिश करो।"[3]

तत्पश्चात् विभीषण रावण के भवन को चले गये। द्वारपालों से सम्मानित रावण के समीप लाये गये विभीषण ने अनुपम पराक्रम से युक्त और भयंकर शरीर वाले रावण को देखा।[4]

तदनन्तर लंकाऽधिराज रावण ने प्रस्तुत कार्य के निश्चय के लिए सभासद् राक्षसों को आरम्भ से उनकी प्रशंसा की।[5]

---

१. भट्टिकाव्य, ११/३८ – ३९

२. वही, ११/४१ – ४७

३. वही, १२/१ – ५

४. वही, १२/८ – १२

५. वही, १२/१३ – १५

अभिमानी प्रहस्त आदि अपने को वीर मानने वाले मन्त्रियों ने बाहु आदि अंगों का और धनु आदि शस्त्राऽस्त्रों का भी परामर्श किया ।[1]

विभीषण ने भाषण आरम्भ करके कहा – "हे प्रहस्त आदि राक्षसों ! राजा के युद्ध में अधिकृत आप लोगों ने अपनी योग्यता के सदृश ही कहा, परन्तु कार्य के विचार में बुद्धि का अधिकार है शौर्य का नहीं ।" –

"युद्धाय राज्ञा सुभृतैर्भवद्भिः संभावनायाः सदृशं यदुक्तम् ।
तत् प्राणपण्यैर्वचनीयमेव प्रज्ञा तु मन्त्रेऽधिकृता न शौर्यम् ।।"

रावणवध, १२/२२

इस प्रकार विभीषण ने नीति से रहित और शौर्य के प्रकाशन से भूषित प्रहस्त युक्तिसमूह को अपने युक्ति–बल से विध्वस्त किया और राजनीति से उद्भासित वचन समुदाय को प्रकाशित किया । इस तरह रावण के भाई विभीषण ने शत्रु राम के उत्कर्ष को और रावण के अपकर्ष को युक्ति–प्रकर्ष से अनेक बार प्रतिपादन कर बाली को मारने वाले सुग्रीव मित्र राम के साथ सन्धि करने से सम्पूर्ण राक्षस–कुल के संरक्षण का और मित्र के उपार्जन से अपने बल की वृद्धि का भी बहुधा प्रतिपादन किया ।[2]

विभीषण के संभाषण को सुनकर परम बुद्धिमान् मातामह माल्यवान् ने भी उसका समर्थन करने का प्रयत्न किया और राजा राम की महिमा का प्रकाशन भी किया ।[3]

कुम्भकर्ण ने भी नीतिमार्ग का ही प्रदर्शन कराया; रावण के लिए प्राणत्याग में भी कातरता का अभाव कहा और वाक्य के अवसान में फिर भी शयन को अङ्गीकार किया ।[4]

विभीषण ने पुनः रावण के लिए कर्त्तव्य का उपदेश किया । नितान्तदर्पयुक्त क्रूरचित्त रावण ने नीति वचन के श्रवण में असहनशील होते हुए उक्ति वैचित्य से अपने पराक्रम की प्रशसां कर विभीषण को पार्ष्णि (पैर के पिछले भाग) से प्रहार कर अवज्ञा की ।[5]

विभीषण ने भी चार मन्त्रियों के साथ आसन से उठकर रावण को कुछ वाक्य कहकर रामचन्द्र जी के चरणों

---

१. भट्टिकाव्य, १२/१६ – २०
२. वही, १२/२३ – ५१
३. वही, १२/५५ – ६०
४. वही, १२/६१ – ६८
५. वही, १२/६८ – ८०

को प्रणाम करने की इच्छा से सभाभवन को छोड़ा। अनन्तर राम ने हनुमान् के वचन से सचरित्र जानकर विभीषण को लङ्का के आधिपत्य में अभिषिक्त और सन्तुष्ट भी किया।[1]

त्रयोदश सर्ग :—

अनन्तर मन्द वायु से मन को हरण करने वाले वेला (समुद्र की तीर भूमि) के मूल में चन्द्रकिरण से शोभित रात्रि काम की उद्दीपक होने से रामचन्द्र जी को मूर्च्छित कर के बीत गई। प्रार्थना का अनादर करने वाले समुद्र से रामचन्द्र के धनुग्रहण करने पर पर्वत और सर्पों के साथ समस्त पृथ्वी संशय को प्राप्त हुई।[2]

इसी तरह समुद्र का जल भी सूख गया। तब वानर–समूह से क्षुब्ध गुफाओं से युक्त समुद्र ने मूर्ति धारण कर भय के साथ जल के तीर में आरूढ होकर बाहु से गङ्गा जी का अवलम्बन कर रामचन्द्र जी को प्रणाम कर उत्तर काल में हितयुक्त वचन कहा – "हे राम! संसार का कारणभूत आपकी महती माया है। हे नाथ! आप कोप छोड़ो, प्रलय काल के अग्नि के सदृश बाण का आप उपशमन करें। आप तीन लोक में सुन्दर अपने शरीर के आधार जलराशि का आश्रय लें। आपकी आज्ञा से वानर समूह पत्थरों से मेरे ऊपर सेतु की रचना करें, उसके अनन्तर बिना आयास के पार को प्राप्त हो।"[3]

तब रामचन्द्र जी का अभिप्राय जानकर वानरों की सेनाएँ सेतुनिर्माण के लिए पर्वतों को लाने के लिए तत्पर हुई। इस प्रकार से पर्वतसमूह का उत्पादन कर उसको महासागर में प्रविष्ट करा कर नीलादि वानरों ने सेतु निर्माण किया। सेतु देखकर सभी प्रसन्न हो गये। रामचन्द्र जी की प्रबल सेना ने अतिशय हर्ष से युक्त हो कर सुवेल नामक पर्वत पर आरोहण किया। इसी तरह रावण की सेना भी युद्ध के निमित्त उत्कण्ठित अनुपम बल से शोभित बन्दर अटारी आदि स्थानों के ऊपर चढ़ गए।[4]

चतुर्दश सर्ग :—

रामचन्द्र की सेना जब समुद्र पर पुल बनाकर उसके द्वारा लङ्का में पहुँच गयी, तब रावण ने गुप्तचरों द्वारा शत्रु–शक्ति का प्रकाश पा जाने पर माया द्वारा बनाये गये राम के कटे शिर से सीता को मूर्च्छित कर दिया तथा युद्ध के लिए सेना भेजी।

---

१. भट्टिकाव्य, १२/८१ – ८७

२. वही, १३/१ – ३

३. वही, १३/८ – १२

४. वही, १३/१८ – ५०

युद्धार्थ रावण की आज्ञा से सैनिकों ने अनेक प्रकार युद्ध–वाद्य–यन्त्र बजाएँ। रावण की चतुरगिणी सेना शब्द करने लगी। सैनिकों ने अपने–अपने अस्त्र–शस्त्रों को धारण कर लिया सैनिकों ने अपने स्त्रियों को आश्वासित करके प्रिय पुत्रों का चुम्बन लिया।[1]

समर में मरना वीर गति को प्राप्त करना है, इसलिए शुभ–शकुन हो रहा है –

दाहिने अङ्ग फड़क रहे हैं मृग दाहिने निकल रहे हैं।[2]

रावण की आज्ञानुसार प्रहस्त मन्त्री पूर्व दिश को, महापार्श्व और महोदर नामे के दो राक्षस दक्षिण दिशा, इन्द्रजित् पश्चिम दिशा तथा स्वयं रावण उत्तर दिशा को चला। विरूपाक्ष नामक सेनानी लङ्का के मध्य भाग में डट गया।

उधर रामचन्द्र जी ने भी लक्ष्मण सहित अस्त्रों को सजाया, तरकस बाँधा तथा सेना को आज्ञा दी। दोनों तरफ से युद्ध आरम्भ हो गया। सैनिक क्षतविक्षत होकर चिल्लाने लगे, विचलित हो उठे, पृथ्वी पर लोट पड़े खून फेंकने लगे तथा प्यास से व्याकुल हो उठे –

"ततस्तनुर्, जह्वलुर, मम्लुर्, जग्लुर्, लुलुठिते क्षताः।
भुमूर्च्छुरं, वक्मू रक्तं, ततृषुश् चोभये भटाः।।"
रावणवध, १४/३०

सम्पाति वानर ने प्रजङ्घ राक्षस के साथ, नल ने प्रतपन के साथ, हनुमान् ने जम्बुमाली के साथ, विभीषण ने मित्रघ्न के साथ, सुग्रीव ने प्रहास के साथ घमासान युद्ध किया।

मेघनाद के गदा–प्रहार को अङ्गद ने रोक लिया और रथ को चकनाचूर कर दिया। अङ्गद के इस वीरतापूर्वक कार्य से सभी ने उसकी प्रशंसा की। क्रोधित मेघनाद ने सर्पास्त्र का प्रयोग कर सभी सेना को सर्पों से ढक दिया। राम लक्ष्मण भी नाग पाश में बँध गए। सारी सेनायें विलाप करने लगी।[3]

मेघनाद अपने पिता रावण के पास चला गया। वहाँ पर युद्ध का सारा वृत्तान्त कहा। लङ्कानगरी में उत्सव होने लगे। रावण की आज्ञा से सीता को राम के दर्शन कराए गए, वे मूर्च्छित राम को देखकर विलाप

---

१. भट्टिकाव्य, १४/१ – १३

२. वही, १४/१४

३. वही, १४/३७ – ४८

करने लगी ।[1]

रामचन्द्र द्वारा गरुड़ का स्मरण करने पर सारे सर्प–समुद्र में घूस गये, सर्पबन्धन छुट गया । लक्ष्मण जी को होश आ गया । गरुड़ ने दोनों का स्पर्श किया । वे दोनों पीड़ा से मुक्त हो गए ।[2]

रावण को यह वृत्तान्त पता चला तो उसने अपने प्रिय धूम्राक्ष को युद्ध में भेजा । युद्ध पुनः शुरू हो गया । हनुमान् ने पर्वत से कुचलकर उसका वध कर दिया ।[3]

फिर अकम्पन की मृत्यु से रावण जैसे शोकाग्नि से जल उठा । उसने प्रहस्त से युद्ध के लिए तैयार होने को कहा । उसने वानरों की सेना को शस्त्रों के समूह से ढक दिया । तब नील ने पेड़ उठाकर फेका । वे दोनों वीर परस्पर लड़ने लगे । नील ने पर्वतखण्ड से प्रहस्त को मार डाला ।[4]

पञ्चदश सर्ग :–

प्रहस्त वध के बाद रावण ने कुम्भकर्ण को जगाने के लिए राक्षसों को भेजा । राक्षसों ने उसे जगाने के लिए विभिन्न प्रकार के वाद्ययन्त्रों तथा अस्त्रों का प्रयोग किया । कुम्भकर्ण उठकर दूसरे वस्त्र धारण कर रावण की सभा में उपस्थित हुआ । रावण ने उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।[5]

रावण ने उसे युद्धार्थ आज्ञा दी । तब कुम्भकर्ण ने रावण के कुत्सित कर्मों की नाना प्रकार से भर्त्सना की ।[6]

रावण की आज्ञा से वह युद्ध–भूमि में गया । उसने पूरे युद्ध स्थल में हाहाकार मचा दिया । सभी वानर उसके भय से भागने लगे । तब अङ्गद ने उनके उत्साह को बढ़ाया । विभीषण ने उसका परिचय देते हुए कहा – "इसने इन्द्र को जीता है और यह सूर्य से भी नहीं डरा था" –

---

१. भट्टिकाव्य, १४/५४ – ६०

२. वही, १४/६५ – ६६

३. वही, १४/८१

४. वही, १४/८६ – ११३

५. वही, १५/१ – १०

६. वही, १५/१३ – १६

"एष व्यजेष्ट देवेन्द्रं नाऽशङ्किष्ट विवस्वतः ।"

रावणवध ५/३६

कुम्भकर्ण ने वानर सेना को मथ दिया । वानरों को खाने लगा । सुग्रीव द्वारा फेकें गए वृक्ष को सह लिया । उसके द्वारा फेंकी गयी शक्ति को हनुमान् जी ने आकाश मार्ग में ही रोक लिया । उसने सुग्रीव पर भारी पर्वत फेंका जिससे वे मूर्च्छित हो गए ।[1]

तत्पश्चात् राम–लक्ष्मण दोनों ने ही कुम्भकर्ण पर नाना प्रकार के प्रहार किए । राम ने ऐन्द्रास्त्र से उसके हृदय को बेध दिया जिससे वह मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ।[2]

रावण कुम्भकर्ण वध का समाचार सुनकर बहुत रोया, भाई के गुणों का, उसके पराक्रम का कीर्तन किया, तब कुमारों ने रावण को आश्वासन देकर युद्ध करने की अपनी इच्छा प्रकट की । देवान्तक, अतिकाय, त्रिशिरा और प्रसिद्ध नरान्तक नामक चारों रावण–पुत्र युद्ध स्थल में गए ।[3]

नरान्तक अङ्गद के साथ युद्ध करने लगा । राक्षस ने प्रास नामक अस्त्र फेंका, अङ्गद ने उसके घोड़ो को मार डाला, मुक्कों से मारकर उसके प्राण हर लिए । रावण के सभी पुत्र अङ्गद पर टूट पड़े । तब नील और हनुमान् ने देवान्तक को मार डाला । हनुमान् ने त्रिशिरा का भी वध कर दिया ।[4]

इसके पश्चात् अतिकाय हजार घोड़े वाले रथ से रणभूमि में आया । उस महारथी के विषय में विभीषण ने रामचन्द्र जी से कहा – "इसने वज्र को रोक दिया था, तप से ब्रह्मा जी को सन्तुष्ट कर दिया, अर्थशास्त्र पढ़े हैं, यमराज के विक्रम को व्यर्थ किया है, देवराज के साथ युद्ध में सुशोभित हुआ है । इसको भय तो हुआ ही नहीं ।[5]

लक्ष्मण और अतिकाय में घमासान युद्ध हुआ । दोनों में घमासान युद्ध हुआ । तब लक्ष्मण ने दुर्जेय ब्रह्मास्त्र का स्मरण किया, उससे राक्षस के मस्तक को काट डाला ।[6]

---

१. भट्टिकाव्य, १५/४३ – ५५

२. वही, १५/६६

३. वही, १५/७३ – ७४

४. वही, १५/७७ – ८४

५. वही, १५/८७ – ८८

६. वही, १५/९० – ९६

तत्पश्चात् इन्द्रजित् मेघनाद युद्ध के लिए तत्पर हुआ । उसने रणार्थ ब्रह्माजी की खूब पूजा की । ब्रह्मास्त्र तथा जयशील रथ प्राप्त किया । कुपित हुए मेघनाद ने रात्रि के अन्त होते हुए ६७ करोड़ वानरों को मार डाला । राम–लक्ष्मण को मूर्च्छित कर दिया ।

तब हनुमान् जी को मृतसञ्जीवनी, सन्धानकरणी, विशल्यकरणी तथा दूसरी भी औषधियाँ लाने के लिए सर्वौषधिगिरी नामक पर्वत पर भेजा । हनुमान् जी औषधि को न पहचानने के कारण सारा पर्वत ही उठा लाए ।[१]

औषध के प्रयोग से कुछ जी उठे, कुछ की मूर्च्छा टूटी, इस प्रकार सभी चैतन्य हो उठे तथा पहले से अधिक पराक्रमी हो गए । राम–लक्ष्मण को भी हनुमान् जी ने प्रसन्न कर दिया । तत्पश्चात् कुम्भ, निकुम्भ नामक कुम्भकर्ण पुत्र युद्ध के लिए गए । अकम्पन तथा कम्पन नामक राक्षस अङ्गद द्वारा मारे गए । क्रुद्ध प्रजङ्घ ने भी अङ्गद पर प्रहार किया । उसे भी अङ्गद ने मार डाला ।

तत्पश्चात् लोहिताक्ष, कुम्भ, निकुम्भ इत्यादि भी मारे गये । रामचन्द्र जी की बुद्धि मानो सीता की प्राप्ति के समान आनन्द–बिहार करने लगी । राक्षसराज का शोक निरन्तर बढ़ने लगा ।[२]

षोडश सर्ग :–

प्रधान सेनाध्यक्षों के वध किए जाने पर राक्षसों का राजा रावण विलाप करते हुए कहने लगा "मैं इस राज्य का क्या करूँगा ? सीता को लेकर क्या करूँगा ? इस प्रकार अनेक प्रकार से विलाप करने लगा ।[३]

वह कुम्भकर्ण के वियोग में विलाप करते हुए कहता है – "सूर्य पृथ्वी पर गिरेगा, पृथ्वि ऊपर फेंक दी जाएगी, वायु काठ के समान तोड़ दिया जायगा, आकाश मुक्के से मारा जायगा, चन्द्रमा से आग बरसेगी, समुद्र सूख जायगा, जल जलायेगा, सूर्य से अन्धकार–समूह बरसेगा, कुम्भकर्ण रण–पुरुष से पराजित हो जायेगा । इन बातों की सम्भावना किसी ने भी नहीं की है ।"[४]

रावण कहता है कि राम सीता को फिर से प्राप्त कर लेंगे । इसलिए मैं इस सारे विनाश का मूलकारणभूत उसे मार डालूगाँ । मैं धन की इच्छा छोड़ दूगाँ, जीना भी नहीं चाहूँगा । बान्धवों से शून्य इस घरमें कौन रहना चाहेगा ।

---

१. भट्टिकाव्य, १५/१०४ – १०७

२. वही, १५/१२३

३. वही, १६/१ – १३

४. वही, १६/१६ – १८

बन्धु–बान्धवों तथा मित्रों से शून्य मेरी सम्पतियाँ हमारे लिए क्षत–क्षार के समान बड़ी विपत्ति हो जायेगी –

"याः सुहृत्सु विपन्नेषु मामुपैष्यन्ति संपदः ।
ताः किं मन्यु–क्षताऽऽभोगा न विपत्सु विपत्तयः ।।"

रावणवध, १६/२५

रावण को अब विभीषण का कथन ठीक लगने लगता है कि राम से सन्धि कर ले । उसे प्रहस्त के वाक्य का यथार्थ अर्थ भी विभीषण के अनुकूल कर रहा है । प्रहस्त ने भी विभीषण के सुभाषित को ही कहा था कि हम लोग युद्ध के लिए राजा द्वारा धन से पालित–पोषित होते हैं, अतः हमलोग कुछ नहीं कहेंगे । केवल युद्ध करेंगे । सन्धि करना उचित है, उसे तो विभीषण जैसे नीतिज्ञ ही कहेंगे । यही प्रहस्त का भी तात्पर्य था । यहाँ रावण विभीषण के सुभाषित के साथ प्रहस्त के वाक्य का समन्वय करता है ।[1]

रावण विभीषण पर किए गए अपने पाद–प्रहार को याद कर पश्चात्ताप कर रहा है ।

उसी क्षण मेघनाद आता है और कहता है कि – हे महाराज! आपको याद नहीं कि हम दोनों ने मिलकर इन्द्र से पातित देवलोक को जीत लिया था । महाराज को कुबेर सहित भग्न कर उसके रत्नों को लूट लिया था और इन नगरी में आ गए थे । मैं इन शत्रुओं को पीस डालता हूँ, जिससे आप कभी भी शोक नहीं करेंगे । आप पुनः अमरपुरी में आतङ्क फैला देंगे । इन्द्र भी आपके सम्मुख नतमस्तक हो जाएगा । मुनिलोग भयभीत हो जायेंगे । मैं प्रलयकाल के मेघसमूह के समान गम्भीर ध्वनि वाले रथ पर चढ़ूँगा । आज आप शत्रुओं को लहूलूहान देखेंगे ।[2]

सप्तदश सर्ग :–

दशाननात्मज मेघनाद के योद्धागण उपद्रवशान्ति के निमित्त मंगलाचरण करने के अनन्तर यथेष्ट भोजन करने के बाद रणहेतु सन्नद्ध हो गये । इन्द्रजित् भी विधाता और विप्रों की यथोचित्त अर्चना कर कवचादि धारण कर शस्त्रास्त्र और युद्धसामग्री से भूषित हो रथ पर चढ़कर युद्ध के लिए चल पड़ा ।

इन्द्रजित् द्वारा किए गए विनाश को देखकर रामानुज लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र छोड़ने की इच्छा की, निरपराध निशाचरों के अनिष्ट की आशङ्का से रामचन्द्र ने उन्हें रोका ।[3]

---

१. भट्टिकाव्य, १६/२६ – २७

२. वही, १६/३६ – ४२

३. वही, १७/१ – १६

इसी बीच मेघनाद आकाश में मायानिर्मित जानकी को चन्द्रहास तलवार से दो टुकड़े करता हुआ दिखायी पड़ा । तब हनुमान ने यह वृत्तान्त राम–लक्ष्मण को बताया । वे दोनों करूण क्रन्दन करने लगे ।[१]

इसी बीच विभीषण ने आकर यथार्थ वृत्तान्त से अवगत कराया । मेघनाद उन्हें भ्रम में डालकर निकुम्भिता नामक अग्निगृह को चला गया है । वहाँ वह हवन द्वारा वैश्वानर को प्रसन्न कर उनसे ब्रह्मशिर नामक अस्त्र और रथ प्राप्त करेगा । हवन के बाद वह अवध्य हो जाएगा । अतः राम ने हवन् में विघ्न के लिए बहुत से वानरों को भेजा । निकुम्भिता (अग्निगृह) के रक्षार्थ नियुक्त निशाचरों और वानरों में भयंकर युद्ध हुआ । निशाचरों को जीतकर विभीषण और लक्ष्मण भीतर प्रवेश कर गए । वहाँ पर मन्त्रोच्चारपूर्वक हवन करते हुए मेघनाद को युद्ध के लिए लक्ष्मण ने ललकारा । इससे कुपित मेघनाथ ने चाचा विभीषण की कुलदूषक आदि शब्दों से आलोचना की । इसके अनन्तर इन्द्रजित और लक्ष्मण का अत्यन्त भयोत्वादक संग्राम हुआ । कुछ ही क्षणों में लक्ष्मण जी ने मेघनाद की इहलीला समाप्त कर दी ।[२]

तब शाखामृगों के साथ–साथ सभी देवगण प्रसन्न हुए । रामचन्द्र जी ने सुमित्रानन्दन लक्ष्मण का आलिङ्गन कर उनके मस्तक को प्रेमपूर्वक सूघाँ । निशाचर दशानन व्याकुलता में वैदेही के विनाश का यत्न करने लगा । तब उसके शिष्टजनों ने 'यह गर्हित कर्म है' ऐसा कहते हुए सदुपदेशों द्वारा उसे शान्त किया ।[३]

तत्पश्चात् रावण भीषण संग्राम की तैयारी में लग गया । कवचादि से सुसज्जित होकर हाथी आदि सवारियों पर समारुढ़ हो राक्षसों ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया ।[४]

तत्पश्चात् जगत् प्रसिद्ध संग्राम प्रारम्भ हुआ । समस्त दिशाएँ धूल से व्याप्त हो गयी । भगवान् राम ने लोकातिशायी शौर्य का प्रदर्शन करते हुए शैल सदृश निशाचरों को मारकर भूमि को ढँक दिया । इससे प्रसन्न हो देवता और गन्धर्व राम का यशोगान करने लगे । तभी रावण रथ पर समारूढ़ हो, संग्राम के लिए उद्यत हुआ ।[५]

दोनों सेनाओं में भयङ्कर युद्ध हुआ । राम ने रावण द्वारा छोड़े गए बाणों का कुशलता से वारण किया । दशानन ने महाशक्ति के प्रयोग से लक्ष्मण जी की निष्प्राण–सा कर दिया । तब रामचन्द्र जी ने पवनतनय

---

१. भट्टिकाव्य, १७/२० – २४

२. वही, १७/२५ – ४६

३. वही, १७/४७ – ४०

४. वही, १७/५० – ५५

५. वही, १७/६० – ७५

हनुमान् द्वारा लाए गए औषधियों से लक्ष्मण को पुनरूज्जीवित किया ।[1]

इसके अनन्तर बन्धुपाश से विपन्न और अतिशय कोपाक्रान्त रावण ने राम के साथ भयानक युद्ध किया । 'रथ पर आरूढ दशवदन के साथ पदाति राम का युद्ध नितान्त असङ्गत है' ऐसा सोचकर सुराधिपति शुक्र ने स्यन्दन के साथ अपने सारथि मातलि को रामचन्द्र के पास भेजा । भगवान् राम भी इन्द्र द्वारा सम्प्रेषित स्यन्दन पर समारूढ होकर रावण के साथ युद्ध के लिए सन्नद्ध हुए ।[2]

तदनन्तर दशानन के विनाश के लिए विधाता ने जिस आयुध की रचना की थी, उसे इन्द्रसारथि ने भगवान् राम को संस्मरण कराया । तब राम से सम्प्रेरित उस अस्त्र ने राक्षसाधिपति रावण के प्राणों का अपहरण कर लिया । दशानन के भूमि पर पतित होते ही मर्कटसमूह अत्यन्त आनन्दित हुआ । देवगण राम का स्तुति–गान कर प्रशंसा करने लगे और रावणानुज विभीषण अपने भाई की मृत्यु से शोकसागर में निमग्न हो गए ।[3]

अष्टादश सर्ग :–

रावणवध से विभीषण शोक मग्न हो गया । वह उच्च स्वर से विलाप करने लगा । वह कहता है, "मैंने भविष्य में होने वाले इस परिणाम को पहले से ही देख लिया था, इसलिए सीता देने का हितकारी उपदेश आपको दिया था । तब आप क्रोध को रोक नहीं पाए ।"

वह कहता है – "घमण्ड के कारण जो लोग उचित करने वालों की सलाह नहीं मानते, उनको विपत्तियां घेर लेती है और सम्पत्तियाँ साथ छोड़ देती है । अधीनस्थ कर्मचारी तो लोभ के कारण भविष्य में अपथ्य और तत्काल प्रिय भी उपदेश कर देते हैं । मूर्खता के वशीभूत जो उन्हें सुनता है, उसे तो सम्पति प्राप्त नहीं हो सकती" –

भर्जान्ते विपदस् तूर्णमतिक्रामन्ति सम्पदः ।
तान् मदान् नाऽवतिष्ठन्ते ये मते न्यांयवादिनाम् ।।
अपथ्यमायतौ लोभादामनन्त्यनुजीविनः ।
प्रियं श्राृणोति यस् तेभ्यस् तमृच्छन्ति न सम्पदः ।।"

रावणवध, १८/४ – ५

---

१. भट्टिकाव्य, १७/६५

२. वही, १७/६७ – ६८

३. वही, १७/१०६ – ११२

"हित मनोहारि च दुर्लभ वचः" इसी सूक्ति को प्रकट करते हुए विभीषण कहते हैं – "जो कड़ुआ भी एवं हितकारी उपदेश को औषध के समान नित्य ही उपयोग में लाता है और उसके लिए विश्वासपात्रों की सेवा करता है, वह कभी दुःख नहीं पाता है।" [१]

अभ्युदय अर्थात् उन्नति के समय प्रायः सभी लोग अभिमानी हो जाते हैं। अपने हितकारी से प्रमाद करने लगते हैं एवम् अपश्य का सेवन करते हैं। प्रायः लोग गुणों से द्वेष करते हैं, किसी पर विश्वास नहीं करते। बड़ों से चिढ़ते हैं। इसी कारण रावण तीनों लोकों का स्वामी होते हुए भी भूमि पर सो रहा है। [२]

विभीषण रावण की पूर्वोक्त बातों को याद करते हुए कहता है – "आपने माल्यवान् के हितकारी उपदेश को अस्वीकार कर दिया था, मुझसे क्रुद्ध होकर पाद से प्रहार कर निकाल दिया था।" आज आपके मर जाने पर संसार की समस्त वस्तुएँ उलटी चल रही है। इन्द्र हविष्यान्न खाते हैं। वायु स्वेच्छा से बहता है तथा सूर्य भी स्वेच्छा से उगता है। यक्ष लोग धन के स्वामी बन बैठे हैं। वरूण पाश फैलाने लगा है। तपस्वी लोग तप कर रहे हैं। देवगण लङ्का के बाहर–भीतर बुरी निगाह से घूम रहे हैं। अपने सामर्थ्य को बढ़ा रहे हैं। विपत्ति में पड़े तुम्हारा उपहास कर रहे हैं। वायुदेव शान्त हो करके पुनः बह रहे हैं। इस प्रकार विभीषण नाना प्रकार से वचनों से विलाप करने लगा। [३]

संग्राम में राम द्वारा मारे गये रावण को सुनकर अन्तःपुर की रानियाँ तथा पुर के लोग अत्यन्त दुःखित होकर दौड़ने लगे। रानियाँ केशों को नोचने लगीं। अति–विह्वल होकर जोर–जोर से विलाप करने लगीं। स्वामी के उपकारों को याद करने लगीं। राम ने भी रावण के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहा – "जो दानियों को दान देता रहा है, जो शत्रुओं के लिए काल के समान था, जो देवों को यज्ञों द्वारा, पितरों को श्राद्धादि कृत्यों द्वारा तृप्त करता रहा है, संग्राम में कभी नहीं हारा है, ऐसे रावण के लिए तुम शोक क्यों कर रहे हो।" [४]

रामचन्द्र जी विभीषण को आश्वस्त करते हुए कहते हैं – "आप जैसे लोगों को संकट में भी मोहित नहीं होना चाहिए। सभी लोग आपके ऊपर अवलम्बित हैं। आप ही एकमात्र प्रधान होकर यदि विचलित होते हो तो सारा राज्यभार डूब जाएगा।" [५]

---

१. भट्टिकाव्य, १८/७

२. वही, १८/८ – १०

३. वही, १८/२२ – ३५

४. वही, १८/३८ – ४०

५. वही, १८/४१ – ४२

एकोनविंश सर्ग :–

श्रीराम के उपदेश के पश्चात् विभीषण शोकामुक्त होकर रामचन्द्र से बोले – हे राम ! "आप ठीक कहते हैं । अशोचनीय भी सहोदर के मरने पर असह्य शोक होता ही है, उसका वियोग मर्मभेदी होता है । हमलोग भी रावण के समान ही वीर गति को प्राप्त करें ।" [१]

विभीषण रामचन्द्र से अपनी मित्रता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं – "ऐसे भाई के नाश हो जाने पर वही जीवित रह सकता है, जिसके आपके समान मित्र समझाने वाला होगा, यदि आप मेरे समीप नहीं होते तो मुहूर्त भर के बाद ही मैं मर गया होता" –

"स एव धारयेत् प्राणानीदृशे बन्धु–विप्लवे ।
भवेदाश्र्वासको यस्य सुहृच्छक्तो भवादृशः ।।"
रावणवध, १६ / ४

तत्पश्चात् विभीषण ने रावण के दाह संस्कार हेतु उन मन्त्रियों को बुलाया जो उनके साथ रावणसभा से उठ आये थे । उन्हें ही लङ्का जाने की आज्ञा देते हुए कहा – "वहाँ से बहुमूल्य वस्त्रों को ले आना । अच्छे–अच्छे ध्वज सजा देना तथा अच्छी चन्दन की लकड़ी ले आना । रावण के अग्निहोत्र पात्र लाये जायँ । चिता जलाने के लिए आग लाई जाए । रावण के शव को स्नानादि रमणीय लेप तथा रत्नों से अलङ्कृत किया गया । सभी कृत्यों को करके अन्त्येष्टि के समीप रोते हुए विभीषण को नाना प्रकार के वचनों से सान्त्वना देने लगे ।" [२]

मन्त्रियों के समझाने पर विभीषण भाई की अग्नि–जल–क्रिया करने के लिए गए । सभी श्राद्धादि कृत्य करने पर राम ने भी राक्षसराज को उपदेश दिया तथा स्वर्णकलश से विभीषण के मस्तक पर जलाभिषेक करते हुए कहा – "मेरे द्वारा तुम लङ्का के रक्षणार्थ प्रमुख शासक नियुक्त किए गए हो ।" [३]

राज्याभिषेक के बाद उन्हें शासन–व्यवस्था की शिक्षा देते हुए रामचन्द्र जी कहते हैं – "हे लङ्केश ! तुम इन्द्र के समान आनन्दित रहो, वृद्धि को प्राप्त हो, रिपुओं का नाश करो, गुणियों में मान्य रहो, अपनी समुन्नति करो, शास्त्र ज्ञाता राजनीतिज्ञ विद्वान तुम्हारी सभा में रहें । देवों मुनियों द्वारा सेवित सुन्दर पुण्यशाली मार्ग में

---

१. भट्टिकाव्य, १९ / १ – ३
२. वही, १९ / १४ – २१
३. वही, १९ / २२ – २३

तुम्हारा प्रेम बना रहे । गुप्तचरों द्वारा शत्रुओं के कर्त्तव्य का ज्ञान करना ।"[1]

विशं सर्ग :—

विजय प्राप्त होने पर हनुमान् जी सीता के समीप आकर बोले – "हे वैदेहि ! भाग्य से आपकी विजय हो गयी है, तीनों लोकों का कन्टक मारा गया ।" –

"दिष्टया वर्धस्व वैदेहि ! हतस्त्रैलोक्यकण्टकः ।"

रावणवध, २०/१

तत्पश्चात् हनुमान् जी ने सीता जी से उन रक्षक राक्षसियों को मारने के लिए आज्ञा माँगी, किन्तु कोमलह्दया सीता जी ने कहा इन सेवकों का वध करने की बुद्धि मत करो । जिसके द्वारा यह दोष हुआ था वह तुच्छ तो मारा ही गया । अतः तुम राम जी से कहो – "वह शीघ्र ही सीताजी को यहाँ से ले जाएँ । तब हनुमान् जी ने ऐसा ही करूँगा" ऐसी प्रतिज्ञा करे चले गये ।[2]

राम द्वारा आज्ञा प्राप्त विभीषण ने सीता जी के समीप जाकर निवेदन किया – "हे जनकनन्दिनी ! शोक छोड़िये, पञ्चगव्यपान करे, स्नान करें, वस्त्र पहले, चन्दन कुङ्कुम लगावे, माला धारण करें, सोने की पालकी पर चढ़े तथा शत्रुओं के मनोरथ को चूर्ण करें । हे महारानी ! ये आपके स्वामी का आदेश है अङ्गों को विभूषित कर चलने की तैयारी करें । आप एक मुहुर्त के बाद पृथ्वी की स्वामिनी हो जाएँगी और अयोध्या के नागरिकों पर शासन करें ।"

तब सीता जी पति की आज्ञा से रेशमी वस्त्र से घूघँट करती हुई सवारी पर सवार हो गयीं । वह राम जी के समीप जाकर 'वियोग दुःख को याद करके विह्वल होती हुई, दुःखिनी आँसू भरे नेत्रों से रोने लगी ।[3]

तत्पश्चात् रावण के अङ्ग के स्पर्श करने के कारण राम के ह्रदय में सन्देह पैदा हो गया "अतः तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ चली जाओ" ऐसी आज्ञा दी ।

सीता जी ने रामचन्द्र से कहा – "हे राम ! आप स्त्री सामान्य के द्वारा उत्पन्न शङ्का को मेरे विषय में न करें । शत्रु द्वारा हर ली गयी पराधीन सीता के ऊपर मिथ्या आरोप से क्रूद्ध होकर आप लज्जित होइये, राक्षस ने तो केवल मेरा शरीर हरा था, मेरी चित्तवृत्ति तो सदैव आप में ही रहती थी ।

---

१. भट्टिकाव्य, १६/२४ – ३०

२. वही, २०/३ – ७

३. वही, २०/१० – २०

सीता जी ने वायुदेव, वरूणदेव, वसुन्धरा, सूर्य भगवान्, आकाश के समस्त देवगणों से अपनी सत्यता सिद्ध करने की प्रार्थना की ।[१]

उन्होंने लक्ष्मण जी को चिता रचने की आज्ञा दी । राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने वैसा ही किया तब उस अग्नि वेदी की प्रदक्षिणा कर सीता जी ने राम से कहा – "आपकी शङ्का पर मैं अग्नि में अपनी देह को हवन करती हूँ ।"

हे समिद्धतम ! अग्निदेव ! खुब धधकते हुए आपके पास यज्ञ में राजा की पवित्र आज्यधारा के समान मैं प्राप्त हूँ । मुझ दुष्टा को जला डाले या मित्र समझकर मेरी सुरक्षा करें । दोनों में आप ही प्रमाण हैं ।[२]

एकविंशं सर्ग :–

सीता जी ने अपने शरीर को अग्नि में समर्पित कर दिया । तब अग्निदेव ने सीता को उठाकर राम से कहने लगे – "हे कुकुत्स्थराजा के वंशज राम ! आपने अपनी सती साध्वी प्रिया के प्रति क्यों शङ्का की है ? यह निन्दित बात आपके लिए उचित नहीं ? यदि यह शुद्ध नहीं होती तो मैं इन्हें नहीं बचाता । सीता तो महती शुद्धा है । अनेक वर्षो तक इनके साथ रहते हुए आपने क्या इनके शील को नहीं देखा है ? यदि यह मान लिया जाए कि शील आभ्यतरवृत्ति वाला है, तो क्या इसकी चेष्टा को बह्याचारों को भी नहीं देखा ? यदि सीता अपने चरित्र से डिग गयी होती तो सूर्य भी पृथ्वी पर गिर गया होता ।[३]

अग्निदेव कहते हैं – "यह यदि परगृह में रहकर चरित्रभ्रष्ट हो गयी है, यह आपका मत इसके लिए कष्टकारी है तो हमारे लिये इस कारण आश्चर्यकारी है कि आप भी ऐसा मत रखते हैं ।[४]

सीता की पवित्रता सिद्ध करने के लिए स्वयं दशरथ जी, शिव जी, ब्रह्मा जी आते हैं ।[५]

ब्रह्मा जी अग्निदेव के बाद राम जी से कहते हैं कि यदि आपने यह नाटक नहीं किया होता तो सीता जी लोक में शुद्ध नहीं मानी गयी होती । अतः आपने ठीक ही किया । शिव जी ने भी राम से कहा – आप अपने

---

१. भट्टिकाव्य, २०/२६ – ३२

२. वही, २०/३७

३. वही, २१/१ – ७

४. वही, २१/८ – ९

५. वही, २१/१० – १२

को नारायण अज क्या नहीं जानते ? तभी तो ऐसा आपने किया है । यदि आप नारायण नहीं होते तो ऐसा कार्य कैसे करते ?[१]

तत्पश्चात् वहाँ इन्द्र देव प्रकट हुए । रामचन्द्र ने उन्हें प्रणाम किया । इन्द्र दर्शन के बाद मरे हुए सभी कपि इन्द्रदेव के वर से जीवित होकर पेड़ों पर कूदने लगे ।

इस सर्ग के अन्त में सुवेल पर्वत पर जिस पर श्री राम विराजमान थे, का वर्णन है ।[२]

द्वाविंशं सर्ग :–

तत्पश्चात् विजय के बाद सर्वप्रथम रामचन्द्र जी हनुमान् से कहते हैं कि कल तुम भरत से शासित अयोध्या जाओगे । वहाँ मार्ग में हेमाद्रि के ऊपरी भाग को जहाँ ज्योत्सना नाम की औषधि तथा कुमुद्वती खिली रहती है, देखोगे, सुन्दर मलयाचल, विन्ध्याचल तथा किष्किन्धा नगरी को भी देखोगे । तुम सुतीक्ष्ण, शरभङ्ग, अत्रिमुनि तथा भरद्वाज मुनि के आश्रमों तथा गंगा नदी को देखोगे ।[३]

तत्पश्चात् सरयू नदी के तट पर स्थित अयोध्या नगरी में जाओगे, माताएँ तुम्हें देखकर प्रसन्न होंगी । भरत को सन्तोष होगा । इस प्रकार की कथाओं से रात्रि बीताकर प्रातः काल पुष्पक विमान के द्वारा समुद्र पार कर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया । रामचन्द्र जी समुद्र पार बनाए अपने पुल को, महेन्द्र पर्वत, मलयाचल, विन्ध्यांचल, ऋष्यमूक पर्वत, दण्डकारण्य के साथ–साथ पम्पासर नामक झील भी अपनी प्रिया को दिखाते हुए चले ।[४]

उन्होंने सीता जी को भरत–समागम स्थल चित्रकूट पर्वत दिखाया । बाल्यकाल के क्रीड़ाक्षेत्र नगरोपवन को दिखाया ।[५]

रामचन्द्र जी १४ वर्ष के बाद अयोध्यापुरी प्रविष्ट हुए । उनके स्वागत में बाजे नगाड़े बजते हैं सभी माताओं के साथ विनम्र भरत जी उनके स्वागत के लिए पहुँचे । पुर प्रवेश के बाद सभी सामग्री जुटाकर प्रजापति

---

१. भट्टिकाव्य, २१/१३ – १७

२. वही, २१/२१ – २३

३. वही, २२/१ – १३

४. वही, २२/२४ – २५

५. वही, २२/२६,२७,२८

रामचन्द्र जी ने भरत को युवराज पद पर प्रतिष्ठित कर अश्वमेघ यज्ञ किया ।[१]

इस सर्ग के अन्तिम २–३ श्लोकों में कवि द्वारा इस काव्य–शास्त्र की प्रशंसा करते हुए कहा गया है – "शब्दार्थ की छता से तथा अलङ्कारों की विचित्रता से युक्त यह काव्य यदि खूब मनन कर लिया जाए तो सुसज्जित होने के कारण संग्राम में प्रयुक्त संहार करने का ज्ञाता जिस तरह ऐश्वरास्त्र को सावधानी से चलाकर विजय प्राप्त करता है, वैसे ही यह काव्यशास्त्र भी विवाद करने के इच्छुक या विवाद करने वाले दोनों को अवश्य विजय प्राप्त करता है ।[२]

यह काव्यशास्त्र व्याकरणाध्ययन की बुद्धि से पढ़ने वालों को तो दीपतुल्य है । अन्य शास्त्रों के अध्ययन में भी दीपक सा काम करेगा । व्याकरण छोड़कर केवल काव्य दृष्टि से पढ़ने वालों को तो अन्धों के हाथ से टटोले हुए वस्तुज्ञान के समान थोथा ऊपर का ही जान पड़ता है । जो व्याकरण तथा काव्य दोनों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है वही इसे पढ़े, मन्दबुद्धियों का प्रवेश निषिद्ध है –

"दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्द–लक्षण–चक्षुषाम् ।
हस्ताऽमर्ष इववाऽन्धानां भवेद् व्याकरणादृते ।।
व्याख्या–गम्यमिदं काव्यमुत्सवः सु–धियामलम् ।
हता दुर्–मेधसश्चाऽस्मिन् विद्वत्–प्रिय–तया–मया ।।"[३]

इस सर्ग के अन्तिम श्लोक में महाकवि भट्टि ने अपने आश्रयदाता को यह काव्य समर्पित करते हुए कहा है – "मैंने इस काव्यशास्त्र को श्रीधरसेन नरेन्द्र द्वारा पालित गुर्जर देश की प्रसिद्ध नगरी वलभी में लिखा है । अतः यही इसी राजा के लिए कीर्तिरूप होवे । क्योंकि राजा ही प्रजा का क्षेमकारी होता है । मैंने कर्म (अप्राप्त का प्राप्त) कर दिया है । अब इसका प्रचारादि कर्म द्वारा रक्षण–रूप क्षेम–कार्य राजा का ही कर्त्तव्य है । राजा भी भगवान् का अंश माना जाता है । अतः भगवान् रूप से मैं उन्हीं को यह अपनी कृति अर्पण करता हूँ । इस प्रकार निष्काम कर्म मार्ग की ओर कवि का सङ्केत है ।"[४]

❒

---

१. भट्टिकाव्य, २२/२६ – ३१

२. वही, २२/३२

३. वही, २२/३३ – ३४

४. वही, २२/३५

भक्तिकाव्य का काव्यगत–वैशिष्ट्य

भट्टिकाव्य का काव्यगत वैशिष्ट्य

महाकवि भट्टि मूलतः वैयाकरण हैं, तथापि उनका योगदान काव्यशास्त्र की दृष्टि से संस्कृत जगत् में कुछ अनूठा ही है । यहाँ हम उनके काव्यगत वैशिष्ट्य का अलंकार, रस, छन्द इत्यादि की दृष्टि से विवेचन करेंगे ।

भट्टिकाव्य में अलंकार–योजना :–

अलंकार का अर्थ :–

काव्य को हृदयाकर्षक एवं रमणीय बनाने वाले साधनों में से **अलंकार** अन्यतम साधन है । **"अलङ्करोति इति अलङ्कारः"** यह **अलंकार** शब्द की व्युत्पत्ति है । जिस प्रकार शरीर को विभूषित करने वाले **अर्थ** या **तत्त्व** का नाम अलङ्कार है, उसी प्रकार काव्य रूपी शरीर को विभूषित करने वाले तत्त्व का नाम **अलङ्कार** है । आचार्य मम्मट के अनुसार –

"उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ।।" [१]

अर्थात् जो धर्म **शब्द** और **अर्थ** के द्वारा इसमें विद्यमान अङ्गी रस को कभी–कभी उपकृत करते हैं, वे अनुप्रास, उपमा आदि हारादि के समान अलंकार कहे जाते हैं । अलंकार की जीवनी शक्ति है – चमत्कार एवं वैचित्र्य ।

इसीलिए अलंकार को **वैचित्र्य** के नाम से भी पुकारा जाता है – **'वैचित्र्यम् अलंकारः'** । यह **'चमत्कृति'** अथवा **'वैचित्र्य'** ही अलंकार का वर्चस्व है । आचार्य मम्मट के समान आचार्य विश्वनाथ ने भी अलंकार को **शब्द** और **अर्थ** की शोभा बढ़ाने वाला अस्थिर धर्म बतलाया है –

"शब्दार्थयोरस्थिरा धर्मा शोभातिशायिनः ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ।।" [२]

आनन्दवर्धन ने अलंकार शब्द का अत्यन्त व्यापक अर्थ लेते हुए वाणी के अनन्त विकल्पों को अलंकार माना है –

"अनन्ता हि वाग्विकल्पाः तत्प्रकाश एवम् चालंकाराः ।।"

काव्य में अलङ्कार–योजना का प्रयोजन :–

कवि अपने काव्य में **रमणीय शब्द** और **रमणीय अर्थ** की योजना इसलिए करता है कि जिससे काव्य

---

१. काव्यप्रकाश, मम्मट, अष्टम उल्लास, सू० ८७

२. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, १०/१

में रसों की कमनीय अभिव्यक्ति हो सके, क्योंकि उत्तम काव्य का परमार्थ रसादि ही माना गया है । ध्वनिकार ने कहा है कि –

"अयमेव हि महाकवेर्मुख्यो व्यापारो यद्रसादीनेव मुख्यतया ।
काव्यार्थीकृत्य तद्व्यक्त्यनुगुणत्वेन शब्दानामर्थानां चोपनिबन्धनम् ।।"

महाकवियों द्वारा प्रयुक्त अलंकार–योजना सदैव प्रतीयमान की प्रभा से आलोकित होती है । महाकवि अलंकार का प्रयोग केवल अपने **शब्द एवं अर्थ** को सजाने के लिए नहीं करते, अपितु उनकी अलंकार–योजना रस को बढ़ाने के लिए ही होती है । अलंकारों की औचित्यपूर्ण समरस–योजना काव्य को 'सत्काव्य' बना कर उसमें रमणीयता उत्पन्न करती है ।

महाकवि भट्टि का अलंकार ज्ञान पर्याप्त एवं स्तुत्य है । उन्होंने अपने काव्य में शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का मधुर सन्निवेश किया है । एक ओर कवि ने शब्दालंकार **यमक** के विविध रूपों का सफल प्रयोग कर अपनी काव्य निपुणता प्रदर्शित किया है, तो दूसरी ओर उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा के स्वाभाविक प्रयोग से काव्य–सौन्दर्य में वृद्धि की है । उनकी अलंकार–मण्डित कविता कभी काव्यगत रसध्वनि को तिरोहित नहीं करती, प्रत्युत उसे और भी निखार देती है ।

"वाच्यालंकारवर्गोऽयं व्यंग्यांशानुगमे सति ।
प्रायेणैव परां छायां बिभ्रल्लक्ष्ये निरीक्ष्यते ।।"

ध्वन्यालोक ३/३६

१. शब्दालंकार :–

शब्दालंकारों के प्रयोग में कवि ने विशेष प्रतिभा अर्जित की है । **यमक** कवि का सबसे प्रिय अलंकार है । महान् वैयाकरण भट्टि ने यमक के सामान्य प्रचलित रूपों के अतिरिक्त उसके अनेक भेद–प्रभेदों का अत्यन्त सफलतापूर्वक प्रयोग किया है । दशम सर्ग यमक के प्रयोगों से भरा हुआ है, कुल २० भेदों का कवि ने प्रयोग किया है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

१. युग्पाद यमक :– आचार्य मम्मट के अनुसार "जहाँ पर पृथक् अर्थो वाले शब्दों की उसी क्रम में आवृत्ति हो तो वहाँ यमक अलंकार होता है ।" –

"अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः ।
– यमकम् ।

१. काव्यप्रकाश, मम्मट, नवम उल्लास, सू० ११६

तथा युग्पाद यमक में किसी शब्द का प्रयोग दो पादों, चरणों मे होता है ।

"रणपण्डितोऽग्रयविबुधाऽरिपुरे
कलहं स राममहितः कृतवान् ।
ज्वलदग्नि रावणगृहं च बलात्
कलहंसराममहितः कृतवान् ।।" [1]

यहाँ पर **राममहितः** शब्द का प्रयोग दो पादों में किया गया है । एक **राममहितः** का अर्थ है – रामेण महितः अर्थात् राम से सत्कृत, पूजित । दूसरे **राममहितः** में **राम** शब्द का अर्थ रमण, क्रीडा तथा **अहित** का अर्थ – शत्रु है । इस प्रकार यह **युग्पाद यमक** का उदाहरण है ।

२. पादान्त यमक :– जहाँ पर यमक का प्रयोग पादों के अन्त में होता है वहाँ पर 'पादान्त यमक' होता है जैसे –

"निखिलाऽभवन् न सहसा सहसा
ज्वलनेन पूः प्रभवता भवता ।
वनिताजनेन वियता वियता
त्रिपुराऽऽपदं नगमिता गमिता ।।" [2]

यहाँ पर **सहसा, भवता, वियता** तथा **गमिता** इन शब्दों की आवृत्ति चारों पदों के अन्त में होने से यहाँ पर पादान्त यमक अलंकार है और प्रत्येक शब्द के अर्थ भी पृथक्–पृथक् हैं । जैसे – पहले **सहसा** का अर्थ – अतर्कित अर्थात् अचानक । दूसरे **सहसा** का अर्थ – हास्ययुक्ता अर्थात् आनन्द । पहले **प्रभवता** – वृद्धिं गच्छता अर्थात् बढ़ने वाली तथा दूसरी **प्रभवता** का अर्थ – विद्यमान । इसी प्रकार पहले **वियता** का अर्थ – नभसा अर्थात् अन्तरिक्ष से तथा दूसरी **वियता** का अर्थ इतस्ततो गच्छता अर्थात् भय के कारण इधर–उधर जाने वाली तथा पहले **गमिता** का अर्थ – प्रपिता अर्थात् प्राप्त करायी गयी और दूसरी **नगमिता** का अर्थ – नगं+इता अर्थात् त्रिकूट पर्वत पर स्थित ।

३. पादादि यमक :– यहाँ पर पादान्त यमक के विपरीत पादों के आदि में यमक अलंकार होने से **पादादि यमक** होता है –

"सरसां सरसां परिमुच्य तनुं

---

१. भट्टिकाव्य, १०/२

२. वही, १०/३

पततां पततां ककुभो बहुशः ।
सकलैः सकलैः परितः करुणै –
रुदितैरूदितैरिव एवं निचितम् ।।" [१]

उपर्युक्त श्लोक में चरणों अर्थात् पादों के आदि में **सरसां, पततां, सकलैः** तथा **रुदितैः** इन शब्दों की आवृत्ति होने से **पादादि यमक** का सुन्दर उदाहरण है । यहाँ भी प्रयुक्त सभी शब्द पृथक् अर्थों वाले हैं । देखिए–

१. **सरसां** – सरोवराणां अर्थात् तालाबों के
सरसां – आर्द्रा अर्थात् आर्द्र गीले

२. **पततां** – गच्छतां
पततां – पक्षिणाम् अर्थात् पक्षियों के

३. **सकलैः** – संपूर्णैः अर्थात् सम्पूर्ण
सकलैः – माधुर्यसंहितैः अर्थात् मधुर शब्दों से युक्त

४. **रुदितैः** – क्रन्दितैः अर्थात् करुणाजनक
रुदितैः – शब्दितैः अर्थात् शब्दो से ।

४. **पादमध्य यमक** :– पदों के मध्य में यमक होने से **पादमध्य यमक** अलंकार होता है । [२] –

"न च कांचन काञ्चनसद्मचिति
न कपिः शिखिना शिखिना समयौत् ।
न च न द्रवता द्रवता परितो
हिमहानकृता न कृता क्व च न ।।" [३]

यहाँ पर महाकवि भट्टि ने **कांचन, शिखिना, द्रवता** तथा **नकृता** इन शब्दों की क्रमवार आवृत्ति पदों के मध्य में की है अतः यहाँ पर **पादमध्य यमक** अलंकार है तथा प्रत्येक शब्द भिन्न अर्थ वाला है :–

---

१. भट्टिकाव्य, १०/४

२. पदानां मध्ये यमितत्वात्पादमध्ययमकाऽलंकारः ।

३. रावणवध, १०/५

१. **कांचन** – काचिदपि अर्थात् किसी भी

कांचन – सुवर्ण अर्थात् सोना

२. **शिखिना** – ज्वालावता अर्थात् ज्वाला वाले

शिखिना – अग्निना अर्थात् अग्नि से

३. **द्रवता** – विसर्पता अर्थात् फैलने वाले

द्रवता – द्रवत्वं अर्थात् द्रवीभाव

४. **नकृता** – न विहिता अर्थात् नहीं कर दिया

हिमहानकृता – तुषारऽपचयकर्त्ता अर्थात् बर्फ को हटाने वाले

५. **चक्रवाल यमक** :– इसका लक्षण इस प्रकार है –

"पादानामवसाने तु वाक्ये स्यात्तुल्यवर्णता ।
प्रतिपादं भवेद्यत्र चक्रवालं तदुच्यते ।।"
यथा – "अवसितं हसितं प्रसितं, मुदा
वलसितं हसितं स्मरभासितम् ।
न समदाः प्रमदा हतसंमदाः,
पुरहितं विहितं न समीहितम् ।।" [१]

यहाँ पर प्रत्येक वाक्य में पादों के अन्त में प्रयुक्त **सितं, मदा, हितं** इत्यादि की बारम्बार आवृत्ति होने से **चक्रवाल यमक** अलंकार है ।

६. **समुद्ग यमक** :–

"समिद्धशरणा दीप्ता देहे लङ्का मतेश्वरा ।
समिद्धशरणाऽऽदीप्ता देहेऽलङ्कामतेश्वरा ।।" [२]

---

१. भट्टिकाव्य, १०/६

२. वही, १०/७

प्रस्तुत श्लोक में प्रथम चरण की द्वितीय चरण में उसी क्रम में आवृत्ति होने से यहाँ पर **समुद्ग यमक** अलंकार है ।

७. **काञ्ची यमक** :–

"रसनाकारेण यमितत्वात्काञ्चीयमकाऽलंकारः ।"

यथा – "पिशिताशिनामनुदिशं स्फुटतां
स्फुटतां जगाम परिविह्वलता ।
ह्वलता जनेन बहुधा चरितं
चरितं महत्त्वरहितं महता ।।" [1]

यहाँ पर प्रथम चरण के अन्तिम शब्द (स्फुटतां) की आवृत्ति द्वितीय चरण के प्रारम्भ में हुई है । इसी प्रकार द्वितीय चरण के अन्तिम शब्द (ह्वलता) की आवृत्ति, तृतीय चरण के प्रारम्भ में तथा तृतीय चरण के अन्तिम शब्द चरितं की आवृत्ति, चतुर्थ चरण के प्रारम्भ में हुई है अतः प्रत्येक शब्द के अर्थ भिन्न–भिन्न है, अतः यह **काञ्ची यमक** अलंकार है ।

इसी अलंकार का एक और सुन्दर उदाहरण महाकवि भट्टि के **अलंकार कौशल** को प्रदर्शित करता है

"विलुलितपुष्परेणुकपिशं प्रशान्तकलिकापलाशकुसुमं
कुसुमनिपातविचित्रवसुधं सशब्दनिपतद्द्रुमोत्कशकुनम्
शकुननिनादनादिककुभं विलोलविपलायमानहरिणां
हरिणविलोचनाऽधिवसतिं बभज्ज पवनाऽऽत्मजो रिपुवनम् ।।" [2]

यहाँ पर भी **कुसुमं, शकुनं** तथा **हरिणां** इन अन्तिम शब्दों की आवृत्ति आरम्भ में की गई है । अतः यहाँ भी **काञ्ची यमक** अलंकार है ।

८. **यमकावली** :– यमक + अवली अर्थात् यमकों की पक्तियाँ, झाड़ियां । कवि जहाँ पर यमकों की झड़ियां लगा देता है, वहाँ **यमकावली अलंकार** होता है । [3]

---

१. भट्टिकाव्य, १०/८

२. वही, ८/१३२

३. "मालाऽऽकारेण यमकविन्यासात् यमकावलीति – अलंकारः ।"

यमक–सम्राट् भट्टि ने इस अलंकार का एक सुन्दर रूप निर्मित किया है –

"न गजा नगजा दयिता, दयिता
विगतं विगतं ललितं ललितम् ।
प्रमदा प्रमदाऽऽमहता महता –
मरणं मरणं समयात् समयात् ।।" [१]

आग से जलती हुई लंका का वर्णन है – "पर्वत में उत्पन्न होने वाले इन प्यारे हाथियों की रक्षा कोई भी नहीं कर रहा है । ये विशालकाय हाथी अग्नि में भस्म हो रहे हैं । पक्षियों का आनन्द–खेल अब नष्ट हो गया है । प्यारी वस्तुएँ पीड़ित दीख रही हैं । स्त्रियों का मद अब नष्ट हो गया है तथा वे आम (प्रमदा) रोग से पीड़ित हैं । बिना युद्ध के ही बड़े–बड़े योद्धाओं का मरण–काल आ पहुँचा है ।

पद्य का चमत्कार दर्शनीय है ।

९. अयुक्पाद यमक :– "जहाँ पर प्रथम पाद की आवृत्ति द्वितीय चरण में न होकर तृतीय चरण में होती है, वहाँ अयुक्पाद यमक अलंकार होता है ।" [२]

"न वानरैः पराक्रान्तां, महद्भिर्भीमविक्रमैः ।
न वा नरैः पराक्रान्तां, ददाह नगरीं कपिः ।।" [३]

उपर्युक्त श्लोक के प्रथम चरण की आवृत्ति तृतीय चरण में इसी क्रम से होने से **अयुक्पादयमक** अलंकार है ।

१०. पादाद्यन्त यमक :– पाद के **आदि** और **अन्त** दोनों में यमक प्रयुक्त होने पर **पादाद्यन्त यमक** अलंकार होता है । [४]

भट्टि काव्य में इसका उदाहरण देखिए –

"द्रुतं द्रुतं वह्निसमागतं गतं
महीमहीनद्युतिरोचितं चितम् ।

---

१. भट्टिकाव्य, १०/६

२. "अत्र प्रथमतृतीयपादयोर्यमितत्वात् अयुक्पादयमकम् ।"

३. भट्टिकाव्य, १०/१०

४. "पादस्यादावन्ते च यमितत्वात् पादाद्यन्तयमकाऽलंकार ।"

सम समन्तादपगोपुरं पुरं
परैः परैप्यनिराकृतं कृतम् ।।"

इस श्लोक में प्रत्येक पद के आदि में क्रमशः द्रुतं, मही, समं तथा परैः का व प्रत्येक पाद के अन्त में क्रमशः गतं, चितं, पुरं तथा कृतं की आवृत्ति हुई है । अतः यह **पादाद्यन्त यमक** का सुन्दर उदाहरण है ।

१२. मिथुन यमक :–

"पादद्वयस्य चक्रवाकमिथुनवदवस्थितत्वात् अत्र मिथुनयमकालङ्कार ।"

उदाहरण –

"नश्यन्ति ददर्श वृन्दानि कपीन्द्रः ।
हारीण्यबलानां हारीण्यबलानाम् ।।" [1]

उपर्युक्त श्लोक में **हारीण्यबलानां** इस पद का दो बार प्रयोग होने से **मिथुन यमक** अलंकार है ।

१३. वृन्त यमक :– "पुष्पफल के समान प्रत्येक पाद के मूल में स्थित होने से वृन्त यमक अलंकार है" [2] –

"नारीणामपनुनुदुर्न देहखेदान्
नाऽऽरीणाऽमलसलिलाहिरण्यवाप्यः ।
नाऽऽरीणामनलनपरीतपत्रपुष्पान्
नाऽरीणमभवदुपेत्य शर्म वृक्षान् ।।"

यहाँ पर **नारीणाम्** पद प्रत्येक पाद के मूल में स्थित अर्थात् दोहराया गया है । अतः यहाँ **वृन्त यमक** अलंकार है ।

१३. पुष्पयमक :– जिस प्रकार पुष्प वृन्त के ऊपर अवस्थित होता है उसी प्रकार पुष्प के समान प्रत्येक पाद के ऊपर अवस्थित रहने से **पुष्प यमक** अलंकार है –

"अथ लुलितपतत्रिमालं
रुग्णासनबाणकेशरतमालम् ।

---

१. भट्टिकाव्य, १०/१३

२. "अत्र प्रतिपदं पुष्पफलस्येव मूलेऽवस्थितत्वात् वृन्तयमकाऽलंकारः ।"

स वनं विविक्तमालं
सीतां द्रष्टुं जगामाऽलम् ।।"[१]

यहाँ पर **मालं** इसी एक शब्द की बारम्बार आवृत्ति है तथा प्रत्येक बार अर्थ भी भिन्न होने से **पुष्प यमक** अलंकार है ।

१४. आदिमध्य यमक :– जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि जहाँ पर **आदि** और **मध्य** में किसी शब्द की आवृत्ति हो वहाँ **आदिमध्य यमक** अलंकार होता है –

"पादानामादौ मध्ये च यमितत्वात् आदिमध्ययमकाऽलंकारः ।"

"धनगिरीन्द्रविलङ्घनशालिना
वनगता वनजद्युतिलोचना ।
जनमता ददृशे जनकाऽऽत्मजा
तरुमृगेण तरुस्थलशायिनी ।।"[२]

यहाँ और मध्य में धन, वन, जन, तरु शब्दों की आवृत्ति होने से **आदिमध्य यमक** अलंकार है ।

१५. द्विपथ यमक :– जहाँ पर दो पादों का **द्विपथेन** अर्थात् विपरीत मार्ग से आवृत्ति हो वहाँ पर **द्विपथ यमक** अलंकार होता है ।[३]

भट्टि ने इसका एक सुन्दर उदाहरण अपने महाकाव्य में प्रयुक्त किया है –

"कान्ता सहमाना दुःखं च्युतभूषा ।
रामस्य वियुक्ता कान्ता सहमाना ।।"[४]

यहाँ पर **कान्ता, सहमाना** इन दो पादों की विपरीत क्रम में आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ **द्विपथ यमक** अलंकार है ।

१६. मध्यान्त यमक :– मध्यान्त अर्थात् पाद के मध्य और अन्त में पदों की आवृत्ति होने से मध्यान्त यमक

---

१. भट्टिकाव्य, १० / १४
२. वही, १० / १५
३. "पादद्वयाऽतिक्रमाद्विपथेन (विमार्गेण) यमितत्वाद्विपथयमकाऽलंकारः ।"
४. भट्टिकाव्य, १० / १६

अलंकार होता है ।[1]

"मितमवददुदारं तां हनुमान् मुदाऽरं
रघुवृषभसकाशं यामि देवि! प्रकाशम् ।
तव विदितोविषादो दृष्टकृत्स्नाऽऽमिषादः
श्रियमनिशमवन्तं पर्वतं माल्यवन्तम् ।।"[2]

यहाँ भट्टि ने दारं, काशं, षादः तथा वन्तम् इत्यादि की पाद के मध्य व अन्त में आवृत्ति की है अतः यहाँ **मध्यान्त यमक** है ।

१७. **गर्भ यमक** :– जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है कि जो यमक पादों के गर्भ में स्थित हो अर्थात् दो पादों के मध्य में पादों की आवृत्ति होने पर **गर्भ यमक** अलंकार होता है ।[3]

भट्टि काव्य से इसका उदाहरण द्रष्टव्य है –

"उदपतद्वियदप्रगमः परैरुचितमुन्नतिमत्पृथुसत्त्ववत् ।
रुचितमुन्नतिमत्पृथुसत्त्ववत्प्रतिविधाय वपुर्भयदं द्विषाम ।।"[4]

प्रस्तुत श्लोक में **परैरुचितमुन्नतिमत्पृथुसत्ववत्** इस पाद की आवृत्ति दो पादों के मध्य में की गई है । अतः यहाँ **गर्भ यमक** अलंकार है ।

१८. **सर्व यमक** :–

"अत्र चतुर्णामपि पदानां सदृशत्वात् सर्वयमकाऽलंकारः ।"

अर्थात् चारों पादों में सदृशता (समानता) हो वहाँ पर **सर्वयमक** अलंकार होता है, इसका सुन्दर उदाहरण भट्टिकाव्य में दर्शनीय है –

"बभौ मरुत्वान् विकृतः समुद्रो,
बभौ मरुत्वान् विकृतः समुद्रः ।

---

१. "पादस्य मध्ये अन्ते च यमितत्वात् मध्यान्तमयमकाऽलंकारः ।"

२. भट्टिकाव्य, १०/१७

३. "द्वदोः पादयोर्मध्ये पापद्वयस्य यमितत्वात् गर्भयमकाऽलंकारः ।"

४. भट्टिकाव्य, १०/१८

बभौ मरुत्वान् विकृतः समुद्रो,
बभौ मरुत्वान् विकृतः समुद्रः ।।"

इस श्लोक में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द के अर्थ पृथक्–पृथक् है –

१. **विकृतः** अर्थात् वनभङ्गादिविविध क्रिया करने वाले **समुद्र** अर्थात् मुद्रा सहित सीताजी के अभिज्ञान चूड़ामणि को लाने वाले **वायुपुत्र** (मरुत्वान्) **बभौ** सुशोभित हुए ।

२. **विकृतः** अर्थात् विकारयुक्त रावण के पराजय से समुद्रा अर्थात् अपसराओं सहित **मारुत्वान्** देवराज इन्द्र सुशोभित हुए ।

३. **विकृत** अर्थात् उल्लंघित मर्यादा वाले अर्थात् हनुमान् जी के उछलने से **वायु गति** से युक्त **समुद्र** सुशोभित हुए ।

४. **विकृतः** अर्थात् मन्दगति वाले **समुद्रः** = सः + **मुद्रः** अर्थात् सः = प्रसिद्ध, मुद्राः । हर्ष देने वाले **मरुत्वान्** प्राणादि वायु के अधिपति वायुदेव सुशोभित हुए ।

१६. महायमक :–

"अभियाता वरं तुङ्गं भूभृत्तं रुचिरं पुरः ।
कर्कशं प्रथितं धाम ससत्त्वं पुष्करेक्षणम् ।।" [1]

अभियाऽताऽऽवरं तुङ्ग भूभृतं रुचिरं पुरः ।
कर्कशं प्रस्थितं धाम ससत्वं पुष्करेक्षणम् ।।" [2]

'अत्र पूर्वोतर श्लोकद्वयस्य एकरुपेण यमितत्वान्महायमकाऽलंकारः' अर्थात् यहाँ पर २०वां श्लोक, २१वें श्लोक के रूप में ज्यों का त्यों आवृत्त हुआ है । इसलिए यह श्लोकावृत्तिरूप **महायमक** का उदाहरण है । इन दोनों श्लोकों का अर्थ इस प्रकार है –

१. "हनुमान् जी श्रेष्ठ महाकुल में उत्पन्न, कठोर वक्षः स्थल वाले, प्रसिद्ध वर्ण, आश्रम और धर्मो के स्थान, बलशाली या सत्त्वगुणों से पूर्ण, कमल सदृश नेत्रों वाले राम के सम्मुख जायेंगे ।"

---

१. भट्टिकाव्य, १०/२०

२. वही, १०/२१

२. "लङ्का से महेन्द्र पर्वत को जाने वाले हनुमान् जी ने वायु अथवा सूर्य को रोकने वाले अतएव सुन्दर, कठोर तथा प्राणियुक्त तेज को आकाश में कुछ समय तंक फैलाया ।"

२०. आद्यन्त यमक :–

"श्लोकस्यादरवन्ते च यमितत्वात् श्लोकाद्यन्तयमकम् ।।"

अर्थात् श्लोक के आदि और अन्त में पदों की आवृत्ति होने से आद्यन्त यमक अलंकार होता है –

"चित्रं चित्रमिवाऽऽयातो विचित्रं तस्य भूभृतम् ।
हरयो वेगमासाद्य संत्रस्ता मुमुहुर्मुहुः ।।" [१]

उपर्युक्त श्लोक में कविवर भट्टि ने आदि में **चित्रं** तथा श्लोक के अन्त में **मुहुः** इस शब्द की आवृत्ति की है, इसलिए यहाँ **आद्यन्त** या **आद्यन्तिक यमक** अलंकार हैं ।

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य के दशम सर्ग में यमक के अनेकानेक भेद प्रभेदो को प्रयुक्त करते हुए अपने अलंकार–वैदुष्य का परिचय दिया है ।

२. अनुप्रास अलंकार :–

अनुप्रास शब्दालंकारों में सबसे प्रसिद्ध अलंकार है । आचार्य भट्टि के अनुप्रासों की बानगी लिजिए –

"निशातुषारैर्नयनाऽम्बुकल्पैः पत्राऽन्तपर्यागलदच्छबिन्दुः ।
उपारुरोदेव नदत्पतङ्गः कुमुद्वतीं तीरतरुर्दिनादौ ।।" [२]

"वर्णसाम्यमनुप्रासः" [३] के अनुसार यहाँ पर भी कवि ने **त, प, द, र, न** इत्यादि वर्णों का एक से अधिक बार प्रयोग किया है अतः यह अनुप्रास का सुन्दर उदाहरण है ।

इसी प्रकार तेरहवें सर्ग का एक श्लोक द्रष्टव्य है । जहाँ पर कवि ने अनुप्रास का सुन्दर प्रयोग किया है–

"चारुसमीरणरमणे हरिकलङ्ककिरणावलीसविलासा ।
आबद्धराममोहा वेलामूले विभावरी परिहीणा ।।" [४]

---

१. भट्टिकाव्य, १०/२२

२. वही, २/४

३. काव्यप्रकाश, नवम उल्लासः, सू० १०३, पृ० ४०४

४. भट्टिकाव्य, १३/१

प्रस्तुत श्लोक में र, म, ण, क, ल, व, ह, का एक से अधिक प्रयोग होने से अनुप्रास अलंकार है ।

अनुप्रास के एक भेद **वृत्यनुप्रास** का उदाहरण –

"अथ स वल्कदुकूलकुथाऽऽदिभिः
परिगतो ज्वलदुद्धतबालधिः ।
उदपतद् दिवमाकुललोचनै –
र्नृरिपुभिः सभयैरभिवीक्षितः ।।" १

उपर्युक्त श्लोक में प्रथम चरण में लकार की, द्वितीय चरण में लकार, धकार की, तृतीय चरण में लकार तथा चतुर्थ चरण में रेफ तथा भकार की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से **वृत्यनुप्रास** है । जिसका लक्षण है –

"एकस्य अपिशब्दादनेकस्य व्यञ्जनस्य ।
द्विर्बहुकृत्वो वा सादृश्यं वृत्यनुप्रासः ।।" २

३. अर्थालंकार :–

१. **रूपक** :– रूपक के पांच रूपों का प्रयोग भट्टि ने अपने काव्यग्रन्थ में किया है –

(क) परम्परित रूपक :–

"यत्र कस्यचिदारोपः परारोपकारणम् तत्परम्परितम् ।

"तान् प्रत्यवादीदथ राघवोऽपि 'अथेप्सितं प्रस्तुतकर्म धर्म्यम् ।
तपोमरुद्भिर्भवतां शराऽग्निः संधुक्ष्यतां नोऽरिसमिन्धनेषु ।।" ३

अर्थात् रामचन्द्र जी ऋषियों से कहते हैं – "आप लोग धार्मिक कार्य को प्रारम्भ करें, आपकी तपस्या रूपी वायु से हमारी बाण रूपी अग्नि, शत्रु रूपी इन्धन में अच्छी तरह प्रज्ज्वलित होवे ।"

यहाँ पर तप पर वायु का, बाण पर अग्नि का व शत्रु पर इन्धन का आरोप है जो दूसरे के आरोप का कारण है अतः **परम्परित रूपक** है ।

---

१. भट्टिकाव्य, १०/१
२. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, नवम उल्लास, सू० १०६,
३. भट्टिकाव्य, २/२८

"अक्षारिषुः शराम्भांसि तस्मिन् रक्षः पयोधराः ।
न चाऽह्वालीन्न चाव्राजीत त्रासं कपिमहीधरः ।।" [१]

राक्षस रूपी मेघों ने हनुमान् जी पर बाण रूपी जल की वृष्टि की, फिर भी वानर रूपी पर्वत हनुमान् जी विचलित नहीं हुए ।

यहाँ पर रावण पर मेघों का, बाण पर जल का तथा वानर पर पर्वत का आरोप होने से **रूपक अलंकार** है ।

परम्परित रूपक का एक और उदाहरण देखिए –

"व्रणकन्दरलीनशस्त्रसर्पः पृथुवक्षःस्थलकर्कशोरुभितिः ।
च्युतशोणितबद्धधातुरागः शुशुभे वानरभूधरस्तदाऽसौ ।।" [२]

प्रस्तुत श्लोक में प्राण पर गुफा का; शस्त्र पर सर्प का, वक्षः स्थल पर कठोर दीवार का आरोप है और वानर (हनुमान्) पर पर्वत का आरोप है जो **परम्परित रूपक** को व्यक्त कर रहा है ।

(ख) कमलक रूपक :–

"चलपिङ्गकेशरहिरण्यलताः स्फुटनेत्रपङ्क्तिमणिसंहतयः ।
कलधौतसानव इवाऽथ गिरेः कपयो बभुः पवनजाऽऽगमने ।।" [३]

अर्थात् हनुमान् जी के आगमन पर वानर लोग चञ्चल पीतजटारूप सुवर्णलताओं से युक्त और उज्ज्वल नेत्रपंक्ति रूप मणिसमूहों से सम्पन्न होते हुए पर्वत की सुवर्ण चोटियों के सदृश शोभित हुए ।

यहाँ पीतजटाओं में सुवर्णलताओं का, नेत्रपंक्ति में मणिसमूह का आरोप किये जाने से रूपक है, किन्तु बाद में सुवर्ण चोटियों के सदृश शोभा का वर्णन होने से **कमलक रूपक** की योजना देखी जाती है । जयमंगल ने इसे **'विशिष्टोपमायुक्तरूपक''** कहा है ।

(ग) खण्ड रूपक :–

"कपितोयनिधीन् प्लवङ्गमेन्दुर्मदयित्वा मधुरेण दर्शनेन ।
वचनाऽमृतदीधितीर्वितन्वन्नकृताऽऽनन्दपरीतनेत्रवारीन् ।।" [४]

---

१. भट्टिकाव्य, ६/८

२. वही, १०/२६

३. भट्टिकाव्य, १०/२७

४. वही, १०/२८

वानररूप (हनुमान् जी) ने अङ्गदादि वानर रूप समुद्रों को मनोहर दर्शन से प्रसन्न कर, वचन रूप अमृतमय किरणों को फैलाते हुए, इन वानरों को आनन्दाश्रुओं से पूर्ण नेत्रों वाला बनाया –

"आनन्दपरीतनेत्रवारीन्" अर्थात् आनन्दाश्रु से पूर्ण नेत्र से युक्त अङ्गदादि वानरों को बनाया। इस वर्णन से यहाँ खण्डरूपक की स्थिति देखी जाती है। मल्लिनाथ ने इसमें **अतिशयोक्ति** और **रूपक** का संकर माना है।

(घ) अर्द्ध रूपक :–

"परखेदितविन्ध्यवीरुधः
परिपीताऽमलनिर्झराऽम्भसः।
दुधुवुर्मधुकाननं ततः
कपिनागा मुदिताऽङ्गदाऽज्ञया॥"

अनन्तर प्रसन्न अंगद की आज्ञा से विन्ध्यपर्वत की फैलनेवाली लताओं को मर्दित करने वाले और निर्मल झरने के जल को पीने वाले हाथी रूप वानरों ने सुग्रीव के मधुबन को कम्पित किया।

(ङ) ललाम रूपक :–

"विटपिमृगविषादध्वान्तनुद्वानराऽर्कः
प्रियवचनमयूखैर्बोधिताऽर्थारविन्दः।
उदयगिरिमिवाद्रिं सम्प्रमुच्याऽभ्यगात् स्वं
नृपहृदयगुहास्थं ध्नन् प्रमोहाऽन्धकारम्॥"[1]

(सीता अन्वेषण रूप) वानरों के विषाद रूप अन्धकार को हटाने वाले, प्रियवचन रूप किरणों से अर्थ रूप कमल को विकसित करने वाले और राजा राम के हृदय रूप गुफा में स्थित, विषादरूप अन्धकार को नष्ट करने वाले, सूर्य के समान हनुमान जी ने उदयपर्वत के सदृश महेन्द्रपर्वत को छोड़कर आकाश की ओर गमन किया।

यहाँ सूर्य सदृश हनुमान् के आकाशगमन में रूपक किया गया है। जैसे – वानरों के विषाद् में अन्धकार, प्रियवचनों (हनुमान्) में किरण, राम हृदय में गुफा का सदृश वर्णित कर, पुनः उसे सूर्य तुल्य घटित करने के कारण 'ललाम रूपक' सिद्ध हुआ है।

१. भट्टिकाव्य, १०/३०

२. उपमा :—

उपमा अलंकार के प्रचलित सामान्य रूपों के अतिरिक्त उसके अनेक रूपों का भी भट्टि ने सफल प्रदर्शन प्रस्तुत किया है ।

प्रथम सर्ग में अयोध्या नगरी की तुलना भट्टि सुमेरुपर्वत के शिखर से करते हुए कहते हैं –

"स्त्रीभियुतान्यप्सरसामिवौधैर्मेरोः
शिरांसीव गृहाणि यस्याम् ।।"[१]

इसी प्रकार महाकवि ने दशरथ की तीनों रानियों को तीनों वेदों के सदृश तथा दशरथ को विद्वान् के सदृश बताया है –

"धर्म्यासु कामाऽर्थयशस्करीषु मतासु लोकेऽधिगतासु काले ।
विद्यासु विद्वानिव सोऽभिरेमे पत्नीषु राजा तिसृषूत्तमासु ।।"[२]

द्वितीय सर्ग में शरद् ऋतु–वर्णन के प्रसंग में रक्तकमल का वर्णन देखिए –

"तरङ्गसङ्गाच्चपलैः पलाशैर्ज्वालाश्रियं
साऽतिशयां दधन्ति ।
सधूमदीप्ताऽग्निरुचीनि
रेजुस्ताम्रोत्पलान्याकुलषट्पदानि ।।"[३]

शूर्पणखा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने प्रतिपदा चन्द्रमा से उसकी उपमा प्रस्तुत की है –

"दधानां बलिभं मध्यं कर्णजाहविलोचना ।
वाक्त्वचेनाऽतिसर्वेण चन्द्रलेखेव पक्षतौ ।।"[४]

सुग्रीव ने वानरों को रामचन्द्र जी की अगूँठी देकर सीता–अन्वेषण के लिए उसी प्रकार भेजा जिस प्रकार बनिया तुलासूत्र को लेकर व्यापार के लिए जाता है –

---

१. भट्टिकाव्य, १/७

२. वही, १/६

३. वही, २/२

४. वही, ४/१६

"वणिक् प्रग्राहवान् यद्वत् काले चरति सिद्धये ।
देशाऽपेक्षास्तथा यूयं याताऽऽदायाऽङ्गुलीयकम् ।।" [१]

कवि ने हनुमान् जी की गर्जना की तुलना **मेघ** से तथा रावण के सैनिकों के गर्जना की तुलना बिजली युक्त **बादल** से की है –

सैनिकों के गर्जना की तुलना बिजली युक्त बादल से देखिए –

"दध्वान मेघवद् भीममादाय परिघं कपिः ।
नेदुर्दीप्तायुधास्तेऽपि तडित्वन्त इवाऽऽबुदाः ।।" [२]

लक्ष्मण की तुलना **नट** से तथा राम की तुलना **नारायण** से की है देखिए –

"रघुतनयमगात्तपोवनस्थं
विधृतजटाऽजिनवल्कलं हनुमान् ।
परमिव पुरुषं नरेण युक्तं
समशमवेशसमाधिनाऽनुजेन ।।" [३]

दशम सर्ग के ३२ वें श्लोक में रामचन्द्र जी बादल में छिपे हुए चन्द्रमा के सदृश प्रतीत हो रहे हैं –

"तनुकपिलघनस्थितं यथेन्दुं"

उपमा के कुछ अप्रचलित भेदों का भट्टि काव्य में प्रयोग द्रष्टव्य है –

"रुचिरोन्नतरत्नगौरवः परिपूर्णाऽमृतरश्मिमण्डलः ।
समदृश्यत जीविताऽऽशया सह रामेण वधुशिरोमणिः ।।" [४]

अर्थात् रामचन्द्र जी ने सुन्दर और उन्नत रत्न के महत्त्व से सम्पन्न, पूर्ण चन्द्रमा के सदृश मण्डल से युक्त सीता जी द्वारा भेजी गयी उस चूड़ामणि को जीवन की आशा के साथ देखा ।

यहाँ पर रामचन्द्र जी ने सीता जी द्वारा भेजी गयी चूड़ामणि को जीवन की आशा के साथ देखा । इसमें **सह** शब्द से उपमा व्यक्त है, अतः **सहोपमा अलंकार** है ।

---

१. भट्टिकाव्य ७/४६
२. वही ६/५
३. वही १०/३१
४. वही १०/३३

३. तद्धितोपमा :—

"अवसन्नरुचिं वनाऽऽगतं तमनाऽऽमृष्टरजोगविधूसरम् ।
समपश्यदथेतमैथिलीं दधतं गौरवमात्रमात्मवत् ।।" [१]

अर्थात् रामचन्द्र जी ने मन्दकान्तिवाले, अशोकवनिका से लाये गये, मार्जन रहित, धूलि से धूसरित, सीता से रहित अतएव मणित्व रूप से केवल गौरव के धारण करने वाले उस चूड़ामणि को अपने समान देखा ।

यहाँ पर **आत्मवत्** इस तद्धित प्रत्यय में उपमा अभिव्यञ्जित हो रही है । अतः **तद्धितोपमा अलंकार** है ।

४. लुप्तोपमा :—

जहाँ पर उपमेय, उपमान, साधारण धर्म तथा वाचक शब्द इन चारों में से एक या दो या तीन का लोप हो वहाँ पर **लुप्तोपमा अलंकार** होता है । [२]

भट्टि काव्य में इसका उदाहरण देखिए —

"सामर्थ्यसंपादितवाञ्छिताऽर्थ —
श्चिन्तामणिः स्यान्न कथं हनूमान् ।
सलक्ष्मणो भूमिपतिस्तदानीं
शाखामृगाऽनीकपतिश्च मेने ।।" [३]

उस चूड़ामणि की प्राप्ति के समय में लक्ष्मण के साथ राजा राम और वानरराज सुग्रीव ने शक्ति से अभीष्ट प्रयोजन का सम्पादन करने वाले हनुमान् जी चिन्तामणि (तुल्य) कैसे न होंगे ? ऐसा विचार किया ।

यहाँ पर **चिन्तामणि** से तुलना करने पर वाचक शब्द **इव** का अभाव होने से **लुप्तोपमा अलंकार** है ।

---

१. भट्टिकाव्य १०/३४

२. एकस्य द्वयास्त्रयाणां वा लोपे लुप्ता ।
— काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट सू० १२५

३. भट्टिकाव्य १०/३५

५. समोपमा :—

"युष्मानचेतन् क्षयवायुकल्पान्
सीतास्फुलिग्ङं परिगृह्य जाल्मः ।
लङ्कावनं सिंहसमोऽधिशेते
मर्तुं द्विषन्नित्यवदद्धन्नूमान् ।।" [1]

यहाँ पर कविवर भट्टि ने हनुमान् जी की तुलना सिंह से करते हुए सम शब्द का प्रयोग किया है अतएव यहाँ पर **समोपमा अलंकार** है ।

रूपक और उपमा के सफल प्रयोग के अतिरिक्त भट्टि ने दसवें सर्ग में अन्य प्रसिद्ध अलंकारों का प्रदर्शन भी एक ही स्थान पर किया है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

६. अनन्वय :—

"उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैकवाक्यगे अनन्वयः ।।" [2]

अर्थात् एक ही वाक्य में एक ही पदार्थ के उपमान और उपमेय दोनों होने पर 'अनन्वय अलंकार' होता है । भट्टिकाव्य में इसका उदाहरण है –

"कुमुदवनचयेषु कीर्णरश्मिः
क्षततिमिरेषु च दिग्वधूमुखेषु ।
वियति च विललास तद्वदिन्दु –
र्विलसति चन्द्रमसो न यद्वदन्यः ।।" [3]

अर्थात् चन्द्रमा कुमुदवनों के समूहों में, खण्डित अन्धकारवाले दिग्वधूओं के मुखों और आकाश में भी किरणों को फैलाते हुए, उस प्रकार से शोभित हुए जिस प्रकार से उनसे भिन्न अन्य सुशोभित नहीं होता है, अर्थात् चन्द्रमा के तुल्य ही शोभित हुए ।

यहाँ पर उपमान और उपमेय दोनों एक ही पदार्थ चन्द्रमा ही है अतः **अनन्वय अलंकार** है ।

---

१. भट्टिकाव्य १०/३६

२. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, सू० १३४ पृ० १६०, १६६८ संस्करण

३. भट्टिकाव्य १०/६६

४. वही १०/३३

७. भ्रान्तिमान् :—

"भ्रान्तिमानन्यसंवित तुत्तुल्यदर्शने" [1]

अन्य अप्राकरणिक वस्तु के समान प्राकरणिक वस्तु के देखने पर जो अप्राकरणिक का भान होता है वह **भ्रान्तिमान् अलंकार** कहलाता है ।

भट्टिकाव्य में द्वितीय सर्ग में ही कवि ने इसका सुन्दर प्रयोग प्रस्तुत किया है । [2]

"गर्जन् हरिः साऽम्भसि शैलकुञ्जे
प्रतिध्वनीनात्मकृतान्निशम्य ।
क्रमं बबन्ध क्रमितुं सकोपः
प्रतर्कयन्नन्यमृगेन्द्रनादान् ।।"

सिंह जलयुक्त पर्वतनिकुञ्ज में गर्जना करता हुआ, स्वयं की प्रतिध्वनि को ही सुनकर, उस को दूसरे सिंह द्वारा की गई गर्जना मानता हुआ उस पर क्रुद्ध होकर आक्रमण के लिए तैयार हुआ ।

यहाँ पर सिंह द्वारा अपनी ही प्रतिध्वनि में दूसरे सिंह की गर्जना की जो भ्रान्ति हुई है । उसी कारण यहाँ **भ्रान्तिमान् अलंकार** है ।

एकादश सर्ग में भ्रमर को सुन्दरी की आँखों में नीलकमल तथा सुन्दरी के हाथ में **रक्तकमल** का भ्रम होता है देखिए [3] —

"अक्ष्णोः पतन् नीलसरोजलोभाद्
भृङ्गः करेणाऽल्पधिया निरस्तः ।
ददंश ताम्राऽम्बुरुहाऽभिसन्धि
स्तृष्णाऽऽतुरः पाणितलेऽपि धृष्णुः ।।"

८. सन्देह :—

"ससन्देहस्तु भेदक्तौ तदनुक्तौ च संशयः ।" [4]

---

१. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, पृ० ५४३, सू० १३२

२. भट्टिकाव्य २/६

३. वही ११/३६

४. काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, पृ० ४६२, सू० १३७

उपमेय में उपमान रूप से सशंय ही सन्देह है । वह भेद का कथन करने तथा न करने से दो प्रकार का होता है ।

राम और लक्ष्मण के अतिशय सौन्दर्य को देखकर, राजा ज़नक की सभा में उपस्थित सभी जन विभिन्न प्रकार के तर्क–वितर्क करने लगे । इसे कवि ने **सन्देह अलंकार** से व्यक्त किया है –

"इतः स्म मित्रावरुणौ किमेतौ
किमश्विनौ सोमरसं पिपासू ।
जनं समस्तं जनकाऽऽश्रमस्थं
रूपेण तावौजिहतां नृसिहौ ।।" [१]

अर्थात् सोमरस पीने के इच्छुक सूर्य और वरूण दोनों आये हुए हैं क्या ? अथवा ये (दोनों) अश्विनी कुमार हैं क्या ? पुरुषश्रेष्ठ उन राम और लक्ष्मण को देखकर महाराज जनक की सभा में समुपस्थित सभी मनुष्य इस प्रकार तर्क–वितर्क करने लगे ।

रामचन्द्र जी भी रात्रि में चन्द्रमा को देखकर विभिन्न प्रकार के सन्देह करते हैं –

"अशनिरपमसौ कुतौ निरभ्रे
शितशरवर्षमसत् तंदप्यशाङ्‌र्गम् ।
इति मदनवशो मुहुः शशाऽङ्के
रघुतनयो न च निश्चिकाय चन्द्रम् ।।" [२]

रामचन्द्र जी सन्देह करते हैं – "यह व्रज है, वह भी मेघरहित आकाश में कैसे हो सकता है ? यह तीक्ष्ण शरवृष्टि है, वह भी बिना धनुष के कैसे हो सकती है ? काम से अभिभूत रामचन्द्र जी ने चन्द्र के विषय में बारम्बार ऐसी तर्कना की, परन्तु चन्द्र का निश्चय नहीं किया ।

एकादश सर्ग के श्रृंगारिक वर्णन में कामीजन रात्रि के अन्धकार का अनेक प्रकार से सन्देह करते हैं [३] –

"तमः प्रसुप्तं मरणं सुखं नु
मूर्च्छा नु माया नु मनोभवस्य ।

१. भट्टिकाव्य, २/४१
२. वही, १०/६८
३. वही, ११/१०

किं तत् कथं वेत्युपलब्धसंज्ञा

विकल्पयन्तोऽपि न संप्रतीयुः ।।"

कामीजनों ने भी होश में आकर यह अन्धकार है क्या ? गाढशयन है क्या ? मरण है क्या ? सुख है क्या ? मूर्च्छा है क्या ? अथवा कामदेव की माया है ? यह क्या है अथवा कैसे है ऐसे अनेक प्रकार के विकल्पों को करते हुए परमार्थ को नहीं जाना ।

६. अपह्नुति :—

"प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः

प्रकृत अर्थात् **उपमेय** का निषेध करके जो **अन्य** अर्थात् **उपमान** की सिद्धि की जाती है वह 'अपह्नुति अलंकार' होता है ।

भट्टि काव्य के दशम सर्ग में इसका उदाहरण देखिए –

"भृतनिखिलरसातलः सरत्नः

शिखरिसमोर्मितिरोहिताऽन्तरिक्षः ।

कुत इवं परमाऽर्थतो जलौघो

जलनिधिमोयुरतः समेत्य मायाम् ।।" [२]

सम्पूर्ण पाताल को पूर्ण करने वाला, रत्नों से युक्त, पर्वतो के समान तरङ्गों से आकाश को आच्छादित करने वाला जलसमूह यहाँ पर वास्तव में कैसे हो सकता है ? इस कारण से वहाँ आकर राम और लक्ष्मण के साथ वानरों की सेना ने समुद्र को माया रूप में जान लिया ।

यहाँ पर प्रस्तुत विद्यमान अर्थ का निषेध किया गया है अतः **अपह्नुति अलंकार** है ।

१०. उत्प्रेक्षा :—

आचार्य भट्टि ने यमक के समान **उत्प्रेक्षा अलंकार** का भी प्रयोग बहुतायत से किया है –

सूर्य की किरणों से रञ्जित बहता हुआ जल ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो सूर्य का तेज ही पृथ्वी पर बह रहा हो –

---

१. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १४५, पृ० ४७०

२. भट्टिकाव्य, १०/५८

"तिग्मांऽशुरश्मिच्छुरिताऽन्यदूरात्
प्राञ्चि प्रभाते सलिलान्यपश्यत् ।
गभस्तिधाराभिरिव द्रुतानि
तेजांसि भानोर्भुवि संभृतानि ।।" [१]

लङ्कापुरी का कोलाहल मानो इन्द्रपुरी के कोलाहल की समानता धारण कर रहा है –

"जल्पितोत्क्रुष्टसंगीतप्रनृत्तस्मितवल्गितैः ।
घोषस्यान्ववदिष्टेव लङ्का पूतक्रतोः पुरः ।।" [२]

नवम सर्ग में अशोक वाटिका भङ्ग के समय हनुमान् द्वारा फेके गये पेड़ पृथ्वी पर मानो दुपट्टा ओढ़े हुए प्रतीत हो रहे थे –

"वरिषीष्ट शिवं क्षिप्यन् मैथिल्याः कल्पशाखिनः ।
प्रावारिषुरिव क्षोणीं क्षिप्ता वृक्षाः समन्ततः ।।" [३]

हनुमान् जी द्वारा अशोक वाटिका भङ्ग किये जाने पर, इन्द्रजित् के आने पर पक्षियों का समूह, शोक से (हनुमान् द्वारा) तोड़े हुए वृक्षों को बन्धु के आगमन में मृत बन्धुओं को उद्देश्य करते हुए के समान कण्ठस्वर फैलाकर मानो रोते हुए की तरह प्रतीत होते थे । कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा है –

"रोदिति स्मेव चाऽऽयाति तस्मिन् पक्षिगणः शुच ।
मुक्तकण्ठं हतान् वृक्षान् बन्धून् बन्धोरिवाऽऽगमे ।।" [४]

अग्नि के समान प्रदीप्त हनुमान् जी अकेले होते हुए भी मानो परार्ध्य (द्यूलोक) संख्यक होते हुए युद्धस्थल में घूमने लगे –

"ज्योतिष्कुर्वन्निवैकोऽसावाटीत् संख्ये परार्ध्यवत् ।
तमनायुष्करं प्राप शक्रशत्रुर्धनुष्करः ।।" [५]

---

१. भट्टिकाव्य २/१२
२. वही ८/२६
३. वही ६/२५
४. वही ६/५५
५. वही ६/६४

दशम सर्ग में अन्धकार मानो डरे हुए के समान निकुञ्ज में रक्षक बना हुआ छिप गया । यहाँ पर **उत्प्रेक्षा** देखिए –

"शरणमिव गतं तमो निकुञ्जे
विटपिनिराकृतचन्द्ररश्म्यरातौ ।
पृथुविषमशिलाऽन्तरालसंस्थं
सजलघनद्युति भीतवत् ससाद ।।"[१]

एकादश सर्ग में रति–वर्णन में सम्पूर्ण इन्द्रियों से उत्पन्न सुख को हृदय में प्रत्यक्ष रूप से स्थित किए जाने के पश्चात् अपने को वञ्चित मानने वाला नेत्र, असहनशील होता हुआ असमर्थ की तरह संकुचित रूप से मानो निमीलित हो गया –

"वृत्तौ प्रकाशं हृदये कृतायां
सुखेन सर्वेन्द्रियसंभवेन ।
सकोचमेवाऽसहमानमस्था –
दशक्तवद्वञ्चितमानि चक्षुः ।।"[२]

११. अतिशयोक्ति :–

अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग करके कवि ने रावण की लङ्का नगरी की वैभवत्ता तथा ऐश्वर्य का प्रतिपादन किया है एक उदाहरण देखिए –

"ज्योत्स्नाऽमृतं शशी यस्यां वापीर्विकसितोत्पलाः ।
अपाययत संपूर्णः सदा दशमुखाऽऽज्ञया ।।"[३]

अर्थात् रावण की अशोक वाटिका में उसकी आज्ञा से चन्द्रमा सदैव सोलह कलाओं से पूर्ण रहता है ।

अतिशयोक्ति का एक उदाहरण और द्रष्टव्य है –

"क्व ते कटाक्षाः क्व विलासवन्ति
प्रोक्तानि वा तानि ममेति मत्वा ।

---

१. भट्टिकाव्य १०/७०

२. वही ११/७

३. वही ८/६२

लङ्काऽङ्गनानामवबोधकाले

तुलामनारुह्य गतोऽस्तमिन्दुः ।।''[1]

अर्थात लंका की स्त्रियों के जैसे कटाक्ष मेरे कहाँ ? अथवा विलासयुक्त वैसे भाषण मेरे कहाँ ? ऐसा विचार कर चन्द्रमा लंका की सुन्दरियों के जागने के समय में उपमा को न पाकर अस्तपर्वत को चले गए ।

१२. तुल्ययोगिता :–

''अपरिमितमहाऽद्भूतैर्विचित –

श्च्युतमलिनः शुचितभिर्महानलङ्घ्यैः ।

तरुमृगपतिलक्ष्मणक्षितीन्द्रैः

समधिगतो जलधिः परं बभासे ।।''[2]

अर्थात् अपरिमित और अतिशय, अद्भुत, निर्मल तथा अलङ्घनीय, सुग्रीव, लक्ष्मण और रामचन्द्र जी से संप्राप्त, विचित्र, निर्मल तथा विशाल समुद्र अतिशय शोभित हुआ ।

यहाँ पर अपरिमित, अद्भुत, निर्मल इत्यादि अनेक अर्थों का एक धर्म **भासन क्रिया** (शोभन क्रिया) से सम्बन्ध होने पर **तुल्ययोगिता अलंकार** है । जिसका लक्षण इस प्रकार है –

''नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता ।''[3]

अर्थात् नियत (प्रकृत) या अनेक अप्रकृत अर्थों का एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने पर **तुल्ययोगिता** अलंकार होता है ।

१३. दीपक :–

काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट ने दीपक अलंकार का लक्षण इस प्रकार किया है –

''सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रक्रताप्रकृतात्मनाम् ।

सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम् ।।''[4]

---

१. भट्टिकाव्य ११/३

२. वही, १०/६२

३. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १५७

४. वही, सू० १५५, पृ० ४८७

प्रकृत अर्थात् उपमेय तथ अप्रकृत अर्थात् उपमान के क्रियादिरूप धर्मों का एक ही बार ग्रहण किया जाय, वहाँ **क्रियादीपक** तथा बहुत सी क्रियाओं में एक ही कारक का ग्रहण हो तो वहाँ **कारकदीपक** दूसरे प्रकार का **दीपक अलंकार** होता है ।

भट्टिकाव्य में इसके अनेक उदाहरण हमें मिलते हैं । कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है –

"फलान्यादत्स्व चित्राणि परिकीडस्व सानुषु ।
साध्वनुक्रीडमानानि पश्य वृन्दानि पक्षिणाम् ।।"[1]

...क पर्वत का हनुमान् के प्रति कथन है – "अनेक प्रकार के फलों को ग्रहण कीजिए, समतल भूमि में विहार करें, सुन्दरता से क्रीड़ा करते हुए इन पक्षियों के समूहों को देखिए ।

यहाँ पर तीन क्रियाओं का एक ही हनुमान् जी से सम्बन्ध होने के कारण **दीपक अलंकार** है ।

इसी प्रकार हनुमान् की प्रतिज्ञा में भी **दीपक** की सुन्दर योजना है जहां पर वह कहते हैं – "आज राम के शत्रु उस दुराचारी रावण की नगरी लङ्का में अनेक प्रकार की चेष्टाओं को करुगाँ अथवा अपने प्यारे प्राणों को गवाऊँगा या कीर्ति को ही प्राप्त करूगाँ ।"

"विकुर्वे नगरे तस्य पापस्याऽद्य रधुद्विषः ।
विनेष्ये वा प्रियान् प्राणानुदानेष्येऽथवा यशः ।।"[2]

सीता जी के इस कथन में **एकक्रियादीपक** की सुन्दर योजना है –

"दण्डकान् दक्षिणेनाऽहं सरितोऽद्रीन् वनानि च ।
अभिक्रम्याऽम्बुधिं चैव पुंसामगममाहृता ।।"[3]

उपर्युक्त श्लोक में **आहृता** इस क्रिया पद का सभी नदियो, पर्वतों इत्यादि से सम्बन्ध हो जाने से यह चमत्कार उत्पन्न हो रहा है । दशम सर्ग का एक उदाहरण देखिए –

"स गिरिं तरुखण्डमण्डितं समवाप्य त्वरया लतामृगः ।
स्मितदर्शितकार्यनिश्चयः कपिसैन्यैर्मुदितैरमण्डयत् ।।"[4]

---

१. भट्टिकाव्य ८/१०
२. वही ८/२१
३. वही ८/१०८
४. वही १०/२४

इस श्लोक में **अमण्डयत्** यह क्रिया पद अन्य के साथ जुड़कर **दीपक अलंकार** को व्यक्त कर रहा है ।

१४. निदर्शना :–

"अपिस्तुह्यपिसेधाऽस्मांस्तथ्यमुक्तं नराऽशन ।
अपि सिञ्चेः कृशानौ त्वं दर्पं, मय्यपि योऽभिकः ।।" [१]

..र्थात् हे मनुष्य भक्षक राक्षस! मेरी प्रशंसा कर अथवा निन्दा कर, मैंने तो सच्ची बात कही है । जो तू मेरे विषय में भी कामुक हो रहा है वह तो अग्नि में वीर्यपात करना ही है ।

उपर्युक्त श्लोक में रावण का सीता के विषय में कामुक होने को अग्नि में वीर्यपात करने के समान बताकर उपमा में पर्यवसित होने से **निदर्शना** की सुन्दर योजना बन पड़ी है । क्योंकि निदर्शना का लक्षण है –

"अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः ।" [२]

जहां वस्तु का अभवन् अर्थात् प्रकृत का अप्रकृत के साथ सम्बन्ध **उपमा** में पर्यवसित हो जाता है, वहां **निदर्शना अलंकार** होता है ।

दशम सर्ग का एक और उदाहरण देखिए –

"न भवति महिमा विना विपत्ते –
खगमयन्निव पश्यतः पयोधिः ।
अविरतमभवत् क्षणे क्षणेऽसौ
शिखरिपृथुप्रथितप्रशान्तवीचिः ।।" [३]

'महिमा विपत्ति के बिना नहीं होती है' इस बात को देखने वाले राम आदि को ज्ञात करवाते हुए के समान समुद्र प्रतिक्षण, लगातार पर्वत के सदृश महान्, विस्तीर्ण और प्रशान्ततरंग वाला हो गया ।

१५. सहोक्ति :–

काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट के अनुसार सह अर्थ की सामर्थ्य से एक पद का दो पदों से सम्बन्ध होने पर **सहोक्ति अलंकार** होता है ।

---

१. भट्टिकाव्य ८/६२

२. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १४८, पृ० ४७४

३. भट्टिकाव्य १०/६३

"सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम् ।"[1]

भट्टि काव्य में इसका उदाहरण देखिए –

"सजलाऽम्भोदसरावं हनुमन्तं सहाऽङ्गदम् ।
जाम्बवं नीलसहितं चारुचन्द्रावमब्रवीत् ।।"[2]

अर्थात् सुग्रीव ने जलयुक्त बादल के समान शब्द करने वाले अङ्गद के सहित हनुमान् को और नील नामक वानर के सहित गतिवाले जाम्बवन्त को कहा ।

इस श्लोक में **सह** शब्द का अङ्गद व हनुमान् से तथा दूसरे **सह** शब्द का वानर और जाम्बवन्त दोनों से सम्बन्ध होने के कारण **सहोक्ति अलंकार** है ।

दशम सर्ग में मेघ के समान शोभा वाला अन्धकार रामचन्द्र जी के कामोदय के साथ बढ़ा । यहाँ पर **सह** शब्द दो पदों का वाचक होने से **सहोक्ति अलंकार** बन पड़ा है –

"अपहरदिव सर्वतो विनोदान्
दयितगतं दधदेकधा समाधिम् ।
धनरुचि ववृधे ततोऽन्धकारं
सह रघुनन्दनमन्मथोदयेन ।।"[3]

१६. समासोक्ति :–

"स च विह्वलसत्त्वसंकुलः परिशुष्यन्नभवन्महाह्रदः ।
परितः परितापमूर्च्छितः पतितं चाडम्बु निरभ्रमीप्सितम् ।।"[4]

विह्वल जन्तुओं से युक्त, अतिशय सूर्यताप से सम्पन्न, अतः सूखते हुए विशाल जलाशय के सदृश रामचन्द्र जी सीता जी के विरह से विह्वल चित्त से युक्त सूखते हुए संन्ताप से मूर्च्छित हो गए । इसी समय में जैसे महान् जलाशय में बिना मेघ के वृष्टि होती है, उसी प्रकार अभीष्टसीतावार्ता की श्रवण रूप वृष्टि हो गयी ।

इस श्लोक में **विह्वलसत्त्वसंकुलः** यह पद **श्लिष्ट** है । **रामपक्ष** में इसका अर्थ इस प्रकार है –

---

१. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास सू० १६६

२. भट्टिकाव्य ७/३५

३. वही १०/६६

४. वही १०/४२

व्याकुलचित्तयुक्तः अर्थात् सीताजी के वियोग से व्याकुल चित्त ।

हृदय पक्ष में – 'विक्लवमत्स्यादिजलजन्तुव्याप्त' अर्थात् विह्वल जन्तुओं से युक्त ।

इस प्रकार **"परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः ।।"** [1] इस लक्षण के अनुसार **श्लेषयुक्त** विशेषणों द्वारा अप्रकृत का कथन होने से यहाँ **समासोक्ति अलंकार** है ।

एक उदाहरण और द्रष्टव्य है –

"ग्रहमणिरसनं दिवो नितम्बं
विपुलमनुत्तमलब्धकान्तियोगम् ।
च्युतधनवसनं मनोऽभिरामं
शिखरकरैर्मदनादिव स्पृशन्तम् ।।" [2]

अर्थात् राम इत्यादि ने ग्रहरूपरत्नजटित मेखला से युक्त, विस्तीर्ण, अतिशय उत्कृष्ट शोभा सम्पन्न, जिससे वस्त्र सदृश मेघ हट गए हैं और सुनहरे आकाश के नितम्ब को कामदेव के सदृश होकर हस्तरूप शिखरों से जो स्पर्श कर रहा है, ऐसे महेन्द्र पर्वत को प्राप्त किया ।

यहाँ पर श्लेष द्वारा मेखला इत्यादि अलंकारों से प्रस्तुत महेन्द्र पर्वत अप्रस्तुत नायक के अर्थ को प्रकट कर रहा है । अतः **समासोक्ति अलंकार** है ।

श्लेष :–

"भुवनभरसहानलङ्घ्यधाम्नः
पुरुरुचिरत्नभृतो गुरुरुदेहान् ।
श्रमविधुरविलीनकूर्मनक्रान्
दधत्तमुदूढभुवो गिरीनदींश्च ।।" [3]

यहाँ पर **श्लिष्ट** शब्दों का प्रयोग है अर्थात् एक ही वाक्य में एक पद के अनेक अर्थ होने से यहां पर **अर्थश्लेष अलंकार** है । जिसका लक्षण इस प्रकार है –

---

१. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १४७, पृ० ४७४

२. वही १०/४८

३. वही १०/५५

"श्लेषः स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत् ।"

प्रस्तुत श्लोक का पर्वत पक्ष में तथा सर्प पक्ष में अर्थ इस प्रकार है –

(क) पर्वत पक्ष में –

राम और लक्ष्मण के साथ वानरों की सेना, पृथ्वी का भार सहन करने वाले, अतिरस्कृत तेज से युक्त, प्रचुर सुन्दर रत्नों को धारण करने वाले, गौरवमय विशाल शरीर वाले, श्रम से पीड़ित कछुए और ग्राह जिनमें छिपे हैं ऐसे पृथ्वी को धारण करने वाले पर्वत, समुद्र को धारण करते हुए महेन्द्र पर्वत के कुञ्ज से चली गई ।

(ख) सर्प पक्ष में –

राम और लक्ष्मण के साथ वानरों की सेना अलंघनीय शरीर वाले, परिश्रम से पीड़ित और छिपे हुए कछुए और ग्रहों से युक्त, सर्पों को धारण करते हुए समुद्र को धारण करने वाले महेन्द्र पर्वत के कुञ्ज से चली गई ।

दशम सर्ग का ही एक और उदाहरण द्रष्टव्य है –

"प्रददृशुरुरुमुक्तशीकरौधान्
विमलमणिद्युतिसंभृतेन्द्रचापान् ।
जलमुच इव धीरमन्द्रघोषान्
क्षितिपरितापहृतो महातरंगान् ।।" [1]

इस श्लोक में **मेघपक्ष** में तथा **महातरंग पक्ष** में अलग–अलग अर्थों को प्रकट करने वाले शब्दों का प्रयोग होने से **श्लेष अलंकार है** । देखिए –

राम और लक्ष्मण के साथ वानरों की सेना ने बड़े–बड़े जलकण–समूह को होने वाले, **मेघ पक्ष में** – निर्मल मणियों के सदृश कान्तिवाले इन्द्रधनुषों से युक्त, **महातरंग पक्ष में** – निर्मलकान्तिरूप इन्द्रधनुषों से सम्पन्न, मधुर और गम्भीर शब्दवाले तथा पृथ्वी के संताप को हरने वाले मेघों के समान महान् तरंगों को देखा ।

व्याजस्तुति :–

इस अलंकार में प्रारम्भ में तो अर्थात् देखने में निन्दा या स्तुति प्रतीत होती है, परन्तु उससे भिन्न में पर्यवसान होता है –

---

1. भट्टिकाव्य १०/५६

"व्याजस्तुतिर्मुखे निन्दा स्तुतिर्वा रुढिरन्यथा ।"[1]

भट्टिकाव्य में इसका उदाहरण –

"क्षितिकुलमिरिकोषदिग्गजेन्द्रान्
सलिलगतामिव नावमुद्वहन्तम् ।
धृतविधुरधरं महावराहं
गिरिगुरुपोत्रमपीहितैर्जयन्तम् ।।"[2]

राम और लक्ष्मण के साथ वानरों की सेनाओं ने पृथ्वी, कुलपर्वत, शेषनाग और ऐरावत आदि दिग्गजों को जलप्राप्त नौका के समान धारण करने वाले और पीड़ित पृथ्वी को धारण करने वाले, अतएव पर्वत के सदृश गुरु थूथने वाले महावराह को भी चेष्टाओं से जीतने वाले समुद्र को जाना ।

इस श्लोक में पृथ्वी इत्यादि को धारण करने वाले वराह से तुलना करने के व्याज से समुद्र की स्तुति की गई है । अतः यहाँ 'व्याजस्तुति' अलंकार है ।

अर्थान्तरन्यास :–

"अह्रत धनेश्वरस्य युधि यः समेतमायो धनं
तमहमितो विलोक्य विबुधैः कृतोत्तमाऽऽयोधनम् ।
विभवमदेन निह्नतह्रियाऽतिमात्रसंपन्नकं
व्यथयति सत्पथादधिगताऽथवेह सपन्न कम् ।।"[3]

अर्थात् जिस मायावी रावण ने युद्ध में कुबेर के पुष्पक विमान आदि द्रव्य का हरण किया । देवताओं से महासंग्राम करने वाले, लज्जा को छोड़ने वाले, सम्पत्ति के मद से अतिशय सम्पन्न उस रावण को देखकर मैं (हनुमान्) आया हूँ अथवा इस लोक में प्राप्त हुई लक्ष्मी किस मनुष्य को सन्मार्ग से विचलित नहीं करती है ?

यहाँ पर **विशेष अर्थ** का इस **सामान्य अर्थ** से समर्थन किया गया है – "इस लोक में प्राप्त हुई लक्ष्मी किस मनुष्य को सन्मार्ग से विचलित नहीं करती है ।" इसलिए यहाँ **अर्थान्तरन्यास अलंकार** है । जिसका लक्षण इस प्रकार है –

---

१. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १६८, पृ० ५०५

२. वही १०/६०

३. वही १०/३७

"सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ।।"[१]

अर्थात् जहाँ सामान्य का विशेष से तथा विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाता है वहाँ **अर्थान्तरन्यास अलंकार** होता है ।

"सभी महापुरुष सदा दूसरे के लिए ही होते हैं ।" इस सामान्य अर्थ से समर्थित **अर्थान्तरन्यास** का एक उदाहरण देखिए –

"अधिजलधि तमः क्षिपन् हिमांशुः
परिदृष्टशेऽथ दृशां कृतावकाशः ।
विदधदिव जगत् पुनः प्रलीनं
भवति महान् हि परार्थ एव सर्वः ।।"[२]

अर्थात् अन्धकार बढ़ने के अनन्तर चन्द्रमा समुद्र में अन्धकार को हटाते हुए, दृष्टि को अवसर देते हुए और पहले अन्धकार के कारण तिरोभूत संसार की फिर सृष्टि करते हुए की तरह दिखाई पड़े, क्योंकि सभी महापुरुष दूसरे के लिए ही होते हैं ।

एकादश सर्ग के श्रृंगारिक वर्णन में इस अलंकार की सुन्दर योजना द्रष्टव्य है –

"वक्षः स्तनाभ्यां मुखमाननेन
गात्राणि गात्रैर्घटयन्नमन्दम् ।
स्मराऽऽतुरो नैव तुतोष लोकः
पर्याप्तता प्रेम्णि कुतो विरुद्धा ।।[३]

अपने वक्षः स्थल को प्रिया के स्तनों से, मुख को मुख से और अंगों को अंगों से दृढ़तापूर्वक संश्लिष्ट करता हुआ भी काम से व्याकुल मनुष्य सन्तुष्ट नहीं हुआ क्योंकि प्रेम में इच्छाविच्छेद कहाँ विरुद्ध होता है । अर्थात् काम से कभी तृप्ति नहीं होती ।

यहाँ पर भी विशेष का समर्थन सामान्य से किया गया है अतः **अर्थान्तरन्यास अलंकार** है ।

---

१. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १६४, पृ० ५००

२. वही १०/६७

३. वही ११/११

पर्यायोक्ति :–

"पर्यायोक्तं विना वाच्यवाचकत्वेन यद्वचः ।"[1]

अर्थात् जहाँ पर वाच्य–वाचक भाव के बिना व्यञ्जना रूप व्यापार द्वारा प्रकारान्तर से जो वाच्यार्थ का कथन करना है वहाँ **पर्यायोक्ति अलंकार** होता है । भट्टिकाव्य में इसका उदाहरण हमें इस प्रकार मिलता है –

"स्फटिकमणिगृहैः सरत्नदीपैः
प्रतरुणकिन्नरगीतनिस्वनैश्च ।
अमरपुरमतिं सुराङ्गनानां
दधतमदुःखमनल्पकल्पवृक्षम् ।।"[2]

तात्पर्य यह है कि रामादि ने रत्नदीपों से युक्त स्फटिकमणिगृहों से और युवक किन्नरों के गान शब्दों से भी देवाङ्गनाओं को 'यह स्वर्ग है' ऐसी बुद्धि उत्पन्न करने वाले, दुःखरहित और बहुत से कल्पवृक्षों से सम्पन्न महेन्द्र पर्वत को प्राप्त किया ।

विरोध मूलक अलंकार :–

विभावना :–

अशोक वाटिका में चन्द्रकान्त मणियों का पिघलना, कुमुदों के समूह का शोभित होना तथा गुच्छों की राशियों का बिखरना ये सभी कार्य बिना किसी हेतु के घटित हो रहे हैं। **"क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना"** इस लक्षण के घटित होने से विभावना अलंकार है –

"अस्यदन्निन्दुमणयो व्यरुचन् कुमुदाऽऽकराः ।
अलोठिषत वातेन प्रकीर्णाः स्तबकोच्चयाः ।।"[3]

दशम सर्ग में हनुमान् जी द्वारा रामचन्द्र जी के प्रति कहे गए इस कथन में भी हमें विभावना की सुन्दर झलक मिलती है –

"अपरीक्षितकारिणा गृहीतां
त्वमनासेवितबृद्धपण्डितेन ।

---

१. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १७४, पृ० ५११

२. वही १०/५०

३. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १६१, पृ० ४६८

अविरोधितनिष्ठुरेण साध्वीं
दयितां त्रातुमलं घटस्व राजन् ।।"[१]

तात्पर्य यह है कि हनुमान् जी का श्रीराम के प्रति कथन है – हे राजन्! आप बिना परीक्षा के कार्य करने वाले, ज्ञान–वृद्ध की सेवा किये बिना भी पण्डित और अपकार न किये जाने पर भी कठोर बने हुए रावण से गृहीत, पतिव्रता प्रिया सीताजी की रक्षा के लिए पर्याप्त रूप में प्रयत्न करें।

यहाँ पर सभी कार्य बिना कारण के हो रहे हैं, अतः यहाँ पर **विभावना अलंकार** है।

विशेषोक्ति :–

रावण के चतुर और सम्पत्तिशाली होने पर भी वह सीता जी द्वारा प्रिय नहीं हो सका। –

"यस्यां वासयते सीतां केवलं स्म रिपुः स्मरात्।
न त्वरोचयताऽऽत्मानं चतुरो वृद्धिमानपि ।।"[२]

यहाँ पर सभी कारण विद्यमान होने पर भी सीता द्वारा प्रिय नहीं हो सकना रूपी कार्य नहीं होने से **विशेषोक्ति अलंकार** है। जिसका लक्षण इस प्रकार है –

"विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः।"[३]

अर्थात् कारण के विद्यमान रहने पर भी फल (कार्य) का अभाव **विशेषोक्ति अलंकार** कहलाता है।

एक और सुन्द उदाहरण देखिए –

"शशिरहितमपि प्रभूतकान्तिं
विबुधहृतश्रियमप्यनष्टशोभम्।
मथितमपि सुरैर्दिवं जलौधैः
समभिभवन्तमविक्षतप्रभावम् ।।"[४]

अर्थात् राम और लक्ष्मण के साथ वानरों की सेना ने चन्द्र से रहित होकर भी प्रचुर कान्ति वाले, देवताओं

१. भट्टिकाव्य १०/४१
२. वही ८/६४
३. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १६२, पृ० ४६
४. वही १०/५६

के द्वारा लक्ष्मी का हरण किए जाने पर भी असमाप्त शोभावाले, देवताओं से मथित होकर भी जल के समूहों से आकाश को जीतने वाले और अखण्डित महिमा से युक्त समुद्र को जान लिया ।

यहाँ पर कारण के विद्यमान होने पर भी सभी कार्य नहीं हो रहे हैं । अतः **विशेषोक्ति अलंकार** है ।

विषम :—

भट्टि महाकाव्य के सप्तम सर्ग में सम्पत्ति द्वारा कही गयी यह उक्ति **विषम अलंकार** का उदाहरण प्रस्तुत करती है –

"आत्मनः परिदेवध्वे कुर्वन्तो रामसंकथाम् ।
समानोदर्यमस्माकं जटायुं च स्तुथाऽऽदरात् ।।" [१]

आत्मग्लानि करते हुए, राम की उत्तम कथा को कहते हुए और जटायु की आदर के साथ स्तुति करने वाले (तुम लोग कौन हो ?)

यहाँ पर आत्मग्लानि करना तथा स्तुति करना दो विरोधी बातें कही गयी हैं । अतः **विषम अलंकार** है ।

अष्टम सर्ग में रावण का सीता से यह कहना कि – "जो पत्थर से दूध दूहेगा वही राम से सम्पत्ति पायेगा" में **विषम अलंकार** का पुर दिखाई देता है –

"यः पयो दोग्धि पाषाणं, स रामाद् भूतिमाप्नुयात् ।
रावणं गमय प्रीतिं बोधयन्तं हिताऽहितम् ।।" [२]

लक्ष्मण की राम के प्रति यह उक्ति – "हे राम ! शत्रुओं की पत्नियों को पति की हत्या से चञ्चल केशों से रहित तथा आसूओं से कञ्जल और ओष्ठ राग से शून्य कीजिए । शोक को छोड़िए, लोको के शरणदाता कहाँ आप और कहाँ यह मोह ?"

"पतिवधपरिलुप्तलोलकेशी –
र्नयनजलाऽपहृताऽञ्जनौष्ठरागाः ।

---

१. भट्टिकाव्य ७/८६
२. वही ८/८२
३. वही १०/७२

कुरु रिपुवनिता जहीहि शोकं
क्व च शरणं जगतां भवान् क्व मोह ।।"[1]

स्पष्ट है कि उपर्युक्त श्लोक में **विषम अलंकार** है ।

विरोध :–

"मृदुभिरपि बिभेद पुष्पबाणै –
श्चलशिशिरैरपि मारुतैर्ददाह ।
रघुतनयमनर्थपण्डितोऽसौ
न च मदनः क्षतमाततान नाऽर्चिः ।।"[2]

अनर्थपण्डित कामदेव ने रामचन्द्र जी को कोमल पुष्पों के बाणों से भी भेदन किया, परन्तु खण्डन नहीं किया, एवं जलयुक्त शीतल पावनों से भी तप्त किया, किन्तु अग्नि नहीं फैलाई ।

यहाँ पर कामदेव के कोमल पुष्पों के बाण से हृदय का भेदन होना तथा शीतल पवनों से तृप्त होना ये विरोधी बातें हैं, किन्तु काम के विषय में ये बातें कही गयीं हैं इसलिए विरोध का परिहार हो जाने से **विरोध अलंकार** है । जिसका लक्षण इस प्रकार है –

"विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः ।"[3]

एकावली :–

काव्यप्रकाश ने इस अलंकार का लक्षण इस प्रकार किया है –

"स्थाप्यतेऽपोह्यते वापि यथापूर्वं परं परम् ।
विशेषणतया यत्र वस्तु ऐकावली द्विधा ।।"[4]

जहाँ पर पूर्व–पूर्व वस्तु के प्रति उत्तर–उत्तर वस्तु विशेषण रूप से रखी जाए वहाँ पर **एकावली अलंकार** होता है ।

भट्टिकाव्य का एक बहुत ही प्रसिद्ध श्लोक **एकावली अलंकार** का उत्कृष्ट उदाहरण है –

---

१. भट्टिकाव्य १०/७२
२. वही १०/६४
३. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १६५
४. वही, सू० १६७, पृ० ५४१

"न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं
न पङ्कजं तद् यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कालं
न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ।।" [१]

शरद् ऋतु में ऐसा कोई जलयुक्त तालाब नहीं था जहाँ पर सुन्दर कमल न हों, ऐसा कोई कमल नहीं था, जिस पर भौरा न बैठा हो, वहाँ ऐसा कोई भ्रमर नहीं था, जो मधुर गुञ्जार न कर रहा हो और वह ऐसी कोई झंकार नहीं थी, जो मन को हरण नहीं कर सकी ।

इस श्लोक के अर्थ से स्पष्ट है कि यहाँ पर पूर्व–पूर्व वस्तु के प्रति उत्तर–उत्तर वस्तु विशेषण रूप से रखी जाने के कारण **एकावली अलंकार** है ।

दशम सर्ग का एक श्लोक देखिए –

"गच्छन् स वारीण्यकिरत्पयोधेः
कूलस्थितास्तानि तरुनधुन्वन् ।
पुष्पाऽऽस्तरांस्तेङ्गसुखानतन्वं –
स्तानू किन्नरा मन्मथिनोऽध्यतिष्ठन् ।।" [२]

अर्थात् हनुमान् जी ने वेग में समुद्र के जल को फेंक दिया । जल ने किनारे पर स्थित पेड़ों को कम्पित कर दिया, पेड़ों ने सुखदायक पुष्प समूहों को फैलाया और उन पुष्प समूहों पर कामुक किन्नरगण बैठ गए ।

उपर्युक्त श्लोक में भी पूर्व–पूर्व वस्तु के प्रति उत्तरोत्तर वस्तु विशेषण रूप से रखी गयी है । अतः यहां भी **एकावली अलंकार** है ।

काव्यलिङ्ग :–

"काव्यलिङ्गंहेतोर्वाक्यपदार्थता ।" [३]

अर्थात् हेतु का वाक्यार्थ अथवा पदार्थ रूप में कथन करना **काव्यलिङ्ग अलंकार** कहलाता है । भट्टि ने अपने महाकाव्य में इसका प्रयोग कई स्थानों पर किया है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

---

१. भट्टिकाव्य २/१६

२. वही १०/२३

३. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १७३, पृ० ५१०

"दत्तावधानं मधुलेहिगीतौ प्रशान्तचेष्टं हरिणं जिघांसु ।
आकर्णयन्नुत्सुकहंसनादाँल्लक्ष्ये समाधि न दधे मृगावित् ।।" [१]

भौरों के गीत में ध्यानमग्न और इसीलिए अत्यन्त शान्त बैठे हुए मृग को मारना चाहता हुआ भी शिकारी उत्कण्ठित हंसो के शब्दों को सुनता हुआ अपने (मृग–मारने रूपी) लक्ष्य में चित्त की एकाग्रता नहीं रख सका ।

यहाँ पर शिकारी मृग को मारने में चित्त को एकाग्र नहीं कर पा रहा है, क्योंकि वहाँ हंसों के उत्कण्ठित शब्द गुञ्ज रहे हैं अतः यहां हेतु का कथन होने से **काव्यलिङ्ग अलंकार** है ।

उपमा के साथ काव्यलिङ्ग का एक प्रयोग द्रष्टव्य है –

"अथ क्लमादनिःक्वाणा नराः क्षीणपणा इव ।
अमदाः सेदुरेकस्मिन्नितम्बे निखिला गिरेः ।।" [२]

परिभ्रमण के पश्चात् परिश्रम से शब्द रहित होकर सब वानर हर्षरहित होते हुए धन क्षीण मनुष्यों की तरह पर्वत के मध्य भाग में बैठ गए ।

अष्टम सर्ग में मैनाक पर्वत द्वारा हनुमान् जी का अतिथि–सत्कार किए जाने पर हनुमान् जी की उक्ति है–

"कुलभार्यां प्रकुर्वाणमहं द्रष्टुं दशाऽऽननम् ।

यामि त्वरावान् शैलेन्द्र ! मा कस्यचिदुपस्कृथाः ।।" [३]

हे गिरिराज मैनाक ! मैं कुलीन स्त्री सीता पर साहस के साथ प्रवृत्त होने वाले रावण को देखने के लिए शीघ्रताशीघ्र जा रहा हूँ । इसलिए मेरे लिए (खाने–पीने के विषय में) कोई प्रयत्न मत कीजिए ।

यहाँ पर प्रयत्न न करने का **कारण** हनुमान् का रावण को देखने जाना है । अतः हेतु का कथन होने से **काव्यलिङ्ग अलंकार** है ।

हनुमान् जी का कथन है कि – "सीता जी को देखकर राक्षसों को भगाऊँगा, क्योंकि पहले बल प्रयोग से **सीता जी के दर्शन रूप** कार्य की हानि हो जाएगी । यहाँ पर कारण का कथन है अतः **काव्यलिङ्ग अलंकार**

---

१. भट्टिकाव्य २/७

२. वही ७/५८

३. वही ८/१६

है, देखिए –

"दृष्ट्वा राघवकान्तां तां द्रावयिष्यामि राक्षसान् ।
तस्या हि दर्शनात् पूर्वं विक्रमः कार्यनाशकृत् ।।"[१]

रावण के अशोक वाटिका में बसन्त आदि ऋतुएं परस्पर की सम्पत्तियों को उत्पीड़ित नहीं करती थी क्योंकि उन्हें रावण से भय था –

"आवाद्वायुः शनैर्यस्यां लतां नर्तयमानवत् ।
नाऽऽयासयन्त सन्त्रस्ता ऋतवोऽन्योन्यसम्पदः ।।"[२]

यहाँ पर भी काव्यलिङ्ग स्पष्ट है ।

यथासंख्य :–

"कपिपृष्ठगतौ ततो नरेन्द्रौ
कपयश्च ज्वलिताऽग्निपिङ्गलाक्षाः ।
मुमुचुः प्रययुद्रुतं समीयु –
र्वसुधां व्योम महीधरं महेन्द्रम् ।।"[३]

अनन्तर हनुमान् जी की पीठ पर चढ़े हुए राम और लक्ष्मण ने तथा जलती हुई अग्नि के समान पीली आँखों वाले वानरों ने भी पृथ्वी को छोड़ा, आकाश में गमन किया और महेन्द्र पर्वत को शीघ्र प्राप्त किया ।

यहाँ पर कहे गए पदार्थों का उसी क्रम से समन्वय होने के कारण **यथासंख्य अलंकार** है जिसका लक्षण इस प्रकार है –

"यथासंख्य क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः ।"[४]

अर्थात् क्रम से कहे हुए पदार्थों का उसी क्रम से समन्वय होने पर **यथासंख्य अलंकार** होता है ।

एक उदाहरण और द्रष्टव्य है –

---

१. भट्टिकाव्य ८/५८

२. वही ८/६१

३. वही १०/४४

४. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १६३, पृ० ४६६

"विद्रुममणिकृतभूषा
मुक्ताफलनिकटरञ्जिताऽऽत्मानः ।
बभुरुदकनागभग्ना
वेलातटशिखरिणो यत्र ।।" [1]

अर्थात् जिस समुद्र तट पर प्रवाल और मणियों के अलंकार धारण करने वाले, मोती और फलों के समूहों से अपने को उपरञ्जित करने वाले और जल तथा हाथियों से भग्न होने वाले समुद्र तट और पर्वत शोभित हुए थे । राम और लक्ष्मण के साथ वानरों की सेना ने समुद्र को माया की तरह जाना ।

यहाँ पर प्रवाल और मणियों से शोभित समुद्र और मोती तथा फलों से शोभित पर्वत का उसी क्रम से समन्वय होने से **यथासंख्य अलंकार** है ।

परिकर :–

"विशेषणैर्यत्साकूतैरुवितः परिकरस्तु सः ।" [2]

अर्थात् अभिप्राययुक्त विशेषणों द्वारा जो किसी बात का कथन करना है वह **परिकर अलंकार** कहलाता है ।

महाकवि भट्टि ने इस अलंकार में भी अपनी कुशलता दिखाई है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

"एष शोकच्छिदो वीरान् प्रभो! सम्प्रति वानरान् ।
धराशैलसमुद्राणामन्तगान् प्रहिणोम्यहम् ।।" [3]

सुग्रीव की उक्ति है – "हे स्वामिन्! यह मैं आपका दास सुग्रीव अभी पृथ्वी, पर्वत तथा समुद्र की सीमा तक जाने वाले, आपके शोक को दूर कर देने वाले वानरों को भेजता हूँ ।

यहाँ पर पृथ्वी, पर्वत तथा समुद्रों की सीमा तक जाने वाले इन अभिप्राययुक्त विशेषणों के द्वारा कथन होने से **परिकर अलंकार** है ।

अशोक वाटिका में भयभीत सीता जी का वर्णन करते हुए कवि ने इस अलंकार का प्रयोग किया है –

---

१. भट्टिकाव्य १०/५७

२. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० १८२, पृ० ५२३

३. भट्टिकाव्य ७/२७

"तां पराजयमानां स प्रीते रक्ष्यां दशाऽऽननात् ।
अन्तर्दधानां रक्षोभ्यो मलिनां म्लानमूर्धजाम् ।।" [१]

रावण की प्रीति से विमुख होती हुई, रावण से रक्षा करने योग्य, राक्षसों से अपने आपको छिपाती हुई, मलिन और मलिन केशों से युक्त सीता जी को हनुमान् ने देखा ।

यहाँ पर अन्तर्दधानां, मलिनां, म्लानमूर्धजां इत्यादि विशेषणों के द्वारा सीता जी का कथन किया जाने से **परिकर अलंकार** है ।

सीता जी द्वारा रावण के प्रति कहे गए इन वाक्यों में **परिकर अलंकार** है –

"कुतोऽधियास्यसि क्रूर! निहतस्तेन पत्रिभिः ?
न सूक्तं भवताऽत्युग्रमति रामं मदोद्धतं! ।।" [२]

अर्थात् अरे निष्ठुर! रामजी द्वारा बाणों से प्रहार किया जाता हुआ तू कहाँ जायेगा ? अरे मदोद्धत! तूने अत्यन्त उग्र रूप से रामजी का अतिक्रमण करके 'अधन्य' इत्यादि उचित नहीं कहा ?

यहाँ पर रावण के लिए क्रूर, भदोद्धत इन अभिप्राययुक्त विशेषणों का प्रयोग होने से परिकर अलंकार है ।

उदात्त :–

"उदात्तं वस्तुनः सम्पत् ।" [३]

अर्थात् वस्तु की समृद्धि का वर्णन **उदात्त अलंकार** कहलाता है । भट्टि द्वारा प्रयुक्त इस अलंकार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

"पृथुगुरुमणिशुक्तिगर्भभासा
ग्लपितरसातलसंभृताऽन्धकारम् ।
उपहतरविरश्मिवृत्तिमुच्चैः
प्रलघुपरिप्लवमानवज्रजालैः ।।"

अर्थात् राम और लक्ष्मण के साथ वानरों की सेना बड़ी और अपरिच्छेद्य मोतियों से युक्त सीपियों के गर्भ

---

१. भट्टिकाव्य ८/७१

२. वही ३/६०

३. वही १०/५३

की कान्ति से पाताल में बढ़े हुए अन्धकार को नष्ट करने वाले और ऊपर छोटे–छोटे तैरने वाले हीरों के समूह से सूर्य किरण को ताड़ित करने वाले समुद्र को महेन्द्र पर्वत के कुञ्ज से चली गई ।

यहाँ पर वस्तु की समृद्धि (मोती, सीपियाँ, हीरों के समूह) इत्यादि का वर्णन होने से **उदात्त अलंकार** है ।

सङ्कर :–

महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य में कई श्लोकों में एक ही स्थान पर कई अलंकारों का एक साथ प्रयोग किया है । जिन्हें हम **संङ्कर अलंकार** कहते हैं –

"अविश्रान्तिजुषामात्मन्यङ्गाङ्गित्वं तु सङ्करः ।" [1]

अर्थात् जो परस्पर निरपेक्ष स्वतन्त्र रूप से अलंकार न बनते हो, उनका **अङ्गाङ्गिभाव** होने पर **सङ्कर अलंकार** होता है ।

कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

"प्रग्राहैरिव पात्राणामन्वेष्या मैथिली कृतैः ।
ज्ञातव्या चेङ्गितैर्धर्म्यैर्ध्यायन्ती राघवाऽऽगमम् ।।" [2]

अर्थात् हे वानरों ! भिक्षुकों के समान वेष धारण कर तुम लोगों को सीता की खोज करनी चाहिए और धर्मपूर्ण चेष्टाओं से राम के आगमन की चिन्ता करने वाली सीता को पहचानना चाहिए ।

यहाँ पर **उपमा** तथा **काव्यलिङ्ग** अलंकार का अङ्गाङ्गिभाव **होने से सङ्कर अलंकार** है ।

[illegible] और अतिशयोक्ति से युक्त **सङ्कर अलंकार** देखिए –

"अभायत यथाऽर्केण सुप्रातेन शरन्मुखे ।
गम्यमानं न तेनाऽऽसीदगतं क्रामता पुरः ।।" [3]

जैसे कोहरा आदि के न होने से शरत् के आरम्भ में प्रातः काल को सुन्दर बनाने वाले सूर्य सुशोभित होते है, उसी तरह हनुमान् जी भी शोभित हुए एवम् आगे जाने योग्य मार्ग को आक्रमण करने वाले सूर्य के समान उन्होंने कुछ छोड़ा नहीं अर्थात् सभी मार्गों का आक्रमण कर लिया ।

---

१. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० २०७, पृ० ५५४

२. भट्टिकाव्य ७/४४

३. वही ८/२

काव्यलिङ्ग के साथ उत्प्रेक्षा का **सङ्कर** देखिए –

> "तविमत्तपमानोऽयमशक्यः सोढुमातपः ।
> आध्नान इव संदीप्तैरलातैः सर्वतो महः ।।" [१]

अर्थात् जले हुए अलावों (लुकारियों) से सर्वत्र बार–बार आघात करते हुए की तरह तीव्र रूप से ताप करता हुआ यह आतप (घाम) सहने लायक नहीं है ।

दीपक के साथ उत्प्रेक्षा का **सङ्कर** देखिए –

> "कान्तिं स्वां वहमानाभिर्यजन्तीभिः स्वविग्रहान् ।
> नेत्रैरिव पिबन्तीभिः पश्यतां चित्तसं हतीः ।।" [२]

अपनी शोभा को धारण करती हुई, अपने शरीर का कामियों को सौंपती हुई और देखने वालों के मन–समुदाय को नेत्रों से पीती हुई के समान दिव्य स्त्रियों से व्याप्त रावण के भवन को हनुमान् जी गए ।

एकादश सर्ग में कवि ने **श्लेष** और **उपमा** का एक साथ सुन्दर प्रयोग किया है –

> "सुखाऽवगाहानि युतानिलक्ष्म्या
> शुचीनि संतापहराण्युरूणि ।
> प्रबुद्धनारीमुखपङ्कजानि
> प्रातः सरांसीव गृहाणि रेजुः ।।" [३]

अर्थात् प्रातः काल में सुख से प्रवेश किये जाने योग्य, लक्ष्मी से सम्पन्न, पवित्र, धूप आदि के सन्ताप को हरने वाले, विशाल, निद्रारहित या विकसित स्त्रियों के मुखरूप कमलों से युक्त भवन सरोवरों के समान सुशोभित हुए ।

यहां पर **प्रबुद्धनारीमुखपङ्कजानि** यह श्लिष्ट पद है जिसका **गृहपक्ष में** – निद्रारहित अर्थात् जगी हुई स्त्रियों के मुख रूप कमल तथा **सरः पक्ष में** – विकसित स्त्रियों के मुख रूप कमलों से युक्त अर्थ है ।

तथा **सरांसीव** पद में उपमा अलंकार है । इस प्रकार यहां **सङ्कर अलंकार** है ।

---

१. भट्टिकाव्य ८/१५

२. वही ८/४६

३. वही ११/३४

संसृष्टि :-

"सेषा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः ।" [१]

अर्थात् अलंकारों की काव्य या वाक्य में भेद अर्थात् परस्पर निरपेक्ष रूप, से जो स्थिति है, वह संसृष्टि अलंकार मानी जाती है ।

सङ्कर अलंकार में अलंकारो की **'नीरक्षीरन्यायेन'** परस्पर सापेक्ष रूप से स्थिति होती है जबकि संसृष्टि में **'तिलतण्डुलवत्न्यायेन'** निरपेक्ष रूप से अलंकारों की स्थिति होती है ।

भट्टिकाव्य में इसका उदाहरण द्रष्टव्य है –

"हृदयोदङ्कसंस्थानं कृतान्ताऽऽनायसन्निभम् ।
शरीराऽऽखनतुण्डाऽग्रं प्राप्याऽमुं शर्म दुर्लभम् ।।" [२]

अर्थात् छाती को खींचने वाले संडासी के समान, यमराज के जालसदृश और शरीर के फाड़ने वाले मुख के अग्रभाग से युक्त इस पक्षी को पाकर (हम वानरों का) सुख दुष्प्राय है ।

इस श्लोक में उपमा, रूपक तथा अनुमान अलंकार का निरपेक्ष रूप से प्रयोग होन से **संसृष्टि अलंकार** है ।

एक और उदाहरण दशम सर्ग का देखिए –

"अथ नयनमनोहरोऽभिरामः
स्मर इव चित्तभवोऽप्यवामशीलः ।
रघुसुतमनुजो जगाद वाचं
सजलघनस्तनयित्नुतुल्यघोषः ।।" [३]

श्लोक का अर्थ इस प्रकार है – चन्द्रदर्शन के अनन्तर आँखों को आनन्द देने वाले, सुन्दर कामदेव के समान चित्त में स्थित होते हुए भी अप्रतिकूल स्वभाव वाले तथा जल से भरे हुए घने मेघ के सदृश शब्द से युक्त लक्ष्मण जी ने रामचन्द्र जी को ऐसी वाणी कही ।

यहाँ पर **स्मरइव** में उपमा, **चित्तभवोऽपीत्यत्र** में श्लेष, चित्त में स्थित होने पर भी अवामशील अर्थात्

---

१. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, दशम उल्लास, सू० २०६, पृ० ५५२

२. भट्टिकाव्य ७/८३

३. वही १०/७१

अप्रतिकूल स्वभाव वाले में **विरोध अलंकार** है । इस प्रकार तीन अलंकारों का **तिलतण्डुलन्यायेन** प्रयोग होने से **संसृष्टि अलंकार** है ।

इस प्रकार यहाँ 'भट्टिकाव्य' में प्रयुक्त मुख्य–मुख्य अलंकारों के इस संक्षिप्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महाकवि भट्टि का अलंकार ज्ञान बहुत ही विस्तृत था । उन्होंने उदात्त, परिकर इत्यादि कम प्रयुक्त होने वाले अलंकारों का भी सफल प्रयोग किया है ।

दशम सर्ग में **'सौन्दर्य ही अलंकार है'** इस पक्ष को अपनाकर किया गया अलंकारों का सन्निवेश निश्चय ही अनुकरणीय है । विभिन्न उदाहरणों के द्वारा यमक अलंकार का जैसा सुन्दर वर्णन इस काव्य में उपलब्ध होता है, वैसा अन्य काव्यों में नहीं ।

महाकवि भट्टि का शिल्प

भाषा–शैली :–

कवि की काव्य–रचना के उद्देश्य के अनुरूप ही उसके काव्य का कलेवर निर्मित होता है । महाकवि भट्टि का मूल उद्देश्य रामकथा निरुपण के साथ पाठकों को व्याकरण के नियमों का ज्ञान प्रदान करना है । व्याकरण की भाषा रुक्ष एवं नीरस तथा काव्य की भाषा मधुर और आलंकारिक हुआ करती है । कवि के उद्देश्य के अनुरूप ही व्याकरण–शिक्षा प्रधान भट्टिकाव्य की भाषा का प्रवाह अवरुद्ध हो गया है । व्याकरण के नियमों से आबद्ध कवि की भाषा में हृदयावर्जन की वह चारुता एवं कोमलता नहीं आ सकी है, फिर भी कवि ने अपने २२ सर्गीय काव्य को चार काण्डों में विभाजित कर काव्य के समस्त तत्त्वों का समावेश कर उसमें चारुता एवं भावप्रेषण का प्रयत्न किया है ।

दसवें सर्ग में अलंकारों की छटा दर्शनीय है । इस प्रसन्न काण्ड के **शब्द** और **अर्थ** की रमणीयता, पाठकों को मुग्ध कर लेती है । ११वें सर्ग में राक्षसों की केलि के सरस चित्रण में **माधुर्य गुण** का प्रदर्शन किया गया है । १२वें सर्ग में रावण और विभीषण के वार्तालाप के माध्यम से नीति, धर्म, संस्कृति और प्राकृत भाषा के प्रयोग के माध्यम से भाषा–शैली का निरुपण किया गया है ।

कवि ने प्रथम चार सर्गों में व्याकरण शिक्षा के माध्यम से कथा–विस्तार में व्याकरण के नियमों की शिक्षा दी है, फिर भी भाषा और शब्दों की चारुता दर्शनीय है ।

शब्द–प्रयोग :–

महाकवि भट्टि का **शब्द–ज्ञान** प्रशंसनीय है । उन्होंने अवसरानुकूल शब्दरूपों का यथोचित्त प्रयोग किया है । उदाहरणार्थ – रामजन्म के लिए सत्तात्मक शब्द **भू** को **सम्** उपसर्ग के साथ नियोजित कर **"राम सम्भवः'** के माध्यम से राम के ब्रह्मतत्व को प्रतिपादित किया है ।

द्वितीय सर्ग के सीता–विवाह प्रसङ्ग को **सीता–परिणय** तथा तृतीय सर्ग में वनवास काल की व्यञ्जना एवं अभिव्यक्ति को **राम–प्रवास** नाम दिया है ।

भट्टि के **शब्द–प्रयोग के** कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं –

१. प्रथम सर्ग में अयोध्यापति दशरथ के कार्य एवं गुण के अनुरूप प्रसङ्गानुसार **नरपालक** अर्थ में **नृप** शब्द का प्रयोग ११वें, १२वें श्लोक में किया गया है –

"ऐहिष्टं तं कारयितुं कृताऽऽत्मा, क्रतुं **नृपः** पुत्रफलं मुनीन्द्रम् ।
ज्ञाताऽऽशयस्तस्य ततो व्यातानीत्, स कर्मठः कर्मसुताऽनुबन्धम् ।।"
"रक्षांसि वेदीं परितो निरास्थदङ्गान्ययाक्षीदमितः प्रधानम् ।
शेषाण्यहौषीत् सुतसम्पदे च, वरं वरेण्यो **नृपतेरमार्गीत्** ।।"

२. प्रथम सर्ग के ही १७वें श्लोक में राजा के लिए **क्षितीन्द्र** शब्द का प्रयोग है –

"ततोऽभ्यगाद् गाधिसुतः **क्षितीन्द्रं** रक्षोभिरभ्याहतकर्मवृत्तिः ।
रामं वरीतुं परिरक्षणार्थं राजाऽऽर्जिहत्तं मधुपर्कपाणिः ।।"

३. प्रजारंजन अर्थ में **राजा** शब्द का प्रयोग किया गया है ।

४. राम के लिए कविवर भट्टि ने प्रसङ्गानुकूल अलग–अलग विशेषणों का प्रयोग किया है । उदाहरणार्थ – राम की सर्व व्यापकता हेतु **राम** शब्द, वीरता हेतु **रघुव्याघ्र, रघुसिंह** आदि का प्रयोग है –

"इषुमति **रघुसिंहे** दन्दशूकाञ्जिघांसौ
धनुरारीभिरसह्यं मुष्टिपीडं दधाने ।
व्रजति पुरतरुण्यो बद्धचित्राऽङ्गुलित्रे
कथमपि गुरुशोकान्मा रुदन्माङ्गलिम्यः ।।" [१]

कुलोचित आचरण के प्रसङ्ग में **राघव**, तथा **काकुत्स्थ** २०/८, शब्द का प्रयोग है –

"तान् प्रत्यवादीदथ **राघवोऽपि** 'अथेप्सितं प्रस्तुतकर्म धर्म्यम् ।
तपोमरुद्भिर्भवतां शराऽग्निः संधुक्ष्यतां नोऽरिसमिन्धनेषु ।।" [२]

५. इसी प्रकार रावण के लिए **वीरता** के प्रसङ्ग में शक्रारि, शक्रजित, सुरारि का, **कुलाचरण** में पौलस्त्य का, **क्रूर** रूप में **दशग्रीव, दशानन** व **राक्षसेश्वर** शब्द का प्रयोग किया गया है ।

६. इन्द्र के लिए उनके कार्यानुरूप महेन्द्र, गोत्रभिद्, शिव के लिए **त्रयम्बक** –

"वसूनि तोयं घनवद्व्यकारीत् सहाऽऽसनं **गोत्राभिदा**ध्यवात्सीत् ।
न **त्रयम्बका**दन्यमुपास्थिताऽसौ यशांसि सर्वेषु भृतां निरास्थत् ।।" [३]

---

1. भट्टिकाव्य १/२६
2. वही २/२४
3. वही १/३

इसके अतिरिक्त इन्द्र के लिए शतमन्यु १/५, मघवा, देवराज, सुरेश इत्यादि शब्दों का भी प्रयोग किया गया है ।

७. हनुमान् के लिए पवनसुत, वातात्मज, मारुतिनन्दन इत्यादि शब्दों का भावानुकूल प्रयोग किया गया है ।

८. कहीं-कहीं संज्ञा शब्दों को प्रत्ययों से संयुक्त कर उन्हें प्रचलित शब्दों का पर्याय बनाकर प्रयुक्त किया गया है । जैसे – भ्रमर के लिए मधुलेहि, बहेलिया हेतु मृगावित् इत्यादि ।[1]

९. भट्टि ने कुछ ऐसे शब्दकोषीय शब्दों का प्रयोग किया है, जिनका प्रयोग प्रायः विरले ही होते हैं जैसे – समूह के लिए कदम्बक –

"विचित्रमुच्चैः प्लवमानमारात्कुतूहलं त्रस्नु ततान तस्य ।
मेघाऽत्ययोपातवनोपशोभं कदम्बकं वातमजं मृगाणाम् ।।"[2]

शस्त्र प्रसिद्ध के लिए अस्त्रचुंचु –

"गाधेयदिष्टं विरसं रसन्तं रामोऽपि मायाचणमस्त्रचुञ्चुः ।
स्थास्नुं रणे स्मेरमुखो जगाद मारीचमुच्चैर्वचनं महार्थम् ।।"[3]

समाप्ति के लिए निष्ठा शब्द –

"निष्ठां गते दत्त्रिमसभ्यतोषे,
विहित्रिमे कर्मणि राजपत्न्यः ।
प्राशुर्हुतोच्छिष्टमुदारवंश्यास्तिस्त्र
प्रसोतुं चतुः सुपुत्रान् ।।"[4]

मारने हेतु तृणेढु शब्द –

"आख्यन्मुनिस्तस्यशिवं समाधेर्विघ्नन्ति रक्षांसि वने ऋतुंश्च ।

---

१. "दत्तावधानं मधुलेहिगीतौ प्रशान्तचेष्टं हरिणं जिघांसुः ।
आकर्णयन्नुत्सुकहंसनादाँल्लक्ष्ये समाधिं न दधे मृगावित् ।।"

२. भट्टिकाव्य २/१७

३. वही २/३२

४. वही १/१३

तानि द्विषद्वीर्यनिराकरिष्णुस्तृणेढु रामः सह लक्ष्मणेन ।।"[१]

पहुँचने (पास आने) के अर्थ में **डुढौके** ।

"तं विप्रदर्श कृतघातयत्ना यान्तं वने रात्रिचरी **डुढौके** ।
जिघांसुवेदं धृतभासुराऽस्तस्तां ताडकाऽऽख्यां निजघान रामः ।।"[२]

१०. महाकवि भट्टि ने कहीं–कहीं तो केवल क्रिया शब्दों के प्रयोग द्वारा ही सम्पूर्ण श्लोक की रचना कर स्पष्ट भावाभिव्यक्ति की है –

"भ्रेमुर्क्वल्गुर्ननृतुजक्षुर्जुगः समुत्पुप्लुविरे निषेदुः ।
आस्फोटयाञ्चक्रुरभिप्रणेदू रेजुर्ननन्दुर्विर्ययुः समीयुः ।।"[३]

११. सामान्य अर्थ के लिए प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्दों का प्रयोग भट्टि ने विशेष रूप में किया है । जैसे – बन्धुता (बन्धवजन, बन्धुओं)

"ताः सान्त्वयन्ती भरतप्रतीक्षा तं **बन्धुता** न्यक्षिपदाशु तैले ।
दूतांश्च राजाऽऽत्मजमानिनीषुः प्रास्थापयन्मन्त्रिमतेन यूनः ।।"[४]

कदुष्णम् (मन्दोष्णम्) –

"सूतोऽपि गङ्गासलिलैः पवित्वा सहाऽश्वमात्मानमनल्पमन्युः ।
ससीतयो राघवयोरधीयन् श्वसन्**कदुष्णं** पुरमाविवेश ।।"[५]

१२. "रावणवध" प्रधानतया व्याकरण प्रधान महाकाव्य होने के कारण इसकी नाद–सौन्दर्य की चारुता कुछ दबी सी प्रतीत होती है फिर भी यत्र–तत्र सूक्तियों का भी सफल प्रयोग दृष्टिगत होता है –

१. मानिनी संसहतेन्यसङ्गमम् । २/६
२. प्रज्ञा तु मंत्रेऽधिकृता न शौर्यम् । १२/२२
३. रिक्तस्य पूर्णेन वृथा विनाशः । १२/४३

---

१. भट्टिकाव्य १/१६
२. वही २/२३
३. वही १३/२८
४. वही ३/२३
५. वही ३/१८

४. मुर्खातुरः पथ्यकटूनश्नन्,

यत्सा मयाऽसौ भिषजां न दोषः । १२/८२

५. प्राज्ञास् तेजस्विनः सम्यक् पश्यन्ति च वदन्ति च । १८/६

६. सर्वस्य जायते मानः स्व हिताच् च प्रमाद्यति ।

वृद्धौ भजसि चाऽपथ्यं नरो येन विनश्यति ।।" १८/८

अष्टादश सर्ग में कई श्लोको में कवि ने विभीषण के माध्यम से सुन्दर–सुन्दर उक्तियों को व्यक्त किया है –

"लेढि भेषज–वन् नित्यं यः पश्यानि कदून्यपि ।
तदर्थ सेवते चाऽऽप्तान् कदाचिन् न स सीदति ।।" १८/७

अर्थात् जो कडुआ एवं हितकारी भी उपदेश को औषध के समान नित्य ही उपयोग में लाता है और उसके लिए विश्वासपात्रों की सेवा करता है, वह कभी भी दुःख नहीं पाता है ।

दैव विपत्ति में भी जागता रहता है – अहो जागर्ति कृच्छ्रेषु दैवं । १८/११

दशम सर्ग में – "महिमा विपत्ति बिना नहीं होती है" कितनी स्वाभाविक सूक्ति है –

"न भवति महिमा विना विपत्ते ।" १०/६३

महाकवि भट्टि ने १३वें सर्ग को इस रूप में लिखा है कि वह **संस्कृत** और **प्राकृत** दोनों रूपों में पढ़ा जा सके । इससे उनकी भाषा पर अच्छी पकड़ का ज्ञान होता है । उदाहरण के लिए इस पद्य में संस्कृत तथा महाराष्ट्री प्राकृत का एक साथ प्रयोग दर्शनीय है –

"तुङ्ग–मणि–किरणं–जालं गिरिजलसंघदृबद्धगम्भीररवम् ।
चारुगुह्यविवरसमं सुरपुरसमममरचारणसुसंरावम् ।।" १३/३६

अर्थात् वह समुद्र उस अमरावती के समान प्रतीत हो रहा था, गन्धर्वो के गान हो रहे हैं, उसमें अनेक बड़ी–बड़ी मणियों के किरणें टकराने से गम्भीर ध्वनि वाली अनेक सुन्दर गुफाओं के छिद्रों की शालाएं थीं ।

यह पद्य **संस्कृत** और **प्राकृत** दोनों रूपों में ऐसा ही रहेगा । यह त्रयोदश सर्ग इस प्रकार के अनूठे रचना–कौशल की दृष्टि से और समासान्त पदावली की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ।

महाकवि भट्टि की शैली में कलात्मकता अधिक है, जो कि कालिदास के परवर्ती कवियों में विशेष रूप

से पायी जाती है । भट्टि मूलतः वैयाकरण तथा आलंकारिक है, अपनी इसी मूल प्रवृत्ति को उन्होंने काव्यात्मक ढंग से रखकर अपने अनूठेपन का परिचय दिया है ।

भट्टि की छन्द योजना :–

रावणवध प्रणेता महाकवि भट्टि ने अपनी सोलह सौ श्लोकीय काव्य–कृति में **वार्णिक** और **मात्रिक** दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है, जिसमें **मात्रिक** छन्द **अनुष्टुप्** की संख्या आधे से अधिक सर्गों में की गयी है । भट्टि ने अपने महाकाव्य में **स्कन्धक** छन्द का सुन्दर प्रयोग किया है, जिस पर **प्रवरसेन** के **सेतुबन्ध** का प्रभाव है ।

कवि ने अपने महाकाव्य में कुल २२ छन्दों का प्रयोग किया है –

१. अनुष्टुप्, २. उपजाति, ३. आर्या, ४. पुष्पिताग्रा, ५. इन्द्रवज्रा, ६. उपेन्द्रवज्रा, ७. द्रुतविलम्बित, ८. प्रमिताक्षरा, ६. तोटक, १०. वंशस्थ, ११. तनुमध्या, १२. प्रहर्षिणी, १३. मालिनी, १४. सुन्दरी, १५. औपच्छन्दसिक, १६. ललित, १७. नन्दन, १८. प्रहरणकलिका, १६. मन्दाक्रान्ता, २०. रुचिरा, २१. स्त्रग्धरा, २२. शार्दूलविक्रडित ।

कवि का प्रिय छन्द **अनुष्टुप्** है । इस छन्द का प्रयोग इन्होंने १२१५ बार किया है । इसके अतिरिक्त उपजाति २७० बार, आर्या ५० बार तथा पुष्पिताग्रा ३० बार प्रयुक्त है । अन्य पदों का अल्प प्रयोग है ।

कवि ने काव्यशास्त्रीय परम्परा का निर्वाह करते हुए एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग किया है और सर्ग के अन्त में आगामी कथा को सूचित करने में उसे बदल दिया है –

"नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।।" [१]

अपने इसी छन्द–प्रयोग कौशल को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने १०वें सर्ग में कुल २१ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया जिसमें **पुष्पिताग्रा** छन्द का प्रयोग बहुतायत से किया गया है ।

२२ सर्गीय इस महाकाव्य के १५ सर्गों में अनुष्टुप्, ५ सर्गों में उपजाति, तथा एक सर्ग में **आर्या** छन्द का प्रयोग किया गया है । **उपजाति** का प्रयोग रामजन्म, सीता विवाह एवं राम वनगमन तथा राक्षसों की कामक्रीडा और विभीषण की शरणागति प्रसङ्ग में किया गया है ।

आर्या छन्द **सेतुबन्धन** प्रसङ्ग में प्रयुक्त है तथा **अनुष्टुप्** का प्रयोग काव्य के अन्य समस्त कथा प्रसङ्गों

---

१. साहित्य दर्पण, आचार्य विश्वनाथ

में किया गया है ।

यद्यपि कविवर भट्टि ने प्रसङ्गानुकूल छन्दों का प्रयोग किया है, फिर भी यत्र–तत्र शास्त्रीय काव्य–परम्परा के विपरीत भी प्रयोग प्राप्त होते हैं ।

भट्टिकाव्यगत छन्द–विवरण सर्गानुक्रम में निम्नवत् है :–

१. **प्रथम सर्ग** :– आदि श्लोक में 'रुचिरा' वार्णिक छन्द, पुनः १ से २५ उपजाति छन्द । कहीं–कहीं मध्य में **इन्द्रवज्रा** एवं **उपेन्द्रवज्रा** छन्द पृथक् में प्राप्त होते हैं । अन्त के २६वें और २७वें श्लोक में **मालिनी** छन्द का प्रयोग है ।

२. **द्वितीय सर्ग** :– इसमें प्रायः **उपजाति** छन्द है, किन्तु मध्य में कहीं–कहीं **उपेन्द्रवज्रा** भी है । अन्तिम श्लोक मालिनी छन्द में है ।

३. **तृतीय सर्ग** :– इसके आदि एवं मध्य में कही **उपजाति**, तो कहीं **इन्द्रवज्रा** है । अन्त के ५६वें श्लोक में मालिनी का प्रयोग है ।

४. **चतुर्थ सर्ग** :– इसके प्रारम्भ में **अनुष्टुप्** का भेद स्वरूप **पथ्यावक्त्र** छन्द है । अन्त में ४४वें ४५वें श्लोक में **पुष्पिताग्रा** छन्द है ।

५. **पञ्चम सर्ग** :– प्रारम्भ में **अनुष्टुप्** एवं अन्तिम १०४वें श्लोक में **पुष्पिताग्रा** है ।

६. **षष्ठ सर्ग** :– प्रारम्भ के श्लोक **अनुष्टुप्** छन्द तथा अन्तिम श्लोक **मन्दक्रान्ता** छन्द से युक्त है ।

७. **सप्तम सर्ग** :– प्रारम्भ में **अनुष्टुप्** एवं अन्तिम श्लोक **पृथ्वी** छन्द में है ।

८. **अष्टम सर्ग** :– प्रारम्भिक **अनुष्टुप्** तथा अन्तिम १३२वां श्लोक **अश्वललित** छन्द में है ।

९. **नवम सर्ग** :– **प्रारम्भ से लेकर १३६वें श्लोक तक अनुष्टुप्** तथा अन्त में **पुष्पिताग्रा** छन्द है ।

११. **एकादश सर्ग** :— इस सर्ग में प्रायः उपजाति एवं **इन्द्रवज्रा** छन्द प्रयुक्त हैं । कहीं–कहीं मध्य में

१२. **द्वादश सर्ग** :— इसमें उपजाति छन्द की बहुलता है, फिर भी बीच–बीच में **इन्द्रवज्रा** एवं उपेन्द्रवज्रा का प्रयोग किया है । अन्त में ८६–८७ प्रहरणकलिका छन्द है ।

१३. **त्रयोदश सर्ग** :— प्रथम श्लोक से लेकर सम्पूर्ण सर्ग में **आर्यागीति** (मात्रिक छन्द) प्रयुक्त है । जबकि २६ से २८ तक उपजाति का प्रयोग हुआ है ।

१४. **चतुदर्श सर्ग** :— प्रारम्भिक श्लोकों में **इन्द्रवज्रा** एवं **उपेन्द्रवज्रा** के मिश्रित स्वरूप वाला उपजाति छन्द दृष्टिगत होता है । मध्य में **अनुष्टुप्** तथा अन्त में **उपजाति** पुनः प्रयुक्त है ।

१५. **पञ्चदश सर्ग** :— प्रारम्भिक श्लोक में **उपजाति** एवं अन्तिम में **मालिनी** छन्द प्रयुक्त है ।

१६. **षोडश सर्ग** :— शुरू में **अनुष्टुप्** पुनः अन्त के श्लोक में **शार्दुलविक्रडित** छन्द है ।

१७. **सप्तदश सर्ग** :— प्रारम्भ में अनुष्टुप् तथा अन्त का श्लोक **प्रहर्षिणी** छन्द में है ।

१८. **अष्टादश सर्ग** :— इस सर्ग में प्रारम्भिक श्लोक **अनुष्टुप्** छन्द के हैं तथा अन्तिम श्लोक **उपजाति** छन्दोनिबद्ध है ।

१६. **ऊनविंश सर्ग** :— प्रारम्भ के श्लोक **अनुष्टुप्** तथा अन्तिम श्लोक **मन्द्राक्रान्ता** छन्द में निबद्ध है ।

२०. **विशं सर्ग** :— प्रारम्भिक श्लोक **अनुष्टुप्** छन्द का है किन्तु अन्त में २१वां श्लोक "नर्दटक" छन्द में है । साथ ही श्लोक संख्या २२ एवं २३ **प्रहर्षिणी** छन्द में है ।

२१. **द्वाविश सर्ग** :— यह सर्ग दशम सर्ग जैसे विविध छन्दों से निबद्ध है । प्रारम्भिक श्लोक १–२३ तक अनुष्टुप् छन्द में है और अन्त में क्रमशः २४ और २५ उपजातिवृत में २६ एवं २७ प्रहर्षिणी तथा २८वां स्त्रग्धरा, २६वां शार्दुलविक्रडित, ३०वां द्रुतविलम्बित, ३१वां औपश्छन्दसिक, ३२वां पुष्पिताग्रा, ३३ एवं ३४वां पथ्यावक्त्र (जिसे अनुष्टुप् श्लोक तथा पद्य भी कहते हैं) [१] छन्द में है । अग्रिम ३५वें श्लोक में चितचमत्कृति है । [२]

---

१. भट्टिकाव्य, व्याख्याकार–श्री गोपाल शास्त्री १४/२२ सर्ग, १६८१ श्लोक सं० ३३ व्याख्या भाग

२. डॉ० सत्यपाल नारंग, भट्टिकाव्य एक अध्ययन (अंग्रेजी में) छन्दोविवेचन, पृ० ८४, १६६६

इस प्रकार महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य में विविध छन्दों का प्रयोग कर अपनी छन्द–विषयक ज्ञान

भट्टि की गुण योजना :–

भट्टि की गुण योजना पर विचार करने से पहले गुण के स्वरूप के विषय में संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है । आचार्य मम्मट का गुण–लक्षण इस प्रसङ्ग में उचित जान पड़ता है –

"ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युश्चला स्थितयो गुणाः ।।" [१]

अर्थात् आत्मा के शौर्यादि धर्मो के समान मुख्य रस के जो अपरिहार्य तथा उत्कर्षधायक धर्म है, वे गुण कहलाते हैं । कहने का आशय यह है कि शौर्यादि आत्मा के ही धर्म होते हैं, शरीर के नहीं, फिर भी कहीं–कहीं शौर्यादि आत्मगुणों के योग्य शरीर के आकार–प्रकार को देखकर 'इसका शरीर ही शूरवीर है, ऐसा कह दिया जाता है और कहीं शूरवीर व्यक्ति में भी शरीर की लघुता के कारण 'यह अशूर है' इस प्रकार भ्रान्त लोग व्यवहार करते हैं उसी प्रकार माधुर्यादि गुण रस के ही धर्म होते हैं, वर्णो के नहीं, परन्तु मधुर आदि गुणों के व्यञ्जक तथा अमधुरादि रसों के अद्भूत वर्णों में सुकुमारता आदि के कारण माधुर्यादि का तथा मधुर आदि के अंगभूत उन वर्णो के केवल कठोर होने से रस की मर्यादा न समझने वाले भ्रान्त व्यक्ति, उनमें अमाधुर्यादि का व्यवहार करते हैं । अतएव मम्मट ने आगे कहा है –

"माधुर्यादयो रसधर्माः समुचितैर्वर्णैर्व्यज्यन्ते न तु वर्णमात्राश्रया ।" [२]

अर्थात् मधुर आदि रसों के अङ्गभूत उन वर्णों के असुकुमार होने से रस की मर्यादा को न समझने वाले भ्रान्त व्यक्ति उनके अमाधुर्यादि का व्यवहार करते हैं । इसलिए यह समझना आवश्यक है कि गुण माधुर्यादि वस्तुतः रस के धर्म है वे वर्णो से अभिव्यक्त होते हैं । केवल वर्णो के आश्रित रहने वाले नहीं हैं ।

१. गुण–भेद :–

यद्यपि आचार्य वामन ने गुणों की संख्या दस बतायी है, लेकिन आचार्य मम्मट ने वामन–प्रतिपादित दस गुणों का खण्डन करते हुए – १. माधुर्य, २. ओज तथा ३. प्रसाद, गुणों के ये तीन भेद स्वीकार किए है –

---

१. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, अष्टम उल्लास, सू० ८६, पृ० ३८०

२. वही पृ० ३८०

"माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रस्ते न पुनर्दशः !"[1]

अब हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि कविवर भट्टि ने इन तीनों गुणों का प्रयोग अपने महाकाव्य में किस प्रकार किया है –

१. माधुर्य गुण :–

सीता के विरह में दुःखी श्रीराम के विरह–वर्णन में तथा एकादश सर्ग में राक्षसों के केलि–चित्रण में माधुर्य गुण की योजना है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

"शशाङ्कनाथाऽपगमेन धूम्रां
मूर्च्छापरीतामिव निर्विवेकाम् !
ततः सखीव प्रथिताऽनुरागा
प्राबोधयद् द्यां मधुराऽरूणश्रीः ।।"[2]

चन्द्रमा रूपी पति के वियोग में मलिन, मुर्च्छित के समान निश्चय को जानने में असमर्थ, आकाश की, लालिमा को प्रकाशित करने वाली सखी की तरह सौन्दर्यशालिनी सूर्य–लक्ष्मी ने प्रकाशित किया ।

उपर्युक्त श्लोक **उपमा अलंकार** से सुशोभित **माधुर्य गुण** से ओत–प्रोत है ।

"दुरुत्तरे पङ्कं इवाऽन्धकारे
मग्नं जगत् सन्ततरश्मिरज्जुः ।
प्रनष्टमूर्तिप्रविभागमुद्यन्
प्रत्युज्जहारेव ततो विवस्वान् ।।"[3]

२. ओज गुण :–

वीर रस में रहने वाला चित्त के विस्तार रूप दीप्तत्व का जनक **ओज गुण** कहलाता है ।

चूंकि भट्टिकाव्य **वीररस प्रधान** काव्य है । अतः इसमें **ओज गुण** का प्रयोग बहुधा प्राप्त होता है । लंकायुद्ध के प्रसङ्ग में हनुमान् द्वारा **अशोक वाटिका** भङ्ग के समय तथा **लंकादहन** इत्यादि प्रसङ्ग में

---

१. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, अष्टम उल्लास, सू० ८८, पृ० ३८८

२. भट्टिकाव्य ११/१६

३. वही ११/२०

प्रायः ओज **गुण** के दर्शन होते हैं ।[1]

अकेले एक ही वानर ने बहुसंख्यावाले वीर राक्षसों को परेशान कर दिया । उन्हें युद्ध से पराङ्मुख कर दिया–

'एकेन बहवः शूराः साऽऽविष्कारा: प्रमत्तवत् ।
वैमुख्यं चकृमे' त्युच्चैरुचु दर्शमुखाऽन्तिके ।।[2]

अक्षकुमार को हनुमान् जी ने वृक्षों से घायल कर दिया –

''शस्त्रैदिदेविषुं संख्ये दुद्यूषुः परिघं कपिः ।
आर्दिधिषुर्यशः कीर्तिमीर्त्सु वृक्षैरताडयत् ।।''[3]

चतुर्दश सर्ग में राक्षसी सेना के रणभूमि प्रस्थान के समय का वर्णन **ओज गुण** से ओत–प्रोत है –

''मृदङ्गा धीरमास्वेनुर्, हतैः स्वेने च गोमुखैः ।
घण्टाः शिशिञ्जिरे दीर्घं, जह्वादे पटहैर् भृशम् ।।''[4]

अर्थात् मृदङ्ग गम्भीर शब्द करने लगे, बजाये गये **गोमुख** नामक वाद्य शब्द करने लगे । घण्टे देर तक गूंजने लगे तथा नगारे खुब गरजने लगे ।

''तुरङ्गा पुस्फुटुर् भीताः, पुस्फुरुर् वृषभाः परम् ।
नार्यश, चुक्षुभिरे मम्लुर्, मुमुहुः शुशुचुः पतीन् ।।''[5]
''जगर्जुर् जहृषुः, शूरा रेजुस्, तुष्टुविरे परैः ।
बबन्धुरङ्गुलि त्राणि, सन्नेहुः परिनिर्ययुः ।।''[6]

वीर सैनिक गर्जने लगे, खुश हुए, चमकने लगे, दूसरों के द्वारा प्रशंसित हुए, हाथों में दस्ताने बांधने लगे, कवच पहनने लगे तथा रणाङ्गण में निकल पड़े ।

''लाङ्गूलैर् लोठयाञ्चक्रुस्, तलैर् निन्युश् च संक्षयम् ।

---

१. ''दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति ।'' काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, अष्टम उल्लास, सू० ६१, पृ० ३८६

२. भट्टिकाव्य ६/१५

३. वही /३२

४. वही १४/४

५. वही १४/६

६. वही १४/७

नखैश् च चकृतुः क्रुद्धाः पिपिषुश्च क्षितौ बलात् ।।"[1]

बन्दरों ने राक्षसों को पूछों से लपेटकर पृथ्वी पर गिरा दिया । हथेलियों से मारकर जान ले ली । नखों से काट डाला और क्रुद्ध होकर पृथ्वी पर गिराकर पीस डाला ।

"दिद्विषुर्, दुद्युवुश्, चच्छुश् चक्लमुः सुषुपुर्हताः ।
चखदिरे, चखादुश्च, विलेपुश्च रणे भटाः ।।"[2]

अर्थात् दोनों तरफ की सेनाएं संग्राम में परस्पर द्वेष करती थी, सामने आती थी, बाणों से भेद देती थी, हत होकर कराहती थी, सो जाती थी, वानरों से खा ली जाती थी तथा विलाप करती थी ।

कुम्भकर्ण इत्यादि वीरों के मारे जाने पर राक्षसराज रावण विलाप करने लगा जिसमें **ओज गुण** की स्पष्ट झलक है देखिए –

"पतिष्यति क्षितौ भानुः पृथिवी तोलयिष्यते ।
नभस्वान् भङ्क्षयते व्योम मुष्टिभिस् ताडयिष्यते ।।
इन्दोः स्यन्दिष्यते वह्निः, समुच्छोक्ष्यति सागरः ।
जलं धक्ष्यति तिग्मांशोः स्यन्त्स्यन्ति तमसां चयाः ।।
कुम्भकर्णो रणे पुंसा क्रुद्धः परिभविष्यते ।
संभावितानि नैतानि कदाचित् केनचिज् जने ।।"[3]

अर्थात् सूर्य पृथ्वी पर गिरेगा, पृथ्वी ऊपर फेंक दी जाएगी, वायु काठ के समान तोड़ दिया जायगा, आकाश मुक्के से मारा जाएगा, चन्द्रमा से आग बरसेगी, समुद्र सूख जाएगा, जल जलाएगा, सूर्य से अन्धकार समूह बरसेगा, क्रुद्ध हुआ कुम्भकर्ण रण में पुरुष से पराजित हो जाएगा । इन बातों की सम्भावना जनलोक में किसी ने कभी नहीं की है ।

उपर्युक्त सभी श्लोक ऐसे हैं जिनको पढ़ने मात्र से चित्त में एक प्रकार का रोमाञ्च उत्पन्न हो जाता है और उन्हीं के अनुरूप कठोर, क्लिष्ट वर्णो का भी प्रयोग किया गया है जो कि ओजगुण के व्यञ्जक तत्त्व माने जाते हैं ।[1]

---

१. भट्टिकाव्य १४/२६

२. वही १४/१०१

३. वही १६/१६–१८

३. प्रसाद गुण :–

"रावण–वध" का दशम सर्ग प्रधानतया **प्रसाद गुण** से पूर्ण है । इसके अतिरिक्त राम–जन्म, सीता–परिणय, राम–प्रवास, विभीषण शरणागति नामक सर्गों में **प्रसाद गुण** की ही प्रधानता है ।

द्वितीय सर्ग का प्रथम श्लोक ही **प्रसाद गुण** से ओत–प्रोत है, जिसमें शरद् ऋतु का वर्णन किया गया है–

"वनस्पतीनां सरसां नदीनां तेजस्विनां कान्तिभृतां दिशां चा ।
निर्याय तस्याः स पुरः समन्ताच्छ्रियं दधानां शरदं ददर्श ।।"

आचार्य मम्मट ने कहा है – जिस शब्द के श्रवण मात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाए, वह **प्रसाद गुण** माना जाता है ।

"श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ।।" [2]

इसी लक्षण को प्रकट करते हुए उपर्युक्त श्लोक का अर्थ इस प्रकार है – "रामचन्द्र जी ने अयोध्या से निकलकर चारों तरफ वृक्षों, तालाबों, नदियों, तेजोमय चन्द्र–तारादि वस्तुओं तथा निर्मल दिशाओं की शोभा को धारण करती हुई शरद् ऋतु को देखा ।

इसी द्वितीय सर्ग का यह बहु प्रसिद्ध श्लोक भी **प्रसाद गुण** का ही एक उत्कृष्ट उदाहरण है –

"न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं न पङ्कजं तद् यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ।।" [3]

राम–सीता–विवाह का वर्णन देखिए –

"हिरणमयी शाललतेव जङ्गमा च्युता दिवः स्थास्नुरिवाऽचिरप्रभा ।
शशाऽङ्गकान्तेरबिदेवताऽऽकृतिः सुता ददे तस्य सुताय मैथिली ।।" [4]

अर्थात् स्वर्णनिर्मित, चलायमान, शालवृक्ष की वल्लरी की भाँति आकाश से गिरी हुई, स्थिर विद्युत बेल की

---

१. योग आद्यतृतीयाभ्यामनत्ययो रेण तुल्ययोः ।
टादि शषौ वृत्तिदैर्ध्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ।। काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, अष्टम उल्लास सू० ९९, पृ० ३६४

२. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, अष्टम उल्लास, सू० १००, पृ० ३६४

३. भट्टिकाव्य २/१९

४. वही २/४७

तरह चन्द्रचपला की सुन्दरता की अधिष्ठात्री देवी के समान आकृति वाली जनक–नन्दिनी पुत्री को उनके (दशरथ के) पुत्र राम को दे दी ।

दशम सर्ग का १–२२ श्लोक **प्रसाद गुण** का उत्कृष्ट उदाहरण है जो कि **यमक अलंकार** के विभिन्न भेदों को भी प्रकट करता है । कतिपय उदाहरण –

"अवसितं हसितं प्रसितं, मुदा
विलसितं ह्रसितं स्मरभासितम् ।
न समदाः प्रमदा हतसंमदाः
पुरहितं विहितं न समीहितम् ।।" [१]

अर्थात् लंका में प्रवृत्त हास्य चला गया, हर्ष से कामोद्दीप्त श्रृङ्गार–विलास क्षीण हो गया, युवतियां गर्वयुक्त नहीं हर्षहीन हैं । अभीष्ट नगर लंका का हित भी नहीं किया गया ।

"न गजा नगजा दयिता, दयिता
विगतं विगतं ललितं ललितम् ।
प्रमदा प्रमदाऽऽमहता महता –
मरणं मरणं समयात् समयात् ।।" [२]

महेन्द्र पर्वत की शोभा का वर्णन देखिए –

"मधुकरिवरुतैः प्रियाध्वनीनां
सरसिरुहैर्दयिताऽऽस्यहास्यलक्ष्म्याः ।
स्फुटमनुहरमाणमादधानं
पुरुषपतेः सहसा परं प्रमोदम् ।।" [३]

अर्थात् सीताजी के शब्दों का भौरों के गुंजारों से, सीताजी की मुख शोभा का कमलों से, हास्यशोभा का कुमुदों से सादृश्य का स्पष्ट रूप से अनुकरण करने वाले और रामजी के हर्ष को सहसा प्रकट करने वाले महेन्द्र पर्वत को राम, लक्ष्मण और वानरों ने प्राप्त किया ।

एक और श्रुतिमात्रेण अर्थ की प्राप्ति कराने वाला श्लोक द्रष्टव्य है –

---

१. भट्टिकाव्य १०/६

२. वही १०/६

३. वही १०/४७

"अथनयनमनोहरोऽभिरामः
स्मर इव चित्तभवोऽप्यवामशीलः ।
रघुसुतमनुजो जगाद वाचं
सजलघनस्तनयित्नुतुल्यघोषः ।।" [१]

अर्थात् चन्द्रदर्शन के अनन्तर आँखों को आनन्द देने वाले, सुन्दर कामदेव के समान चित्त में स्थित होते हुए भी अप्रतिकूल स्वभाव वाले तथा जल से भरे हुए घने मेघ के सदृश शब्द से युक्त लक्ष्मण जी ने रामचन्द्र जी को ऐसी वाणी कही ।

भट्टि की रीति–योजना :–

रीति :–

रीति को काव्य का आत्मतत्व मानने वाले रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक **आचार्य वामन** के अनुसार 'विशिष्ट पदरचना को **रीति** कहते हैं ।' रीति ही काव्य की आत्मा है – 'रीतिरात्मा काव्यस्य' [२] वामन के मतानुसार वे रीतियाँ तीन प्रकार की है –

"सा त्रैधा वैदर्भी गौडीय पाञ्चाली चेतिः ।" [३]

काव्य में प्रयुक्त इन रीतियों की स्थिति गुणों के आधार पर होती है ।

वैदर्भी :–

वैदर्भी रीति का लक्षण बताते हुए वामन कवि कहते हैं – "वैदर्भी, ओज, प्रसादादि गुणों से समन्वित होती है – "समग्रगुणोपेता वैदर्भी ।" [४]

दोषों से रहित तथा वीणा के शब्द के समान मनोहारिणी वैदर्भी रीति होती है ।

गौडी :–

"ओजः कान्तिमती गौडीया ।" [५]

---

१. भट्टिकाव्य, १०/७१
२. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति वामन, १/२/७
३. वही, १/२/६
४. वही, १/२/११
५. वही, १/२/१२

समासबहुला एवं ओजगुण से सम्पन्न रीति को **गौडी रीति** कहते हैं ।

पाञ्चाली :–

श्लिष्ट पदावली से रहित, माधुर्य गुण से युक्त रीति को **पाञ्चाली** कहते हैं ।

"माधुर्यसौकुमार्योपपन्ना पाञ्चाली ।" [1]

महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य में प्रायः **वैदर्भी** का ही आश्रय ग्रहण किया है, लेकिन उन्होंने वैदर्भी के अतिरिक्त गौडी, पांचाली एवं लाटी रीतियों के भी अपने महाकाव्य में प्रयोग किये हैं, जिनका विस्तृत रूप से वर्णन निम्नवत् है –

१. वैदर्भी रीति :–

भट्टिकाव्य में अधिकांशतः **वैदर्भी** के ही सुमधुर स्थल देखे जाते हैं । आचार्य रूद्रट ने इसका स्वरूप निर्धारण करते हुए लिखा है कि –

"वैदर्भी वह रीति है, जिसमें समस्तपदराहित्य हो, अंशतः समस्त पदयोजना भी सम्भव है । श्लेषादि दश गुण की स्थिति हो, साथ ही द्वितीय वर्ग का अर्थात् चवर्ग वर्णों के संयोजन की बहुलता हो और सुगम उच्चारण साध्य हो ।" [2]

वैदर्भी रीति में मधुर पदावली होनी चाहिए । इसे प्रायः सभी गुणों में देखा जा सकता है । वैसे इसमें मधुरता समन्वित पदविन्यास की अपेक्षा होती है । भट्टिकाव्य के द्वितीय सर्ग के शरदऋतु के समापन–श्लोक में **वैदर्भी** का कैसा सुन्दर विलास है ? यथा [3] –

"न तज्जलं यन्न सुचारु पङ्कजं न पङ्कजं तद, यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ।।"

यहाँ पर चवर्ग वर्णों का अधिक्य एवं सुगम उच्चारण वाले वर्णों का संगम है । अतः वैदर्भी रीति की छटा अनुपम है । लंकागत वर्णन में समासराहित्य से सर्वथा समन्वित **वैदर्भी** का दृश्य बड़ा ही मधुर बन पड़ा है [1]–

---

१. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन, ४/२/१३

२. "असमस्तैकसमस्ता युक्ता दशभिर्गुवैश्च वैदर्भी ।
द्वितीय बहुलो स्वल्प प्राणोक्षरा च सुविधेया ।।" रूद्रट, काव्यालंकार, २/६

३. भट्टिकाव्य २/१६

"अवसितं हसितं प्रसितं, मुदा विलसितं हसितं स्मरभासितम् ।
न समदाः प्रमदा हतसंमदाः, पुरहितं विहितं न समीहितम् ।।"[1]

एक श्लोक और द्रष्टव्य है[2] –

"प्रातस्तरां चन्दनलिप्तगात्राः प्रच्छाद्य हस्तैरधरान् वदन्तः ।
शाम्यन्निमेषाः सुतरां युवानः प्रकाशयन्ति स्मनिगूहनीयम् ।।"

यहाँ श्रृङ्गार–रसाविष्ट लंकागत प्रभात–वर्णन अपनी मधुरपदावली से **वैदर्भी** के स्वरूप को पूर्णतया अभिव्यंजित करता है ।

ग्रन्थकार भट्टि द्वारा अपने महाकाव्य के प्रयोजन को भी मधुरपदावली तथा अल्पसमास युक्त रूप में अभिव्यक्त किया है । वह भी **वैदर्भी रीति** का सुन्दर उदाहरण है[3] –

"दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम् ।
हस्ताऽमर्ष इवाऽन्धानां भवेद् व्याकरणादृते ।।"

इस प्रकार महाकवि भट्टि ने उत्कृष्टतम रीति **वैदर्भी** का महाकाव्य में बहुलता से प्रयोग किया है ।

२. गौडी रीति :–

रीतिसम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन ने **गौडी रीति** का स्वरूप विवेचन करते हुए कहा है – "रीतिविज्ञ आचार्यवृन्द समास समन्वित ओज एवं कान्तिगुण सम्पन्न वर्णों वाली अत्युद्भट रचना को गौडी रीतियुक्त बतलाते हैं ।"[4]

कविराज विश्वनाथ ने गौडी को परिभाषित करते हुए लिखा है कि – "समासबहुल, ओजगुण के अभिव्यंजक वर्णों से समन्वित उद्धतबन्ध (रचना) **गौडी रीति** के नाम से जानी जाती है ।"[5]

---

१. भट्टिकाव्य १०/६

२. वही ११/३१

३. वही २२/३३

४. समस्तात्युद्भटपदामोजः कान्तिगुणान्विताम् ।
गौडीयामिति गायन्ति रीति रीतिविचक्षणाः ।" – वामन, काव्यालंकार सूत्र

५. ओज प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः । समास बहुला गौडी..... । – विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ६/३

अतः गौडी रीति की पहली विशेषता **समास बाहुल्य** की है, जिसके कारण वाक्यों की कमी का स्वरूप समक्ष दृष्टिगत होता है । भट्टिकाव्य में गौडी रीति के कतिपय स्थल इस प्रकार है[1] –

"अथाऽऽलुलोके हुतधूमकेतुशिखाऽञ्जनस्निग्ध समृद्धशाखम् ।
तपोवनं प्राध्ययनाऽभिभूतसमुच्चरच्चारुपत्त्रिशिञ्जम् ।।"

इस श्लोक में समस्त पदावली, अनुपास की छटा एवं महाप्राण वर्णों का संयाजेन बड़ा हृदयग्राही रहा है दशम सर्ग में समास–बाहुलता का स्वाभाविक स्वरूप इस प्राकर द्रष्टव्य है[2] –

"जलनिधिमगमन्महेन्द्रकुञ्जात्प्रचयतिरोहिततिग्मरश्मिभासः ।
सलिलसमुदयैर्महातरङ्गैर्भुवनभरक्षममप्यभिन्नवेलम् ।।"

तेरहवें सर्ग का पूरा इतिवृत्त **गौडी रीति** का ही आश्रयकर निष्पादन किया है । कतिपय स्थल निम्नवत् है[3] –

"घोरजलदन्तिसंकुलमट्टमहापङ्ककाहलजलावासम् ।
आरीणं लवणजलं समिद्धफलबाणविद्धघोरफणिवरम् ।।
चञ्चलतरुहरिणगणं बहुकुसुमाबन्धबद्धरामावासम् ।
हरिपल्लवतरुजालं तुङ्गोरुसमिद्धतरुवरहिमच्छायम् ।।"

इसी प्रकार अन्य स्थल पर्वत–वर्णन में **गौडी रीति** का प्रयोग देखिए[4] –

"लङ्कालयतुमुलारवसुभरगभीरोरुकुञ्जकन्दरविवरम् ।
वीणारवरससङ्गमसुरगणसङ्कुलमहातमालच्छायम् ।।
सरसबहुपल्लवाविलकेसरहिन्तालबद्धबहलच्छायम् ।
ऐरावणमदपरिमलगन्धवहाबद्धदन्तिसंरम्भरसम् ।।"

३. पाञ्चाली रीति :–

भोजराज ने **पाञ्चाली रीति** का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि – "पाञ्चाली रीति वह रीति है, जिसमें समस्त पद पाँच या छः पदों वाले होते हैं । ओज एवं कान्ति की विशिष्टता विद्यमान रहती है । मधुर और

---

१. भट्टिकाव्य २/२४
२. वही, १०/५२
३. वही, १३/४, ६
४. वही, १३/३२, ३३

सुकुमार वर्णों से पद रचना का स्वरूप देखा जाता है ।"[1]

आचार्य विश्वनाथ ने भी **पाञ्चाली रीति** का स्वरूप स्पष्टीकरण इस प्रकार कर दिखाया है । यथा[2] –

"वैदर्भी एवं गौडी के अभिव्यंजक वर्णों से अवशिष्ट वर्णों से समन्वित **पांचाली रीति** वह पद रचना है, जिसके समस्त पदों में पदसंख्या पाँच से छः तक हुआ करती है ।"

भट्टिकाव्य में अवसरानुकूल जहां माधुर्यमिश्रित स्थल देखे जाते हैं, वहां पांचाली रीति का ही प्रयोग दृष्टिगत होता है[3] –

"वनानि तोयानि न नेत्रकल्पैः पुष्पैः सरोजैश् च निलीनभृङ्गैः ।
परस्परां विस्मयवन्ति लक्ष्मीमालोकयाञ्चक्रुरिवाऽऽदरेण ।।"

इस सुकुमार–वर्णन में **पांचाली रीति** का प्रयोग कितना उत्कृष्ट है । यह कवि की प्रतिभा का ही निदर्शन है ।

नवम सर्ग में रावण के क्रोधावेशी चित्रण में मधुरवर्णों का प्रयोग एवं पांच से छः पदों तक समस्तपदावली बड़ी आकर्षकजन्य है[4] –

"मांसोपभोग संशूनानुद्विग्नास्तानवेत्य सः ।
उद्वृत्तनयनो मिन्नान् मन्त्रिणः स्वान् व्यसर्जयत् ।।"

अन्य भी –

"मधुसाद् भूत किञ्जल्कपिञ्जरभ्रमराऽऽकुलाम् ।
उल्लसत्कुसुमां पुण्यां हेमरत्नलतामिव ।।"[5]

इस स्थल में माधुर्यव्यंजक वर्णों का प्रयोग हुआ है, साथ ही प्रथम पंक्ति समस्त पदावली स्वरूप है, जिसमें पाँच पदों का समासविहित है । अतः **पांचाली रीति** स्पष्टतया दर्शनीय है ।

---

१. समस्तपञ्चषपदामोजः कान्तिसमन्विताम् ।
मधुरां सुकुमारां च पाञ्चाली कवयो विदुः ।।– भोजराज, सरस्वती कष्ठाभरण

२. वर्णैः शेषैः पूनर्द्वयोः । समस्तपञ्चसपदामोजः कान्तिसमन्विताम् ।। – साहित्यदर्पण, ६/४

३. भट्टिकाव्य २/५

४. वही ६/१६

५. वही ६/८६

ये पूर्वोक्त स्थल **पांचाली रीति** की प्रकृष्टता के नियामक स्तम्भ के रूप में महाकवि भट्टि द्वारा स्वकाव्य में वर्णित है, जिनका माधुर्य एवं ओजस्वी स्वरूप ही पाठक के आनन्दातिरेक का मूल बिन्दू है ।

४. लाटी रीति :–

महाकवि भट्टि ने उपर्युक्त तीनों रीति के अतिरिक्त **लाटी रीति** का भी प्रयोग किया है । **जयदेव** ने **लाटी** का लक्षण प्रतिपादन करते हुए लिखा है – "सात पदों तक की समास–रचना **लाटी रीति** का स्वरूप होती है ।"

आचार्य विश्वनाथ ने इसका स्वरूप–विवेचन इस प्रकार किया है [1] – "लाटी रीति वह है जो वैदर्भी और पांचाली रीतियों की विशिष्टताओं से परिमण्डित रहती है ।" [2]

भट्टिकाव्य में वैशिष्ट्य कथनों से समन्वित लाटी का उदाहरण इस प्रकार देखा जा सकता है –

यदताप्सीच्छनैर्भानुर्यत्राऽवासीन्मितं मरुत् ।
यदाप्यानं हिमोस्त्रेण भनक्त्युपवनं कपिः ।।" [3]

विराधताडकाबालिकबन्धारवरदूषणैः ।
न च न ज्ञापितो यादृङ् मारीचेनाऽपि ते रिपुः ।।" [4]

क्रियासमारम्भगतोऽभ्युपायो नृद्रव्यसम्पत् सहदेशकाला ।
विपत्प्रतीकारयुताऽर्थसिद्धिर्मन्त्राङ्गमेतानि वदन्ति पञ्च ।।" [5]

नगरस्त्रीस्तनमन्यस्तधौतकुङ्कुमपिञ्जराम् ।
विलोक्य सरयूं रम्यां गन्ताऽयोध्या त्वया पुरी ।।" [6]

इस प्रकार कवि ने अपने महाकाव्य में चारों रीतियों का काव्यगत प्रयोग कर दिखाया है । यह कवि की पैनी–प्रतिभा का ही परिणाम है ।

---

१. चन्द्रालोक, षाष्टमयूख, २१–२२, द्रष्टव्य – इसी अध्याय का पृष्ठ ३१२ फुटनोट – २

२. "लाटी तु रीतिवैदभीपांचाल्योरन्तरस्थिता ।" – साहित्यदर्पण, ६/५ पूर्वार्द्ध

३. भट्टिकाव्य ६/२

४. वही ६/११६

५. वही १२/६२

६. वही २२/१३

भावपक्ष :–

काव्य की आत्मा रस ध्वनि :–

काव्य की आत्मा 'रस' माना गया है । रस–संचार के बिना कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । **नहि रसादृते कश्चिदप्यर्थः प्रवर्तते** । रस निष्पादन के सम्बन्ध में भरतमुनि का सूत्र है – "विभावानुभावव्याभिचारिसंयोगाद्ररसनिष्पत्तिः ।" [१]

यही सूत्र सम्पूर्ण रस–सिद्धान्त की आधार–नीति है । इस सूत्र का अर्थ यह है कि – "विभाव, अनुभाव तथा व्याभिचारि भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है ।"

अग्नि–पुराणकार ने वाग्विदग्धता की प्रधानता होने पर भी काव्य का जीवन या प्राण रस को माना है ।" [२]

"वाग्वैदग्ध्य–प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ।।"

रस की व्याख्या करने के लिए हमें विभाव, अनुभाव तथा व्याभिचारिभाव को जानना आवश्यक है ।

विभाव :– "रसानुभूति के कारणों को **विभाव** कहते हैं । ये दो प्रकार का होता है ।

१. आलम्बन विभाव

२. उद्दीपन विभाव

जिसको आलम्बन करके रस की उत्पत्ति होती है उसको 'आलम्बन विभाव' कहते हैं । उदाहरण के लिए सीता को देखकर राम के मन में और राम को देखकर सीता के मन में जो रति इत्यादि उत्पन्न होती है । इसमें सीता, रामादि एक दूसरे की प्रीति के आलम्बन रूप कारण होते हैं, क्योंकि वे परस्पर रति या प्रेम की उत्पत्ति के कारण होते हैं ।

इस परस्पर प्रीति या रति को उद्दीप्त उद्बुद्ध करने वाली चाँदनी, उद्यान, नदी–तीर आदि सामग्री को 'उद्दीपन विभाव' कहते हैं । प्रत्येक रस के आलम्बन व उद्दीपन–विभाव अलग–अलग होते हैं ।

अनुभाव – अनुभाव रसानुभूति का आभ्यन्तर कारण है, जबकि आलम्बन व उद्दीपन विभाव रसानुभूति के बाह्य कारण हैं । इनको रस का 'सहकारी' कहा जा सकता है । साहित्यदर्पणकार ने अनुभाव का लक्षण इस प्रकार किया है –

"उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन् ।

१. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, ६/८–२१

२. अग्निपुराण, ३३७/३२

लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाटययोः ।।''[१]

अर्थात् अपने–अपने आलम्बन या उद्दीपन कारणों से सीता–राम आदि के भीतर उद्बुद्ध रति आदि रूप स्थायीभाव को बाह्यरूप में जो प्रकाशित करता है, वह रत्यादि का कार्यरूप, काव्य और नाट्य में **अनुभाव** के नाम से कहा जाता है ।

भरतमुनि ने **अनुभाव** का लक्षण इस प्रकार किया है –

''वागङ्गाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाश्यते ।
शाखाङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः ।।''[२]

तात्पर्य यह है कि जो वाचिक या आङ्गिक अभिनय के द्वारा रत्यादि स्थयिभाव की आभ्यन्तर अभिव्यक्तिरूप अर्थ का बाह्यरूप में अनुभव कराता है, उसको **अनुभाव** कहते हैं ।

भरतमुनि के उपर्युक्त सूत्र के अनुसार अनुभावों का विशेष उपयोग अभिनय की दृष्टि से ही होता है । किसी रस की बाह्य अभिव्यक्ति के लिए अलग–अलग अभिनय–शैली का आलम्बन किया जाता है । अलग–अलग रस को प्रकाशित करने के लिए स्मितादि बाह्य व्यापार **अनुभाव** कहलाते हैं और वे प्रत्येक रस में अलग–अलग होते हैं ।

आचार्य भरतमुनि के मतानुसार अनुभावों का यह जो विशिष्ट प्रयोग अभिनय में होता है उनमें शारीरिक व्यापार की प्रधानता रहती है । नट कृत्रिमरूप से इन अनुभावों का अभिनय करता है, परन्तु अनुकार्य रामादि की अन्तःस्थ रसानुभूति की बाह्य अभिव्यक्ति इन साधनों द्वारा होती है । वे रसानुभूति के बाद में होते हैं **'अनु पश्चतात् भवन्ति इत्यनुभावाः'** इसलिए 'अनुभाव' कहलाते हैं ।

१. **व्यभिचारिभाव** – उद्बुद्ध हुए स्थायिभावों की पुष्टि में जो उनके सहकारी होते हैं, उनको 'व्यभिचारिभाव' कहते हैं । भरतमुनि ने नाट्य–शास्त्र के सप्तम अध्याय में **व्यभिचारिभाव** शब्द की व्यापक निरुक्ति की है ।''[३]

जो रसों में नानारूप से विचरण करते हैं और रसों को पुष्ट कर आस्वाद के योग्य बताते हैं । इन

---

१. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, ३/३२

२. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, ७/५

३. ''व्यभिचारिण इदानीं व्याख्यास्यामः । अत्राह – व्यभिचारिण इति कस्मात् । उच्यते – वि – अभि इत्येतावुपसर्गौ, चर इति गत्यर्थो धातुः । विविधम् आभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः । वागङ्गसत्त्वोपेताः प्रयोगे रसान्नयन्तीति व्यभिचारिणः । अताह – कथं नयन्तीति । उच्यते लोक–सिद्धान्त एषः यथा सूर्य इदं दिनं नक्षत्रं वा नयतीति । न च तेन बाहुभ्यां स्कन्धेन वा नीयते । किन्तु लोकप्रसिद्धमेतत्, यथेदं सूर्यो नक्षत्रं दिनं वा नयतीति । एवमेते व्यभिचारिणः इत्यवगन्तव्याः । तानिह संग्रहाभितांस्त्रयस्त्रिंशद्व्यभिचारिणो भावान् वर्णयिष्यामः ।''

व्यभिचारिभाव की संख्या ३३ मानी गयी है ।[1]

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में इसकी गणना की है ।

स्थायीभाव – "व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ।" अर्थात् उन पूर्वोक्त विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभावों के संयोग से व्यक्त होने वाले स्थायिभाव को **रस** कहते हैं । इस रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण 'स्थायिभाव' है ।

स्थायिभाव मन के भीतर स्थिर रूप से रहने वाला वह प्रसुप्त संस्कार है, जो अपने अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्‌बोधन सामग्री को प्राप्त कर अभिव्यक्त हो उठता है जिससे हृदय में एक प्रकार के अपूर्व आनन्द का संचार हो उठता है । इस स्थायिभाव की पूर्ण अभिव्यक्ति ही रसास्वादजनक होने से 'रस' शब्द से जानी जाती है ।

इस प्रकार रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण स्थायिभाव है । साहित्यशास्त्र में स्थायिभाव की संख्या ८ मानी गयी है –

"रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावः प्रकीर्तिताः ।।"[2]

१. रति, २. हास, ३. शोक, ४. क्रोध, ५. उत्साह, ६. भय, ७. जुगुप्सा या घृणा, ८. विस्मय । ये आठ स्थायिभाव कहलाते हैं । इन्हीं आठ स्थायिभावों के आधार पर आठ रस भी होते हैं –

"श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
वीभत्साद्‌भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ।।"[3]

अर्थात् श्रृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्‌भुत् – नाट्य में ये आठ रस माने जाते हैं ।

इनके अतिरिक्त एक नौवें **निर्वेद** को भी स्थायिभाव माना गया है –

"निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः ।"[4]

पूर्वोक्त नौ स्थायिभाव मनुष्य के हृदय में भी स्थायी रूप से सदा ही विद्यमान रहते है । इसलिए इन्हें 'स्थायिभाव' कहते हैं ।

---

३. "निर्वेदग्लानिशङ्कारव्यास्तथासूया मदः श्रमः । आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्ता मोहः स्मृतिर्धृतिः ।।
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा । गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एव च ।।
सुप्तं विबेधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता । मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च ।।
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेय व्यभिचारिणः । त्रयस्त्रिंशदमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः ।।"
– भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, १८/२१

२. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, चतुर्थ उल्लास, सू० ४५

३. वही सू० ४४

४. वही सू० ४७

आनन्दवर्धन – रस के चमत्कार को ध्वनिकार काव्य की सर्वोत्कृष्ट भूमि मानते हैं । उनके अनुसार क्रौञ्च जोड़े के वियोग से उत्पन्न **बाल्मीकि** का 'शोक' जो 'श्लोक' बन गया वह दुःख की भूमि नहीं वरन् आनन्द की अलौकिक भूमि है, 'मा–निषाद' को पढ़कर सहृदयों का मन रस की अलौकिक चर्वणा करने लगता है । इसलिए तो आनन्दवर्धन ने कहा है –

"काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुराः ।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ।।" [१]

आदिकवि की करुणासरित् काव्यसरिता में विगलित हो गयी । ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने रस को अलंकार के संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकाल कर मुख्यतः काव्य के आत्मा के योग्य आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया, किन्तु रसमात्र के ग्रहण से काव्य की उत्तमता का सर्वाङ्गीण संस्पर्श नहीं हो पाता क्योंकि कुछ ऐसे पद्य भी मिलते हैं जो रस की दृष्टि से तो न्यून होते हैं, परन्तु अतिशय चमत्कार उत्पन्न होते है इसीलिए आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि के रूप से उन्हें भी संग्रहीत किया, जिनमें वस्तु और अलंकार प्राधान्यतः प्रतीयमान या व्यङ्ग्य होते हैं और साथ ही, इन ध्वनियों में भी रस–चमत्कार की ही प्रधानता होती है ।

काव्य की आत्मा के रूप में व्यवस्थित सहृदय–श्लाघनीय जो अर्थ है, उसके १. वाच्य तथा २. प्रतीयमान दो भेद हैं –

"योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः ।
वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ ।।" [२]

इनमें जो प्रतीयमानार्थ है, वह महाकवियों की वाणी में सुशोभित होता है । यह प्रतीयमानार्थ सहृदयों में अत्यन्त प्रसिद्ध है, और यह प्रसिद्ध अलंकारों से प्रतीत होने वाले शब्द तथा अर्थ रूपी अंगों से उसी प्रकार पृथक है, जिस प्रकार प्रमदा–लावण्य रमणियों के मुख, नेत्र, श्रोतादि प्रतीत होने वाले अवयवों तथा अलंकारों से सर्वथा भिन्न होता है । इस प्रकार प्रमदा–लावण्यवत् महाकवियों की वाणी में सुशोभित होने वाला यह प्रतीयमानार्थ अमृत के तुल्य एक अनोखा तत्त्व है, जो वाच्यार्थ को तथा स्वयं को सुशोभित करता हुआ, सहृदयों के हृदय को अहलादित करता है –

"प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषुं महाकवीनाम् ।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु ।।" [३]

प्रतीयमान रस को ही काव्य की आत्मा के रूप में प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि वस्तु तथा अलंकार ध्वनि वहीं पर काव्यरूपता को धारण करती है, जहाँ वे रस ध्वनिपर्यवसायी होती है । उस प्रतीयमान अर्थ की

---

१. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, प्रथम उद्योत, श्लोक – ३

२. वही, श्लोक – २

३. वही श्लोक – ४

काव्यात्मकता स्वसंवेदना सिद्ध भी है । जो वस्तु स्वसंवेदना सिद्ध होती है, उसमें किसी को संदेह हो ही नहीं सकता । महाकवियों की वाणी उसी रसध्वनि, भावध्वनि, आदि प्रतीयमानार्थ को प्रवाहित किया करती है । सामान्य व्यक्ति वाच्यार्थ के द्वारा व्यवहार करते हैं, परन्तु विशिष्ट पुरुषों, महाकवियों की वाणी में व्यंग्यार्थ का सौन्दर्य झलकता है, जो महाकवियों की विशेष प्रतिभा को समुद्घाटित करता है –

"सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निष्यन्दमाना महतां कवीनाम् ।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम् ।।" [1]

महाकवियों की वाणी एक प्रकार की धेनु है, जो सहृदयरूपी वत्सों को स्वयं दिव्य रस पिलाकर आनन्दित करती है । जो कविता जितना ही रस का अनुभव कराती है, उतना ही उससे कवि की प्रतिभाविशेष का आभास मिलता है ।

भट्टि की रस–योजना :–

भट्टिकाव्य वीररसप्रधान काव्य है, किन्तु भट्टि ने अपनी इस कृति में अन्य रसों को भी सफल अभिव्यक्ति की है । अन्य रसों को भी यथास्थान सफल एवं अवसरानुकूल प्रवेश कराकर कवि ने अपनी रस–सिद्धता का परिचय दिया है ।

अङ्ग–रस :–

१. श्रृंगार–रस :–

श्रृंगार रस को सभी रसों में सर्वप्रथम स्थान दिया गया है, क्योंकि श्रृंगार या रति न केवल मनुष्य जाति में पाया जाता है अपितु सबका उसके प्रति आकर्षण होता है, इसलिए सबसे पहले 'श्रृंगार' को स्थान दिया गया है ।

'रावणवध' में कवि ने रसराज श्रृंगार के उभय रूपों संयोग और वियोग का चित्रण किया है, किन्तु भट्टि का वियोग पक्ष अपेक्षाकृत अधिक हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्शी है –

(क) संयोग श्रृंगार – महाकवि भट्टि ने संयोग श्रृंगार का प्रारम्भ सीता–विवाह से किया है । राम द्वारा धनुर्भङ्ग के बाद महाराज जनक सुवर्णमयी, संचारिणी, वृक्षलता सी आकाश में स्थित विद्युत तथा चन्द्रकान्ति की अधिष्ठात्री देवी की भाँति सुन्दरी पुत्री सीता को राम के करकमलों में समर्पित कर देते हैं –

"हिरणमयी शाललतेव जङ्गमा च्युता दिवः स्थास्नुरिवाऽचिरप्रभा ।

---

१. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, प्रथम उद्योत, श्लोक – ६

शशाऽङ्गकान्तेरबिदेवताऽऽकृतिः सुता ददे तस्य सुताय मैथिली ।।"[1]

सर्वहितकारी राम स्वहितकारिणी, सर्वालंकार विभूषित एवं रघुकूल सौन्दर्यवर्धिनी सीता को पत्नी रूप में स्वीकार करते हैं –

"लब्धां ततो विश्वजनीनवृत्तिस्तामात्मनीनामुदवोढ रामः ।
सद्रत्नमुक्ताफलभर्मभूषां सम्बंहयन्तीं रघुवर्ग्यलक्ष्मीम् ।।"[2]

रावणभगिनी कामुकी शूर्पणखा के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन देखिए –

"दधानां बलिभं मध्यं कर्णजाहविलोचना ।
वाक्त्वचेनाऽतिसर्वेण चन्द्रलेखेव पक्षतौ ।।
सुपाद् द्विरदनासोरूर्मृदुपाणितलाऽङ्गुलिः ।
प्रथिमानं दधानेन जघनेन घनेन सा ।।
उन्नसं दधती वक्त्रं शुद्धदल्लोलकुण्डलम् ।
कुर्वाणा पश्यतः शंयून् स्त्रग्विणी सुहसानना ।।"[3]

कवि कहता है कि मृदुभाषिणी कोमलांगी, दीर्घलोचना, तीन बलियों से युक्त कटिवाली, सुचरणा, कोमल करतला, उच्च नासिका वाली, सुदर्शना, माल्यधारिणी एवं सुस्मिता वन्दना शूर्पणखा पंचवटी में प्रवेश करती है ।

वह लक्ष्मण के समक्ष सहचारिणी बनने की याचना करती हुई कहती है – "हे लक्ष्मण ! तुम्हारी कामना करने वाली, तुम्हारे वश में रहने वाली, तुम्हारे भोग के सर्वथा योग्य और जीवनपर्यन्त साथ रहने वाली मुझसे निःशङ्क होकर इच्छापूर्वक विवाह कर लो ।"[4]

'रावणवध' का एकादश सर्ग पूरा का पूरा **संयोग श्रृंगार** का उदाहरण है । राक्षसों की कामक्रीडा एवं सम्भोग का चित्रण कवि ने किया है ।

इस सर्ग के प्रारम्भ में ही चन्द्रमा लंका की सुन्दरियों के जागने के समय में अस्तांचल पर इसलिए चला

---

१. भट्टिकाव्य २/४७

२. वही २/४८

३. वही ४/१६–१८

४. वही ४/२०

गया, क्योंकि उसके पास न तो उन सुन्दरियों के समान कटाक्ष है और ही वैसे विलासयुक्त सम्भाषण ।"[१]

एकादश सर्ग के कतिपय श्रृंगारिक वर्णन देखिए – "कोई कामातुर पति अपने वक्ष को प्रिया के वक्षस्थल से, मुख से संश्लिष्ट करता हुआ भी सन्तुष्ट नहीं होता है, क्योंकि काम से कभी तृप्ति नहीं होती है" –

"वक्षः स्तनाभ्यां मुखमाननेन
गात्राणि गात्रैर्घटयन्नमन्दम् ।
स्मराऽऽतुरो नैव तुतोष लोकः
पर्याप्तता प्रेम्णि कुतो विरुद्धा ।।"[२]

नवोढा पति द्वारा आलिङ्गिता होने पर नेत्रों को शालीनता के कारण मूँद लेती है और क्रोध नहीं करती है –

"स्त्रस्ताऽङ्गयष्टिः परिरभ्यमाणा
संदृश्यमानाऽप्युपसंहृताऽक्षी ।
अनूढमाना शयने नवोढा
परोपकारैकरसैव तस्थौ ।।"[३]

कोई स्त्री चन्द्र सदृश प्रिय के हाथ से स्पर्श किए जाने पर आनन्दमय होती हुई, चित्त के विकार से चन्द्रकान्त मणि की तरह शीघ्र बहने वाले स्वेद जल से युक्त हो गयी –

"गुरुर्दधाना परुषत्वमन्या
कान्ताऽपि कान्तेन्दुकराऽभिमृष्टा ।
प्रहलादिता चन्द्रशिलेव तूर्णं
क्षोभात् स्त्रवत्स्वेदजला बभूव ।।"[४]

रात्रि शयन के त्याग में तत्पर होता हुआ भी पति प्रिया द्वारा बार–बार आलिङ्गित होने से शयन सुख का त्याग नहीं कर पाता है –

"अर्धोत्थिताऽलिङ्गितसन्निमग्नो
रुद्धः पुनर्यान् गमनेऽनभीप्सुः ।

---

१. भट्टिकाव्य ११/३

२. वही ११/११

३. वही ११/१२

४. वही ११/१५

व्याजेन निर्याय पुनर्निवृत्त
स्व्यक्ताऽन्यकार्यः स्थित एव कश्चित् ।।"[१]

काम से आकुल मनुष्य प्रेम विह्वलता से ज्ञान शून्य होकर प्रिया द्वारा किए गए दन्तक्षतादि विषयों का स्मरण नहीं करता है –

"गतेऽतिभूमि प्रणये प्रयुक्ता –
नबुद्धिपूर्वं परिलुप्तसंज्ञः ।
आत्माऽनुभूतानापि नोपचारान्
स्मराऽऽतुरः संस्मरति स्म लोकः ।।"[२]

प्रेमी जन सुवर्ण वस्त्रों, सौरभ–विलेपन एवं प्रसन्न मुख द्वारा अपने सुख–व्यापार को प्रकाशित करते हैं –

"वस्त्रैरनत्युल्नणरम्यवर्णै –
र्विलेपनैः सौरभलक्षणीयैः ।
आस्यैश्य लोकः परितोषकान्तै –
रसूचयल्लब्धपदं रहस्यम् ।।"[३]

(ख) विप्रलम्भ श्रृंगार :–

भट्टि ने इस रस का सफल चित्रण सीता वियोगी राम की विरह–जन्य पीड़ा एवं अन्तर्वेदना के मर्मस्पर्शी वर्णन में प्रस्तुत किया है जिसे पढ़कर पाठकों को भी राम के दुःख और वेदना से अभिभूत हो जाना स्वाभाविक ही जान पड़ता है ।

वियोगी राम वन में सीता को खोजते हुए विलाप करते हैं –

"आ कष्टं, बत ही चित्रं हूं मातर्दैवतानि धिक् ।
हा पितः । क्वाऽसि हे सुभ्रु ! बह्वेवं विललाप सः ।।"[४]

रामचन्द्र जी सीता के साथ बिताए गये अपने क्षणों को, उनके शयन को, उनके वार्तालाप को यादकर बहुत दुःखी होते हैं –

---

१. भट्टिकाव्य ११/१८

२. वही ११/२६

३. वही ११/३०

४. वही ६/११

"इहाऽऽसिष्टाऽशयिष्टेह सा सखेलमितोऽगमत् ।
अग्लासीत् संस्मरन्नित्थं मैथिल्या भरताऽग्रजः ।।"[१]

श्रीराम को सीता का अन्तर्धान हो जाना, सीता द्वारा किया गया परिहास जान पड़ता है और वे कहते हैं – मेरी ऐसी परीक्षा मत लो, मत छिपो, मेरे प्राणों के साथ ऐसा परिहास न करो –

"अक्षेमः परिहासोऽयं परीक्षां मा कृथा मम ।
मत्तो माऽन्तर्धिथाः सीतेः ! मा रंस्था जीवितेन नः ।।"[२]

सीता के वियोग में उन्हें ऐसा लगता है मानो उनकी बुद्धि और प्राणों का किसी ने पान कर लिया हो –

"ऐ ! वाचं देहि धैर्यं नस्तव हेतोरसुस्त्रुवत् ।
त्वं नो मतिमिवाऽधासीर्नष्टा प्राणनिवाऽदधः ।।"[३]

करुण विलाप करते–करते उनकी आँखे सूख सी जाती है –

"रुदतोऽशिश्वियच्चक्षुरास्यं हेतोस्तवाऽश्वयीत् ।
म्रियेऽहं मां निरास्थश्चेन्मा न वोचश्चिकीर्षितम् ।।"[४]

जिस प्रकार अग्नि लकड़ी को जला देती है, उसी प्रकार शोकाग्नि ने राम के हृदय को जला दिया है । उन्हें शीतल वन की वायु भी शरीर को जलाने वाली प्रतीत होती है –

"तस्याऽलिपत् शोकाऽग्निः स्वान्तं काष्ठमिव ज्वलन् ।
अलिप्तैवाऽनिलः शीतो वने तं न त्वजिह्लदत् ।।"[५]

प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण भ्रमर, कोकिल इत्यादि से युक्त सुखद पम्पासर भी वियोगी राम के वियोग का उद्दीपन हो रहा है –

"भृङ्गालीकोकिलक्रुङ्भिर्वाशनैः पश्य लक्ष्मण ।
रोचनैर्भूषितां पम्पामस्माकं हृदयाविधम् ।।"[६]

---

१. भट्टिकाव्य ६/१२
२. वही ६/१५
३. वही ६/१८
४. वही ६/१६
५. वही ६/२२
६. वही ६/७४

परिभावीणि ताराणां पश्य मन्थीनि चेतसाम् ।
उद्भासीनि जलेजानि दुन्वन्त्यदयितं जनम् ।।"[१]

"समस्त वस्तुओं में रमणीयता प्रिया के अधीन होती है ।" विरही पुरुष को कोई भी वस्तु रमणीय नहीं लगती है । इसीलिए हंस कोयल भी कटू शब्द करने वाले से राम को प्रतीत हो रहे हैं –

"सर्वत्र दयिताऽधीनं सुव्यक्तं रामणीयकम् ।
येन जातं प्रियाऽपाये कद्वदं हंसकोकिलम् ।।"[२]

भ्रमर,विकसित कमल, पुष्प तथा पुष्प स्तबको से युक्त वृक्ष राम को अत्यन्त पीड़ित कर रहे हैं । सुन्दर मोतियों की कान्तिवाले, क्षरित होने वाले ओस की बूँद चित्त को द्रवित कर रही है –

"अवश्यायकणास्त्राश्चारुमुक्तफलत्विषः ।
कुर्वन्ति चित्तसंस्त्रावं चलत्पर्णाऽग्रसम्भृताः ।।"[३]

श्रीराम का हृदय कामभवन के सदृश उद्दीप्त करने वाले वनप्रदेशों को देखकर मङ्गलादि के ग्रहों से आक्रान्त की भाँति तथा समुद्र में ग्राह से ग्रहण किए हुए पुरुष की भाँति हो रहा है –

"समाविष्टं ग्रहेणेव ग्राहेणेवात्तमर्णवे ।
दृष्ट्वा गृहान्स्मरस्येव वनान्तान्मम मानसम् ।।"[४]

माल्यवान् पर्वत पर निवास करने वाले सीता वियोगी राम के लिए वर्षाकालीन मेघ, विपुल प्रकाश, मयूरों का नृत्य, शीतल जलधाराएं एवं कमलों से उत्कण्ठित हंस भी पीड़ादायक और उद्दीपक का कार्य कर रहे हैं–

"भ्रमी कदम्बसंभिन्नः पवनः शमिनामपि ।
क्लमित्वं कुरुतेऽत्यर्थ मेघशीकरशीतलः ।।
संज्वारिणेव मनसा ध्वान्तमायासिना मया ।
द्रोहि खद्योतसंपर्कि नयनाऽमोषि दुःसहम् ।।
कुर्वन्ति परिसारिण्यो विद्युतः परिदेविनम् ।
अभ्याधातिभिरामिश्राश्चातकैः परिराटिभिः ।।

---

१. भट्टिकाव्य ६/७५

२. वही ६/७६

३. वही ६/८१

४. वही ६/८४

संसर्गी परिदाहीव शीतोऽप्याभाति शीकरः ।
सोढुमाक्रीडिनोऽशक्याः शिखिनः परिवादिनः ।।''[1]

वर्षा ऋतु के मनमोहक दृश्य जब सुख–दुःख को त्याग देने वाले योगी के चित्त को भी मोहित करते हैं, तो वियोगी राम जैसे विरही पुरुषों की बात ही क्या ? –

''कुर्याद् योगिनमप्येष स्फूर्जावान् परिमोहिनम् ।
त्यागिनं सुखदुःखस्य परिक्षेप्यम्भसामृतुः ।।''[2]

भट्टिकाव्य का अङ्गीरस :–

''श्रृङ्गारवीरशान्तनामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।
अङ्गानी सर्वेऽपि रसा सर्वे नाटकसन्धयः ।।''[3]

अर्थात् श्रृंगार, वीर एवं शान्त रसों में से कोई एक रस अङ्गी रस या प्रधान रस महाकाव्य में होना चाहिए । अन्य रसों का प्रयोग गौण अथवा सहायक रसों के रूप में किया जा सकता है ।

उपर्युक्त साहित्यदर्पण के महाकाव्य–लक्षण के अनुसार ही भट्टि ने भी अपने महाकाव्य में एक अङ्गी रस का सफल प्रयोग किया है उनका 'रावणवध' **वीररस** प्रधान काव्य है अतः इस महाकाव्य का अङ्गी रस वीर है ।

अङ्गी रस–वीर :–

महाकवि भट्टि के काव्य के अङ्गी रस के रूप में **वीररस** का सफल एवं हृदयग्राही चित्रण प्रस्तुत किया है । काव्य के नायक राम धर्म की साकार मूर्ति हैं । वे अत्यन्त दयालु, उदार, दानी, सत्यपरायण तथा युद्धकुशल महापुरुष हैं । महाराज दशरथ परम वीर, सत्यवादी एवं प्रजापालक हैं । लक्ष्मण की वीरता, भरत की कर्त्तव्य परायणता के साथ–साथ सुग्रीव, हनुमान्, रावण, विभीषण इत्यादि के युद्ध–कौशल का सफल चित्रण किया गया है ।

वीरता के चारों स्वरूपों जैसा कि साहित्य–दर्पण में कहा गया है[4] – धर्मवीर, दानवीर, युद्धवीर तथा दयावीर का पूर्व परिपाक काव्य में दृष्टिगोचर होता है ।

---

१. भट्टिकाव्य ७/५ – ८

२. वही ७/१०

३. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, महाकाव्य–लक्षण

४. ''स च वीरो दानवीरो, धर्मवीरो, युद्धवीरो, दयावीरश्चेति चतुर्विधः ।'' –साहित्यदर्पण, विश्वनाथ

धर्मवीरता :–

भट्टिकाव्य के प्रथम श्लोक में ही हमें परम धार्मिक, शत्रुजेता महाराज दशरथ के दर्शन होते हैं । उनकी वीरता, धीरता एवं विद्वता के कारण ही सनातन विष्णु उनके पुत्र रूप में उत्पन्न होते हैं –

"अभून्नृपो विबुधसाखः परंतपः, श्रुताऽन्वितो दशरथ इत्युदाहृतः ।"
गुणैर्वरं भुवनहितच्छलेन यं, सनातनः पितरमुपागमत् स्वयम् ।।" [१]

महाराज दशरथ धर्मपरायण, वेदविद्, विप्रपूजक तथा शत्रुओं के समूल विनाशक हैं –

"सोऽध्यैष्ट वेदांस्त्रिदशानयष्ट, पितॄनपारीत्सममंस्त बन्धून् ।
व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ, समूलघातं न्यवधीदरीश्च ।।" [२]

महावीर राम धर्म की साक्षात् मूर्ति हैं जब मारीच कहता है कि धार्मिकों एवं याज्ञिक क्रियाओं का विनाश करना ही इम राक्षसों का धर्म है, [३] तब राम कहते हैं कि "धर्मविरोधी राक्षसों का वध करने हेतु ही हमने क्षत्रिय वृत्ति धारण की है" –

"धर्मोऽस्ति सत्यं तव राक्षसाऽयं मन्यो व्यतिस्ते तु ममाऽपि धर्मः ।
ब्रह्मद्विषस्ते प्रणिहन्मि येन राजन्यवृत्तिर्धृतकार्मुकेषुः ।।" [४]

भ्राता राम के मुख से पितृमरण का समाचार सुनकर शोक सन्तप्त होते हुए भी राम धर्म–कर्म से विरत नहीं होते हैं । वह नदी–स्नान कर मृत पिता को पहले जलांजलि देते हैं –

"चिरं रुदित्वा करुणं सशब्दं गोत्राभिधायं सरितं समेत्य ।
मध्ये जलद्राधवलक्ष्मणाभ्यां प्रत्तं द्वयञ्जलमन्तिकेऽपाम् ।।" [५]

तत्पश्चात् राम भरत को धार्मिक उपदेश देते हैं तथा पित्रादेश पालन कर राज्यभार ग्रहण करने को कहते हैं –

"अरण्ययाने सुकरे पिता मां प्रायुङ्क्त राज्ये बत ! दुष्करे त्वाम् ।
मा गाः शुचं धीर ! भरं वहाऽमुमाभाषि रामेण वचः कनीयान् ।।" [६]

---

१. भट्टिकाव्य १/१

२. वही १/२

३. वही २/३४

४. वही २/३५

५. वही ३/५०

६. वही ३/५१

कृति श्रुती वृद्धमतेषु धीमांस्त्वं पैतृकं चेद्ववचनं न कुर्याः ।
विच्छिद्यमानेऽपि कुले परस्य पुंसः कथं स्यादिह पुत्रकाम्या ।।
अस्माकमुक्तं बहु मन्यसे चेद्यदीशिषे त्वं न मयि स्थिते च ।
जिह्रेष्यतिष्ठन्यदि तातवाक्ये, जहीहि शङ्का, व्रज शाधि पृथ्वीम् ।।" [१]

उपर्युक्त श्लोकों में महाकवि भट्टि ने श्रीराम के माध्यम से **पुत्र–कर्त्तव्य** का उपदेश दिया है ।

सीता–वियोग से व्यथित एवं विक्षिप्त होकर, वन में भटकते हुए भी राम पितृपक्ष में पिता को पिण्डदान करना नहीं भूलते हैं, क्योंकि सज्जनों का धर्म–कर्म विपत्ति में भी लुप्त नहीं होता –

"स्नानभ्यषिचताऽम्भोऽसौ रुदपन्दयितया विना ।
तथाऽभ्यषिक्त वारीणि पितृभ्यः शोकमूर्च्छितः ।।
तथाऽऽतौऽपि क्रियां धर्म्या स काले नाऽमुचत्क्वचित् ।
महतां हि क्रिया नित्या छिद्रे नैवाऽवसीदति ।।" [२]

दानवीरता :–

शत्रुजेता परम वीर महाराज दशरथ महादानी हैं, वे सत्पात्रों को इच्छानुसार दान देते हैं –

"वसुनि तोयं धनवद्व्यकारीत् ।" [३]

इतना ही नहीं महाकवि भट्टि के राक्षस–पात्र भी परम दानी हैं, वे युद्धभूमि में प्रस्थान से पूर्व ब्राह्मणों को दान देते हैं तथा धार्मिक–क्रिया सम्पन्न करते हैं –

"अपूजयंश चतुर–वक्त्रं, विप्रानार्चस् तथाऽस्तुवन् ।
समाल्म्पित् शक्राऽरिर्यानं चाऽभ्यलषद् वरम् ।।" [४]

युद्ध में विजय प्राप्ति हेतु राक्षस–गण ब्राह्मणों को रत्न और गोदान करके उनसे आर्शीवाद प्राप्त करते हैं–

"योद्धारोऽबिभरुः शान्त्यै साऽक्षतं वारि मूर्धभिः ।
रत्नानि चाऽदुर्गाश्च, समवाञ्छन्नथाऽशिषः ।।" [५]

---

१. भट्टिकाव्य ३/५२ – ५३
२. वही ६/२३ – २४
३. वही १/३
४. वही १७/५
५. वही १७/५३

दयावीरता :–

भट्टि के राम अत्यन्त दयालु हैं । वनवास काल में राम वन में क्षुद्र जन्तुओं का भक्षण करने वाले हिंसक जन्तुओं का वध करते हैं, एवं उन स्थानों को निरापद करते हैं जहां गायों के चरने योग्य भूमि है –

"वसानस्तन्त्रकनिभे सर्वाङ्गीणे तरुत्वचौ ।
काण्डीरः खाड्गिकः शाङ्र्गी रक्षन्विप्रांस्तनुत्रवान् ।।
हित्वाऽऽशितङ्गवीनानि फलैर्येष्वाशितम्भवम् ।
तेष्वसौ दन्दशूकारिर्वनेष्वानभ्रनिर्भयः ।।"[1]

राम की दयावीरता का दर्शन हमें उस स्थल पर भी होता है जब वह वनवासिनी शबरी के धर्म–कर्म को पूछते हैं एवं उसके आतिथ्य को स्वीकार करते हैं –

"वसानां वल्कले शुद्धे विपूयैः कृतमेखलाम् ।
क्षामामञ्जनखण्डाभां दण्डिनीमजिनास्तराम् ।।
प्रगृह्यपदवत्साध्वीं स्पष्टरुपामविक्रियाम् ।
अगृह्यां वीतकामत्वाद् देवगृह्यमनिन्दिताम् ।।
धर्मकृत्यरतां नित्यमवृष्यफलभोजनाम् ।
दृष्ट्वा तानमुचद्रामो युग्यायात इव श्रमम् ।।"[2]

युद्धवीरता :–

रावणवध के अधोलिखित स्थलों पर युद्ध के चित्रण हैं – द्वितीय सर्ग में यज्ञरक्षण के समय, चतुर्थ–सर्ग में खरदूषण–वध, पंचम सर्ग में जटायु–रावण युद्ध, षष्ठ सर्ग में बालि–सुग्रीव युद्ध तथा राम द्वारा बालि–वध, अष्टम सर्ग में अशोक वाटिका रक्षक राक्षसों से हनुमान् का भयंकर युद्ध एवं अक्ष–वध, चतुर्दश सर्ग में कुम्भकर्ण, प्रहस्त इतयादि का वध तथा सप्तदश सर्ग में लक्ष्मण इन्द्रजीत और राम–रावण युद्ध व वध का विस्तृत चित्रण किया गया है ।

महर्षि विश्वामित्र की यज्ञरक्षा के समय धर्मरक्षक राम यज्ञ विध्वसिनी क्रूरकमी ताड़का का वध करते हैं –

"तं विप्रदर्शं कृतघातयत्ना यान्तं वने रात्रिचरी डुढौके ।
जिघासुवेदं घृतभासुराऽत्रस्तां ताडकाऽऽख्यां निजघान रामः ।।"[3]

---

१. भट्टिकाव्य ४/१० – ११

२. वही ६/६१ – ६३

३. वही २/२३

मिथिला से सीता–विवाह के बाद लौटते समय राम मार्ग में क्षत्रिय विनाशक परशुराम के गर्व को खण्डित करते हैं और पुण्य के प्रभाव से जीते हुए उनके लोकों को नष्ट कर देते हैं –

"अजीगणद्दाशरथं न वाक्यं यदा स दर्पेण तदा कुमारः ।
धनुर्व्यकार्क्षीद् गुरुबाणगर्भं लोकानलावीद्विजितांश्च तस्य ।।" [१]

परशुराम के व्यक्तित्व का वर्णन देखकर ही हमें उनकी युद्धवीरता का परिचय मिलता है –

"विशङ्कटो वक्षसि बाणपाणिः सम्पन्नतालद्वयसः पुरस्तात् ।
भीष्मो धनुष्मानुपजान्वरत्निरैति स्म रामः पथि जामदग्न्यः ।।" [२]

विशाल वक्षः स्थल वाले, हाथ में बाण लिए हुए, बहुत बड़े तालवृक्ष के समान ऊँचे, भयङ्कर, धनुर्धारी, लम्बी भुजाओं वाले, ऋषि जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी मार्ग में आगे राम को मिले ।

अपने वनवास–काल में भ्राता युगल चौदह हजार सेना से युक्त खर और दूषण से संग्राम करने के लिए तत्पर हो उठते हैं –

"तौ चतुर्दशसाहस्त्रबलो निर्ययतुस्ततः ।
पारश्वधिकधानुष्कशाक्तीप्रासिकाऽन्वितौ ।।" [३]

तलवार, मुसल, भाला, चक्र, बाण और गदा धारण करने वाले खर और दूषण रामचन्द्र के तीक्ष्ण बाणों से यमराज के अधीन कर दिए गए –

"तौ खड्गमुसलप्रासचक्रबाणगदाकरौ ।
अकार्ष्टामायुधच्छायं रजः सन्तमसे रणे ।।
अथ तीक्ष्णायसैर्बाणैरधिमर्म रघूत्तमौ ।
व्याधं व्याघममूढौ तौ यमसाच्चक्रतुर्द्विषौ ।।" [४]

सीता–हरण कर्त्ता रावण से जटायु का घनघोर युद्ध वर्णन देखिए –

"सतामरुष्करं पक्षी वैरकारं नराशिनम् ।

---

१. भट्टिकाव्य २/५३

२. वही २/५०

३. वही ४/४०

४. वही ५/२, ३

हन्तुं कलहकारोऽसौ शब्दकारः पपात खम् ।।
धुन्वन् सर्वपथीनं खे वितानं पक्षयोरसौ ।
मांसशोणितसन्दर्शं तुण्डधातमयुध्यत्त ।।
न विभाय, न जिह्राय, न चक्लाम, न विव्यथे ।
आध्मानो विध्यमानोऽपि रणान्निववृते न च ।।"[1]

गृध्रराज जटायु ने रावण के विशालकाय रथ को भी भङ्ग कर दिया –

"पिशाचमुखधौरेयं सच्छत्रकवचं रथम् ।
युधि कद्रथवद्भीमं बभञ्ज ध्वजशालिनम् ।।"[2]

जटायु और रावण दोनों ही कोपाविष्ट होकर एक–दूसरे को मारने की चेष्टा करने लगे, न ही जटायु ने वहाँ से पलायन किया और न ही रावण ने उस पर दया की –

"हन्तुं क्रोधवशादीहाञ्चक्राते तौ परस्परम् ।
न वा पलायाञ्चक्रे विर्दयाञ्चक्रे न राक्षसः ।।"[3]

नवम सर्ग में सीतान्वेषण के समय हनुमान् अशोक वाटिका भङ्ग करते हुए राक्षसों से घमासान युद्ध करते हैं –

"दध्वान मेघवद् भीममादाय परिघं कपिः ।
नेदुर्दीप्तायुधास्तेऽपि तडित्वन्त इवाऽऽम्बुदाः ।।"[4]

जैसे वर्षा ऋतु में बढ़े हुए जलप्रवाहों से युक्त नदियाँ समुद्र में संगत होती हैं, उसी प्रकार राक्षस भी मेघ के समान गम्भीर हनुमान् जी से संगत हुए –

"कपिनाऽम्भोधिधीरेण समगंसत राक्षसाः ।
वर्षासूद्धततोयौधाः समुद्रेणेव सिन्धवः ।।"[5]

तत्पश्चात् रावणतनय अक्षकुमार से हनुमान् का घनघोर युद्ध होता है । दोनों ही युद्धस्थल में अपने–अपने

---

१. भट्टि काव्य ५/१०० – १०२
२. वही ५/१०३
३. वही ५/१०६
४. वही ९/६५
५. वही ९/६

पराक्रम से शोभित हुए –

"वानरं प्रोर्णुनविषुः शस्त्रैरक्षो विदिद्युते ।
तं प्रोर्णुनूषुरुपलैः सवृक्षैराबभौ कपिः ।।"[१]

बहुत समय तक युद्ध करके अन्त में वह अक्षकुमार वायुपुत्र द्वारा मृत्यु को प्राप्त हो गया –

"मायाभिः सुचिरं क्लिष्ट्वा राक्षसोऽक्लिशितक्रियम् ।
सम्प्राप्य वानरं भूमौ पपात परिधाऽऽहतः ।।"[२]

रावणपुत्र अक्षकुमार का वध करने के बाद महावीर हनुमान् पुनः अशोक वाटिका भङ्ग करने लगे । वृक्षों को चारों दिशाओं में फेकते हुए, युद्ध में शत्रुओं को तिरस्कृत करते हुए, अपने शरीर और वृक्षों से दिशाओं के विस्तार को आच्छादित करते हुए हनुमान् जी एक होकर भी अनेक के सदृश दिखाई दे रहे थे –

"चतुष्काष्ठं क्षिपन् वृक्षान् तिरस्कुर्वन्नरीन् रणे ।
तिरस्कृतदिगाभोगो ददृशे बहुधा भ्रमन् ।।"[३]

लंका के भयंकर समर में वानरों और राक्षसों के घोर संग्राम में नाना प्रकार के अस्त्र–शस्त्र से युक्त युद्ध होता है । दोनों तरफ के सैनिक क्षत–विक्षत होकर चिल्लाने लगे एवं विचलित हो उठे –

"तस्दतनुर्, जह्वलुर्, मम्लुर्, जग्लुर्, लुलुठिरे क्षताः ।
मुमूर्च्छुर्, ववमू रक्तं, ततृषुश् चोभये भटाः ।।"[४]

राम–रावण युद्ध में राम अकेले ही लक्षाधिक राक्षसों का वध करते हैं –

"ततः शत–सहस्त्रेण रामः प्रौर्णोन्निशाचरम् ।"[५]

राम–रावण दोनों के अस्त्र परस्पर एक दूसरे को काट रहे हैं, रावण ने क्रुद्ध होकर लाखों बाणों से राम की छाती को ढक दिया । राम ने भी उससे अधिक बाणों से रावण को उत्पीड़ित किया –

"ताभ्यामन्योन्यमासाद्य समवाप्यत संशमः ।

---

१. भट्टिकाव्य ६/३६

२. वही ६/३८

३. वही ६/६२

४. वही १४/३०

५. वही १७/६६

लक्षेण पत्रिणां वक्षः क्रुद्धो रामस्य राक्षसः ।।
अस्तृणादधिकं रामस् ततोऽदेवत् सायकैः ।
अक्लाम्यद्रावणस् तस्य सूतो रथमनाशयत् ।।"[1]

अन्त में राम ने सारे तेजो के पुञ्ज उस महाघोर ब्रह्मस्त्र से रावण को भेद कर पृथ्वी पर सुला दिया –

"नभस्वान् यस्य वाजेषु, फले तिग्मांशु–पावकौ ।
गुरुत्वं मेरु–सङ्काशं, देहः सूक्ष्मो वियन्मयः ।।
राजितं गारुडैः पक्षैर्, विश्वेषां धाम तेजसाम् ।
स्मृतं तद्रावणं भित्त्वा सुधोरं भुव्यशाययत् ।।"[2]

अर्थात् जिसके पंख में वायुदेव थे, ठोर में सूर्य और अग्नि थे, मेरु सदृश जो भारी था, आकाश के तुल्य जिसका सूक्ष्म शरीर था, गरुड़ के पंखों तुल्य जिसके पंख थे, सारे तेजों का जो स्थान था – उस महाघोर ब्रह्मस्त्र ने रामचन्द्र का स्मरण करते ही रावण को भेदकर पृथ्वी पर सुला दिया ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य में अङ्गी रस के रूप में वीररस का प्रतिपादन सांगोपांग तथा बहुत ही कुशलता से किया है ।

भट्टिकाव्य में अन्य रस :–

करुण रस :–

महर्षि वाल्मीकि की करुण वेदना से उत्पन्न रामायण शोक का असीमित सागर है । करुण रस का स्थायिभाव **शोक** ही वाल्मीकि रामायण में **श्लोक** के रूप में परिणत हो गया है ।[3]

कालिदास की भी स्पष्ट उक्ति है –

"निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।" – रघुवंश

करुण रस एवं विप्रलम्भ में भेद :–

करुण तथा विप्रलम्भ की स्थिति में कभी–कभी भ्रम हो जाता है । लेकिन करुण रस का स्थायिभाव **शोक**

---

१. भट्टिकाव्य १७/१०१ – १०२

२. वही १७/११० – १११

३. "शोकः श्लोकत्वमागतः" ध्वन्यालोकः, आनन्दवर्धन, १/५ .

और विप्रलम्भ का स्थायिभाव **रति** होता है, क्योंकि उसमें पुनर्मिलन की आशा रहती है जैसा कि साहित्यदर्पणकार ने कहा है –

"शोकस्थायितया भिन्नो विप्रलम्भादयं रसः ।
विप्रलम्भे रतिः स्थायी पुनः सम्भोगहेतुकः ।।" [१]

विप्रलम्भ में पुनर्मिलन की आशा बनी रहने से दुःखमय होने पर भी उसमें जीवन का आशामय दृष्टिबिन्दु बना रहता है, परन्तु करुण रस में पुनर्मिलन की कोई सम्भावना न रहने से निराशामय दृष्टिकोण हो जाता है ।

इसीलिए भरतमुनि ने विप्रलम्भ को **सापेक्ष** और **करुण** को **निरपेक्ष** अर्थात् निराशामय रस कहा है –

"करुणस्तु शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविभावनाश–वध–बन्धसमुत्थो 'निरपेक्षभावः । औत्सुक्यचिन्तासमुत्थः 'सापेक्षभवो' विप्रलम्भकृतः । एवमन्यः करुणोऽन्यश्च विप्रलम्भ इति ।" [२]

साहित्यदर्पणकार ने **इष्टनाश** तथा **अनिष्टप्राप्ति** दोनों को करुण रस का कारण माना है । इष्टनाश में दो नायक–नायिका में से किसी का नाश होता है और अनिष्टप्राप्ति में अन्य पिता–पुत्रादि सम्बन्धियों की मृत्यु, वध, बन्धन आदि का अन्तर्भाव होता है ।

"इष्टनाशादिभिश्चेतोवैक्लव्यं शोकशब्दभाक् ।" [३]

वाल्मीकि रामायण में अनेक ऐसे प्रसङ्ग हैं जो मार्मिक करुणा से आप्लावित हैं ।

रामायण को ही **उपजीव्य** मानकर रचित 'रावणवध' में भी उसी का अनुकरण कर महाकवि भट्टि ने भी **करुण रस** की मार्मिक व्यञ्जना प्रस्तुत की है ।

कैकेयी की हठवादिता से प्राणप्रिया राम को वनवास का आदेश देकर महाराज दशरथ पुत्रवियोग में स्वर्गवासी हो जाते हैं –

"आसिष्ट नैकत्र शुचा व्यरंसीत् कृताऽकृतेभ्यः क्षितिपाल भाग्भ्यः ।
स चन्दनोशीरमृणालदिग्धः शोकाग्निनाऽगाद् द्युनिवासभूयम् ।।" [४]

---

१. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, ३/२२६

२. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, ६/४५, पृ० ३०६

३. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, ११७

४. भट्टिकाव्य, ३/२१

महाराज दशरथ के स्वर्गवासी हो जाने पर समस्त अयोध्यावासी शोकाकुल हो जाते हैं । दशरथ वियोगिनी रानियाँ विक्षिप्त होकर अपने केशों को नोचने लगती हैं एवं सौभाग्य चिन्हों को उतार कर फेंक देती हैं । भूमि पर गिरकर करुण–विलाप करने लगती हैं –

"विचुक्रुशुर्भमिपतेर्महिष्यः केशांल्लुलुञ्चुः स्ववपूंषि जघ्नुः ।
विभूषणान्युन्मुमुचुः क्षमायां पेतुर्बभञ्जुर्वलयानि चैव ।।" [१]

भरत के ननिहाल से वापस आने पर माताएँ तथा पुरोहित और मन्त्रियों के आगे किए हुए योद्धा लोग भी भरत के समीप आ–आकर बढ़े हुए शोक से व्याप्त, फूली हुई, ग्रीवा की नाड़ी वाले तथा अश्रुपूरित नेत्रों वाले हो ऊँचे स्वर से "हा महाराज ! आप कहाँ चले गए । इस प्रकार करुण क्रन्दन करने लगे" –

"चक्रन्दुरुच्चैर्नृपतिं समेत्म तं मातरोऽभ्यर्णमुपागताऽस्त्राः ।
पुरोहिताऽमात्यमुखाश्चयोधा विवृद्धमन्युप्रतिपूर्णमन्याः ।।" [२]

लंकायुद्ध में नागपाश में आबद्ध राम और लक्ष्मण को देखकर पतिपरायणा सीता–विलाप करते करते पुष्पक विमान से मूर्च्छित हो जाती हैं । उनके प्राण ध्वस्त एवं शरीर काष्ठवत् निश्चल हो जाता है । राम को मृत जानकर सीता अपने जीवन को बारम्बार धिक्कारती है । बार–बार केशों का उच्चाटन कर भूतल पर गिर पड़ती हैं [३]–

"प्राणा दध्वंसिरे, गात्रं तस्तम्भे च प्रिये हते ।
उच्छश्वास चिराद् दीना, रुरोदासौ ररास च ।।
लौह–बन्धैर बबन्धे नु, वज्रेण किं विनिर्ममे ।
मनो में न विना रामाद्यत् पुस्फोट सहस्त्र–धा ।।
उत्तेरिथ समुद्रं त्वं मदर्थेऽरीन् जिहिंसिथ ।
ममर्थ चाऽतिघोरां मां धिग् जीवित्–लघूकृताम् ।।
न जिजीवाऽसुखी तातः प्राणता रहितस्त्वया ।
मृतेऽपि त्वयि जीवन्त्या कि मयाणकभार्यया ।।
सा जुगुप्सान् प्रचक्रेऽसून् जगर्हे लक्षणानि च ।
देहभाञ्ज ततः केशान् लुलुञ्च, लुलुठे मुहुः ।।

---

१. भट्टिकाव्य ३/२२

२. वही ३/२३

३. वही १४/१५

जंग्लौ, दध्यौ, वितस्तान्, क्षणं प्राणं न विव्यथे ।
दैवं निनिन्द चक्रन्द, देहे चाऽतीव मन्युनां ।।''

इन्द्रजित् द्वारा माया सीता का वध किए जाने पर राम–लक्ष्मण मोह को प्राप्त होकर करुण क्रन्दन करते हुए उष्ण निःश्वास लेकर रुदन करते हुए बारम्बार उन्हें पुकारने लगते हैं –

''ततः प्रामुह्यतां वीरौ राधवावरुतां तथा ।
उष्णं च प्राणितां दीर्घमुच्चैर्व्याक्रोशतां तथा ।।'' [१]

राम सेना द्वारा कुम्भकर्ण, अतिकाय, त्रिशिरा आदि राक्षस वीरों का वध किए जाने पर रावण अत्यन्त विक्षिप्त एवं शोक सन्तप्त होकर विलाप करने लगता है । उसे राज्य की और सीता की भी इच्छा नहीं रह जाती है–

''ततः प्ररुदितो राजा रक्षसां हतबान्धवः ।
किं करिष्यामि राज्येन सीतया किं करिष्यते ।।'' [२]

रावण स्वजनों के वियोग से दुःखी होकर स्वयं मृत्यु की कामना करता है – ''प्रोत्साहिष्ये न जीवितुम्'' [३]

रावणवध के अनन्तर भ्रातृ–शोक से संतप्त होकर विभीषण अत्यन्त व्याकुल होकर विलाप करने लगता है–

''व्यश्नुते स्म ततः शोको नाभिसम्बन्धसम्भवः ।
विभीषणमसावुच्चै रोदिति स्म दशाऽऽननम् ।।
भूमौ शेते दशग्रीवो महार्हशयनोचितः ।
नेक्षते विह्वलं मां च न मे वाचं प्रयच्छति ।।'' [४]

रावण वियोग में विभीषण का चित्त शोक से आच्छादित हो रहा है, ओज शान्त हो रहा है, दुःख ज्ञान को दूर कर रहा है, उनका तेज नष्ट हो रहा है –

''प्रोर्णोति शोकश्चित्तं में सत्त्वं संशाम्यतीव मे ।
प्रमाष्टि दुःखमालोकं मुञ्चाम्यूर्जं त्वया विना ।।'' [५]

---

१. भट्टिकाव्य १७/२४

२. वही १६/१

३. वही १६/२

४. वही १८/१ – २

५. वही १८/२८

रावण के अन्तःपुर की स्त्रियां रावण की मृत्यु का दुःखद समाचार सुनकर अपने केशों को खींच–खींचकर शोक से विह्वल होकर रोने–पुकारने लगती हैं । वे अपने स्वामी के किए गए उपकारों को बार–बार याद करती हैं –

"अन्तःपुराणि पौलस्त्यं पौराश्च भृशदुःखिताः ।
संश्रुत्य स्माऽभिधावन्ति हतं रामेण संयुगे ।।
मूर्धजान् स्म विलुञ्चन्ति, क्रोशन्ति स्माऽतिविह्वलम् ।
अधीयन्त्युपकाराणां मुहुर्भर्तुः प्रमन्यु च ।।" [१]

पुरवासी रावण के पैरों पर गिर–गिरकर आँसू बहाते हैं तथा रोते हैं –

"रावणस्य नमन्ति स्म पौराः सास्त्रा रुदन्ति च ।
भाषते स्म ततो रामो वचः पौलस्त्यमाकुलम् ।।" [२]

वीभत्स रस :–

खर–दूषण से युद्ध के प्रसङ्ग में जब राम–लक्ष्मण ने भूमि को राक्षसों से परिपूर्ण कर दिया, उस समय का एक दृश्य वीभत्स रस का उदाहरण प्रस्तुत करता है –

"तैर्वृक्णरुग्णसम्भुग्नक्षुण्णभिन्नविपन्नकैः ।
निमग्नोद्विग्नसंह्रीणैः पप्रे दीनैश्च मेदिनी ।।" [३]

अर्थात् काटे गये, हाथ–पैर टूटे हुए, प्रहार की वेदना से टेढ़े अंगों वाले, पीसे गये, विदारण किये गये, मरे हुए, पृथ्वी पर पड़े हुए, लज्जित और क्षीण बल वाले उन राक्षसों ने संग्राम–भूमि को अपने शरीर से पूर्ण कर दिया ।

अशोक वाटिका नष्ट करते समय हनुमान् द्वारा घायल राक्षसों ने घावों से खून का वमन किया तथा प्राणों को त्याग कर वे पृथ्वी पर गिर पड़े, भययुक्त होकर कुछ राक्षस चारों दिशाओं में पलायन करने लगे –

"व्रणैरवमिषू रक्तं देहैः प्रौर्णाविषुर्भुवम् ।
दिशः प्रौर्णविषुश्चाऽन्ये यातुधाना भवद्भियः ।।" [४]

---

१. भट्टिकाव्य १८/३७ – ३८

२. वही १८/३६

३. वही ४/४२

४. वही ६/१०

लंका समर में राक्षसों के भयङ्कर संहार से युद्धभूमि शवों से पट जाती है। रुधिर की नदियाँ बहने लगती हैं। सैनिकों के मुख रूपी कमल उन रुधिर नदियों में तैरने लगे। सैन्यदल रुधिर पङ्क में डूब जाते हैं –

"संबभूवुः कबन्धानि प्रोहुः शोणिततोयगाः।
तेरुर्भटास्यपद्मानि ध्वजैः फेणरिवाबभे ।।
रक्तपङ्के गजाः सेदुर्न प्रचक्रमिरे रथाः।
निममज्जुस्तुरङ्गाश्च गन्तुं नोत्सेहिरे भटाः ।।" [१]

खूंखार कुम्भकर्ण ने वानरों को खा लिया, वनवासियों की चर्बी पी ली तथा खून भी पी लिया –

"प्राशीन्न चाऽतृपत्क्रूरः क्षुच्चाऽस्याऽवृधदश्नतः।
अधाद्वसामधासीच्च रुधिरं वनवासिनाम् ।।" [२]

दोनों तरफ की सेनाएं शोभायमान् हो रही थी, हाथी–घोड़े खून का पेशाब करने लगे, राक्षस भी खून फेकने लगे, निर्दय प्रहार करने लगी –

"मिमेह रक्तं हस्त्यश्वं राक्षसाश्च नितिष्ठिवुः।
ततः शुशुभतुः सेने निर्दयं च प्रजह्तुः ।।" [३]

रावणवध के बाद सियार मासपिण्डो को नोच कर खा रहे हैं, पृथ्वी रुधिर–पान कर रही है, चर्बी इत्यादि आमिषों को काक और गृद्ध खा रहे हैं कितना वीभत्स दृश्य है –

"शिवाः कुष्णन्ति मांसानि भूमिः पिबति शोणितम्।
दशग्रीवसनाभीनां समदन्त्यामिषं खगाः ।।" [४]

हास्य रस :–

महाकवि भट्टि ने हास्य रस का प्रयोग न के बराबर किया है फिर भी इसका अल्प प्रदर्शन कामुकी शूर्पणखा की काम विह्वलता के समय किया गया है। जब राम–लक्ष्मण उसे एक–दूसरे के पास विवाह के लिए भेजते हैं। [५]

---

१. भट्टिकाव्य १४/२७ – २६
२. वही १५/२६
३. वही १४/१००
४. वही १८/१२
५. वही ४/२८ – ३२

रौद्र रस :–

सीताहरण के अनन्तर वियोगी राम क्रोधाभिभूत होकर रौद्र रूप धारण कर लेते हैं । वे कुपित होकर अग्नि की तरह प्रज्वलित हुए, क्षण भर में ही उनके नेत्र लाल हो गए । उन्होंने त्रैलोक्य का विनाश करने का संकल्प किया और वे सूर्य की तरह तेज से परिपूर्ण हो गये –

"क्रुद्धोऽदीपि रघुव्याघ्रो रक्तनेत्रोऽजनि क्षणात् ।
अबोधि दुस्थं त्रैलोक्यं दीप्तैरापूरि भानुवत् ।।" [1]

राम की अन्तः शक्ति बढ़ जाती है । वे दीर्घ उच्छ्वास लेकर कहते हैं – "मैं समुद्र को जलशून्य कर दूँगा, देवताओं को स्वर्ग से निष्कासित कर दूँगा, पाताल का छेदन कर सर्पों को चूर्ण कर दूँगा ।"

"अथाऽऽलम्ब्य धनू रामो जगर्ज गजविक्रमः ।
रुणाध्मि सवितुर्मार्गं भिनद्मि कुलपर्वतान् ।।
रिणच्मि जलधेस्तोयं विविनच्मि दिवः सुरान् ।
क्षुणद्मि सर्पान् पाताले छिनद्मि क्षणदाचरान् ।।" [2]

वे आगे क्रोधाभिभूत होते हुए कहते हैं – "मैं अपने अस्त्रों से यमराज को भी मृत्यु के वशीभूत कर दूँगा, पृथ्वी को भी चूर्ण कर दूँगा, कुबेर की सम्पत्ति को तथा इन्द्र के पराक्रम को नष्ट कर दूँगा, सम्पूर्ण मर्यादा को तोड़ दूँगा तथा विस्तृत आकाश को भी संकुचित कर दूँगा ।" –

"यमं युनज्मि कालेन समिन्धानोऽस्त्रकौशलम् ।
शुष्कपेषं पिनष्म्युर्वीमखिन्दानः स्वतेजसा ।।
भूतिं तृणद्मि यक्षाणां हिनस्मीन्द्रस्य विक्रमम् ।
भनज्मि सर्वमर्यादास्तनच्मि व्योम विस्तृतम् ।।" [3]

शान्त रस :–

राम को वन से वापस लाने हेतु भरत वन जाते समय भरद्वाज मुनि के समीप आते हैं । यहाँ पर हमें शान्तरस का उदाहरण देखने को मिलता है –

"वाचंयमान् स्थण्डिलशायिनश्च युयुक्षमाणाननिशं मुमुक्षून् ।

---

१. भट्टिकाव्य ६/३२
२. वही ६/३५ – ३६
३. वही ६/३७ – ३८

अध्यापयन्तं विनयात्प्रणेमुः पद्गा भरद्वाजमुनिं सशिष्यम् ।।" [१]

अर्थात् मौनव्रत धारण करने वाले और पृथ्वी पर शयन करने का व्रत लेने वाले, निरन्तर योगाभ्यास में लगे हुए, मोक्ष की कामना रखने वाले, विरक्तों को ब्रह्मविद्या पढ़ाने वाले शिष्यों सहित भारद्वाज मुनि को उन लोगों ने (भरत तथा उनके अन्य सेवको ने) नम्रतापूर्वक प्रणाम किया ।

रामचन्द्र के अयोध्या से निकलने पर वह चारों तरफ तालाबों, नदियों, सभी दिशाओं से व्याप्त शरद्–ऋतु को देखते हैं । शरद्ऋतु का यह वर्णन **शान्त रस** का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

भट्टि का एक बहुत ही प्रसिद्ध श्लोक भी इस रस के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

"न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं, न पङ्कजं तद् यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ।।" [२]

शरद्ऋतु में ऐसा कोई जलयुक्त तालाब नहीं था, जहाँ पर सुन्दर कमल न हों, ऐसा कोई कमल नहीं था, जिस पर भौरा नहीं बैठा हो, ऐसा कोई भ्रमर नहीं था, जो मधुर गुञ्जार न कर रहा हो और ऐसा कोई झंकार न थी, जो मन को हरण न कर सकी ।

भयानक रस :–

हनुमान् द्वारा अशोक वाटिका भङ्ग किए जाने के प्रसङ्ग में हमें **भयानक रस** के कतिपय उदाहरण दिखाई देते हैं –

नवम सर्ग में हनुमान् जी के उपद्रव व उपवन को भङ्ग करते समय राक्षसों का शरीर जो भय से पुलकित हो रहा है, अत्यन्त स्वाभाविक है –

"भयंसहृष्टरोमाणस्ततस्तेऽपचितद्विषः ।
क्षणेन क्षीणविक्रान्ताः कपिनाऽनेषत क्षयम् ।।" [३]

इसी प्रकार हनुमान् द्वारा लंका–दहन के समय राक्षसों द्वारा भय से व्याकुल नेत्रों द्वारा देखे जाने का प्रसङ्ग देखिए –

---

१. भट्टिकाव्य ३/४१

२. वही २/१६

३. वही ६/२२

"अथ स वल्कदुकूलकुथाऽऽदिभिः
परिगतो ज्वलदुद्धतबालधिः ।
उदपतद् दिवमाकुललोचनै –
र्नृरिपुभिः सभयैरभिवीक्षितः ।।" [1]

अर्थात् वल्कल, पट्टवस्त्र और कुश आदि तृणों से वेष्टित और जलते हुए, उन्नत पूँछ से युक्त हनुमान् जी भयभीत अतएव व्याकुल नेत्रवाले राक्षसों से देखे जाते हुए आकाश में उछल पड़े ।

प्रत्येक दिशा में भागने वाले, भय के कारण अत्यन्त पराक्रमी पुरुष जो शौर्यादि गुणों से परिपूर्ण हैं, उनकी चेष्टाएं भय के कारण महत्वहीन हो गई हैं अर्थात् भय के कारण वे अपनी वीरता का पूर्ण प्रदर्शन नहीं कर पा रहे हैं –

"पिशिताशिनामनुदिशं स्फुटतां
स्फुटतां जगाम परिविह्वलता ।
ह्वलता जनेन बहुधा चरितं
चरितं महत्त्वरहितं महता ।।" [2]

महाकवि भट्टि का प्रकृति चित्रण :–

प्रकृति मानव की सहचरी है । वह नायक–नायिका के सुख–दुःख में, हर्ष–विषाद के क्षणों में उनके साथ–साथ रहती है । महाकाव्य में प्रकृति के विभिन्न उपादानों जैसे – सन्ध्या, प्रातः, सूर्य–चन्द्र, वन–पर्वत इत्यादि का प्रसङ्गोचित्त चित्रण आवश्यक है । विश्वनाथ ने महाकाव्य का लक्षण करते हुए इसका स्पष्ट उल्लेख किया है –

"सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषहवान्तवासराः ।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ।।" [3]

'रावणवध' में महाकवि भट्टि ने प्रकृति के उपदानों को अवसर के अनुकूल चित्रित किया है । 'वाल्मीकि रामायण' में भी प्रकृति के अत्यन्त सजीव एवं आकर्षण वर्णन मिलते हैं । भट्टि ने प्रकृति का चित्रण काव्य के आवश्यक तत्व के रूप में किया है, उन्होंने अपने प्रकृति–चित्रण में चारुता लाने का पूर्ण प्रयास किया है ।

---

१. भट्टिकाव्य १०/१

२. वही १०/८

३. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, ६/३२२

१. हृदयस्पर्शी शरद्वर्णन :–

भट्टि ने अपना प्रकृति–चित्रण 'रावणवध' के द्वितीय–सर्ग में शरद्वर्णन से प्रारम्भ किया है । अयोध्या से महर्षि विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा हेतु प्रस्थान कर राम द्वारा शरद् काल में विकसित कमलों, कुमुदों, भ्रमरों का चेतनापूर्ण चित्रण है –

१. शरद्कालीन प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कवि ने कहा है कि रक्तकमल पानी की तरंगो के हिलने के कारण चंचल पत्तों से युक्त व भ्रमरों से युक्त होने के कारण धूमवाली जलती हुई अग्नि की तरह कान्ति वाले सुशोभित हो रहे हैं –

"तरङ्गसङ्गाच्चपलैः पलाशैर्ज्वालाश्रियं साऽतिशयां दधन्ति ।
सधूमदीप्ताऽग्निरुचीनि रेजुस्ताम्रोत्पलान्याकुलषट्पदानिं ।।" [१]

'एकावली' नामक अलङ्कार का प्रसिद्ध उदाहरण भी देखिए –

जल में कमल, कमल पर भ्रमर, भ्रमर का मधुर गुञ्जन दर्शकों के मन को आकर्षित कर रहा है –

"न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं न पङ्कजं तद् पदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ।।" [२]

इसके अतिरिक्त सप्तम सर्ग में वर्षा ऋतु के बिजली से युक्त अतएव प्रकाशमान भ्रमणशील बादलों ने सूर्य के प्रकाश को भी तिरस्कृत कर दिया –

"निराकरिष्णवो भानुं दिवं वर्तिष्णवोऽभितः ।
अलङ्करिष्णवो भान्तस्तडित्वन्तश्चरिष्णवः ।।" [३]

अष्टम सर्ग में रावण के उपवन अशोक वाटिका में प्रकृति का सुन्दर वर्णन किया है, जहाँ पर चन्द्रमा सदैव अपनी सोलह कलाओं से पूर्ण रहता है तथा विकसित कमलों से भरी हुई वावलियों को चन्द्रमा रूप अमृत पिलाता था –

"ज्योत्स्नाऽमृतं शशी यस्यां वापीर्विकसितोत्पलाः ।
अपाययत संपूर्णः सदा दशमुखाऽऽज्ञया ।।" [४]

---

१. भट्टिकाव्य २/२

२. वही २/१६

३. वही ७/३

४. वही ८/६२

उस अशोक वाटिका में चन्द्रकान्त मणियाँ पिघलती थीं, कुमुदों के समूह शोभित होते थे और गुच्छों की राशियाँ बिखरती हुई टक्कर मारती थी –

"अस्यदन्निन्दुमणयो व्यरुचन् कुमुदाऽऽकराः ।
अलोठिषत वातेन प्रकीर्णाः स्तबकोच्चयाः ।।"[१]

२. चेतना संवलित प्रकृति–चित्रण या प्रकृति का मानवीकरण :–

जब प्रकृति के उपादानों पर मानव व्यवहारों का आरोप किया जाता है तब उसे 'प्रकृति का मानवीकरण' कहा जाता है । भट्टि ने भी प्रकृति में चेतना आरोपित करने का प्रयास किया है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

सरिता तट पर स्थित तमाल के वृक्ष से गिरती ओंस की बूदों से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानों कुमुदिनी के वियोग से दुःखित वृक्ष भी आँसू की धारा बहा रहा है –

"निशातुषारैर्नयनाऽम्बुकल्पैः पत्राऽन्तपर्यागलदच्छबिन्दुः ।
उपारुरोदेव नदत्पतङ्गः कुमुद्वतीं तीरतरुर्दिनादौ ।।"[२]

महाकवि भट्टि ने भ्रमरों पर नेत्र का आरोप करते हुए कहा है कि वन और जल दोनों ही भौरों से युक्त आँखों के समान फूलों और कमलों से परस्पर एक–दूसरे की शोभा को मानो देख रहे हैं –

"वनानि तोयानि च नेत्रकल्पैः पुष्पैः सरोजैच निलीनभृङ्गै ।
परस्परां विस्मयवन्ति लक्ष्मीमालोकयाञ्चक्रुरिवादरेण ।।"[३]

कवि ने कमलिनी पर मानिनी नायिका का आरोप करते हुए कहा है कि मानो क्रोधित होकर कमलिनी कुमुदिनी के पराग से पीले शरीरवाले भौरें को हटाती है क्योंकि स्वाभिमानी नायिका दूसरी स्त्री के साथ अपने पति के संसर्ग को सहन नहीं कर पाती है –

"प्रभातवाताहतिकम्पिताकृतिः, कुमुद्वतीरेणुपिशङ्गविग्रहम् ।
निरास भृङ्गं कुपितेव पद्मिनी, न मानिनी संसहतेऽन्यसङ्गमम् ।।"[४]

वन्य मृग भ्रमरों के मधुर गान से आत्मविभोर होकर सब कुछ भूल गए हैं –

---

१. भट्टिकाव्य ८/६६
२. वही २/४
३. वही २/५
४. वही २/६

"दत्तावधानं मधुलेहिगीतौ प्रशान्तचेष्टं हरिणं जिघांसुः ।
आकर्णयन्नुत्सुकहंसनादाँल्लक्ष्ये समाधिं न दधे मृगावित् ।।" [१]

जब हनुमान् जी ने सीता जी को खोजने के लिए अतिशय वेग से आकाश–मार्ग में गमन किया, तब उन्हें मार्ग में अपने पिता के द्वारा इन्द्र से रक्षित मैनाक नामक पर्वत के दर्शन होते हैं । वहाँ पर पर्वत द्वारा अतिथि सत्कार इत्यादि वर्णन भी प्रकृति का चेतनाकृत वर्णन ही है । यथा –

"के न संविद्रते वायोर्मैनाकाऽद्रिर्यथा सखा ।
यत्नादुपाह्ये प्रीतः संह्वयस्व विवक्षितम् ।।" [२]

मैनाक पर्वत का हनुमान् के प्रतिकथन है – हे हनुमान्! वायु का मैनाक पर्वत मित्र है, यह कौन नहीं जानता? इस कारण प्रसन्न होकर यत्न से आपको बुलाता है, अपना अभिष्ट कार्य कहिए ।"

३. प्रकृति का उद्दीपन रूप :–

प्रकृति कभी–कभी वियोगी पुरुष के बिरह की उद्दीपन बन जाती है । महाकवि भाट्टि ने भी अपने प्रकृति–वर्णन को उद्दीपन के रूप में ही प्रस्तुत किया है । अतएव भ्रमर का गुञ्जन तथा विविध पक्षियों से युक्त पम्पासर राम के दुःख को बढ़ा रहे हैं –

"भृङ्गालीकोकिलक्रुङ्भिर्वाशनैः पश्य लक्ष्मण!।
रोचनैर्भूषितां पम्पामस्माकं ह्रदयाविधम् ।।" [३]

विकसित कमल प्रियाविरहित व्यक्ति को पीड़ित कर रहे हैं तथा चित्त को मथ रहे हैं –

"परिभावीणि ताराणां पश्य मन्थीनि चेतसाम् ।
उद्भासीनि जलेजानि दुन्वन्त्यदयितं जनम् ।।" [४]

गुञ्जार करने वाले, पुष्प रसों को पान करने वाले और पुष्पों को सूंघने वाले इन भ्रमरों ने राम को अत्यन्त पीड़ित कर दिया है तथा पुष्प गुच्छों को धारण करने वाले, वियोगी ह्रदयों को उत्कम्पित करने वाले इन वृक्षों से भी राम का ह्रदय अन्तन्त दुःखी हो रहा है –

---

१. भट्टिकाव्य २/७

२. वही ८/१७

३. वही ६/७४

४. वही ६/७५

"ध्वनीनामुद्धमैरेभिर्मधूनामुद्धयैर्भृशम् ।
आजिघ्रैः पुष्पगन्धानां पतङ्गैर्ग्लापिता वयम् ।।
धारयैः कुसुमोर्मीणां पारयैर्बाधितुं जनान् ।
शखिभिर्हा ! हता भूयो हृदयानामुदेजयैः ।।"[१]

सुगन्धित शीतल वायु भी शरीर को अग्नि के समान जलाता हुआ सा प्रतीत हो रहा है –

"ददैर्दुःखस्य मादृग्भ्यो धायैरामोदमुत्तमम् ।
लिम्पैरिव तनोर्वातैश्चेतय स्याज्ज्वलो न कः ।।"[२]

मोती तुल्य ओस की बूंदे भी राम के वियोग की वर्द्धक है –

"अवश्यायकणास्त्रावाश्चारु मुक्ताफलत्विषः ।
कुर्वन्ति चित्तसंस्त्रावं चलत्पर्णाऽग्रसम्भृताः ।।"[३]

वायु के झोंको से कम्पायमान शाखाओं से युक्त तथा गुञ्जन करने वाले भ्रमर रूपी गवैंयो से घिरे हुए ऐसे वृक्ष नर्तक की समान प्रतीत हो रहे हैं अतएव उद्दीपक होने से ये दुःसह है –

"वाताऽऽहतिचलच्छाखा नर्तका इव शाखिनः ।
दुःसहा हा ! परिक्षप्ताः क्वणद्भिरलिगाथकैः ।।"[४]

सप्तम सर्ग में माल्यवान् पर्वत पर निवास करते हुए श्रीराम बादलों को देखकर अधीर और बेचैन पुरुष की भाँति विलाप करने लगते हैं । भ्रमणशील, सुगन्धित वायु और मेघजलों के कणों से युक्त शीतल वायु शान्त मुनियों को भी अत्यन्त बेचैन कर देते हैं, तो वियोगी पुरुषों की बात ही क्या है ? –

"तान् विलोक्याऽसहिष्णुः सन् विललापोन्मदिष्णुवत् ।
वसन् माल्यवति ग्लास्नू रामो जिष्णुरधृष्णुवत् ।।
भ्रमी कदम्बसंभिन्नः पवनः शमिनामापि ।
क्लमित्वं कुरुतेऽत्यर्थं मेघशीकरशीतलः ।।"[५]

---

१. भट्टिकाव्य ६/७८ – ७६

२. वही ६/८०

३. वही ६/८१

४. वही ६/८५

५. वही ७/४ – ५

पपीहों के मधुर शब्दों से युक्त बिजलियाँ तथा नाचने वाले मयूर भी असहनीय हो रहे है –

"संसर्गी परिदाहीव शीतोऽप्याभाति शीकरः ।
सोढुमाक्रीडिनोऽशक्याः शिखिनः परिवादिनः ।।" [१]

वर्षा ऋतु में पड़ रही जलधाराएं शत्रु के समान प्रेमी जनों को तो पीड़ित कर ही रही है, साथ में सुख–दुःख का त्याग करने वाले योगी जनों को भी मोहित कर रही है –

"कुर्याद योगिनमप्येष स्फूर्जावान् परिमोहिनम् ।
त्यागिनं सुखदुःखस्य परिक्षेप्यम्भसामृतुः ।।" [२]

४. पारस्परिक बिम्ब–ग्रहण :–

कविवर भट्टि ने प्रकृति के तत्वों द्वारा पारस्परिक बिम्ब ग्रहण कराया है । कवि को प्रातः कालीन सूर्य तथा उसके किरणों से रञ्जित बहते हुए जल ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो पृथ्वी पर किरणों की धारा के रूप में सूर्य का तेज ही बह रहा हो –

"तिग्मांऽशुरश्मिच्छुरिताऽन्यदूरात् प्राञ्चि प्रभाते सलिलान्यपश्यत् ।
गर्भास्तधाराभिरिव द्रुतानि तेजांसि भानोर्भुवि संभृतानि ।।" [३]

अस्तकालीन चन्द्रमा एवं तारे ऊँचाई से गिरते हुए झरने के समान प्रतीत हो रहे हैं –

"दूरं समारुह्य दिवः पतन्तं भृगोरिवेन्दुं विहितोपकारम् ।
बद्धाऽनुरागोऽनुपपात तूर्णं तारागणः सम्भृतशुभ्रकीर्तिः ।।" [४]

सन्ध्या–वर्णन :–

भट्टिकाव्य में सन्ध्या–वर्णन के प्रति कवि ने विशेष रुचि नहीं दिखलाई है फिर भी कुछ प्रसङ्ग दर्शनीय हैं –

"परेद्यव्यद्य पूर्वेद्युरन्येद्युश्चापि चिन्तयन् ।
वृद्धि क्षयौ मुनीन्द्राणां प्रियम्भावुकतामगात् ।।
आतिष्ठदगु जपन्सन्ध्यां प्रक्रान्तामायतीगवम् ।

---

१. भट्टिकाव्य ७/८

२. वही ७/१०

३. वही २/१२

४. वही ११/२

प्रातस्तरा पतत्रिभ्यः प्रबुद्धः प्रणमन् रविम् ।।"[१]

राम ऋषिवृत्ति के अनुसार ही अपने वनवास काल में सन्ध्योपासनादि कर्म करते हैं क्योंकि राम जानते हैं कि **"ऋषयोदीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घयायुरवाप्नुयुः ।"** अर्थात् ऋषि लोग दीर्घसन्ध्या के कारण से ही दीर्घायु होते रहे हैं । अतः यह कवि वर्णन औचित्य पूर्ण ही है ।

सन्ध्या के समय पूर्णिमा का चन्द्रमा अतिशय मनोहारी होता है ऐसा मनोहर दृश्य सीता के प्रति रावण–कथन में द्रष्टव्य है –

"सायन्तनीं तिथिप्रण्यः पङ्कजानां दिवातनीम् ।
कान्तिं कान्त्या सदातन्या ह्रेपयन्ती शुचिस्मिता ।।"[२]

सन्ध्या के समय सूर्य का वर्ण लाल हुआ तत्क्षण श्यामलतायुक्त होने लगता है इसी तथ्य के प्रति ध्यानस्थ कवि ने श्रीरामचन्द्र और सूर्य के दिनावसान में समुद्रतट पर एक–दूसरे के वर्ण–अनुकरण की मनोहारी कल्पना की है यथा –

"अथमृदुमलिनप्रभौ दिनाऽन्ते जलधिसमीपगतावतीतलोकौ ।
अनुकृतिमितरेरस्य मूर्त्यो र्दिनकरराघवनन्दनावकार्ष्टाम् ।।"[३]

इस प्रकार सन्ध्या वर्णन प्रसङ्ग में कवि कौशल का विशेष एवं समुचित प्राचुर्य का अभाव सा ही दृष्टिगत होता है ।

नक्षत्र–तारकादि वर्णन :–

कवि ने सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं के आधार पर नक्षत्र एवं तारकों आदि का वर्णन प्रस्तुत किया है । पितरों का श्राद्ध मघानक्षत्र में किए जाने से कार्य सफलदायक होते हैं –

"भवत्यामुत्सुको रामः प्रसितः संगमेन ते ।
मघासु कृतनिर्वापः पितृभ्यो मां व्यसर्जयत् ।।"[४]

---

१. भट्टिकाव्य ४/१३ – १४

२. वही ५/६५

३. वही १०/६५

४. वही ८/११७

उल्काओं का पतन अनिष्टकारी होता हैं –

"मार्गं गतो गोत्रगुरुर्भृगूणामगास्तिनाऽध्यासितविन्ध्यश्रृङ्गम् ।
संदृश्यते शक्रपुरोहिताऽह्नि क्ष्मां कम्पन्त्यो निपतन्ति चोल्काः ।।" [१]

वास्तव में तारिकायें उद्दीपन् का कार्य करती है । सीता–वियुक्त राम आकाश में ताराओं को देख व्याकुल हो उठते हैं ।[२]

पर्वत :–

राम के सारे कर्मों में महान् सहयोगी पर्वत ही रहे हैं । ये ही विश्रामस्थल, गन्तव्य आदि सब कुछ रहे हैं । भट्टिकाव्य में वर्णित सुमेरु, महेन्द्र, हिमालय, चित्रकूट, मलय, ऋष्यमूक, किष्किन्धा, माल्यवान्, विन्ध्य, मैनाक, मन्दराचल, सुवेल आदि पर्वत श्रृंखलाओं को 'पर्वतमाला' के नाम से अभिहित कर सकते हैं । कवि ने अयोध्या नगरी के वर्णन में उपमानभूत सुमेरुपर्वत का ही ग्रहणं किया है ।

"सद्रत्नमुक्ताफलवज्रभाञ्जि विचित्रधातूनि सकाननानि ।
स्त्रीभिर्युतान्यप्सरसामिवौधैर्मेरोः शिरांसीव गृहाणि यस्याम् ।।" [३]

चित्रकूट पर्वत का स्वाभाविक चित्रण इस प्रकार दर्शनीय है –

"वैखासेभ्यः श्रुतरामवार्तास्ततो विशिञ्जानपतत्त्रिसङ्गम् ।
अभ्रलिहाऽग्रं रविमार्गभङ्गमानहिरेऽद्रिं प्रति चित्रकूटम् ।।" [४]

विन्ध्यपर्वत के वर्णन में शरतकालीन मेघ की उपमा स्वच्छ दुपट्टे के रूप में करते हुए कवि ने इस प्रकार लिखा है –

"ययुर्विन्ध्यं शरन्मेधैः प्रावारैः प्रवैररिव ।
प्रच्छन्नं मारुतिप्रष्ठाः सीतां द्रष्टुं प्लवङ्गमाः ।।" [५]

मन्दरान्चल पर्वत को पुष्पक विमान का उपमान बताते हुए हनुमान् का कथन इस प्रकार है –

---

१. भट्टिकाव्य १२/७१

२. वही ७/१६

३. वही १/७

४. वही ३/४६

५. वही ७/५३

"ताः हनुमान् पराकुर्वन्नगमन् पुष्पकं प्रति ।
विमानं मन्दरस्याद्रेरनुर्कुवदिव श्रियम् ।।" [1]

कवि ने महेन्द्र पर्वत का विस्तृत एवं स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत किया है । असाधारण ऊँचाई वाले महेन्द्र पर्वत का वर्णन इस प्रकार देखने योग्य है –

"प्रचपलमगुरुं भराऽसहिष्णुं
जनमसमानमनूर्जितं विवर्ज्य ।
कृतवसतिमिवाऽर्णवोपकण्ठे
स्थिरमतुलोन्नतिमूढतुङ्गमेघम् ।।" [2]

भट्टि ने अपने काव्य में सुवेल पवर्त का वर्णन पूर्णतया प्राकृतिक सुषमा से अलङ्कृत हाथी, सिंह, मृगादि जङ्गमप्राणियों के स्वाभाविक क्रिया–कलाप वाले, गुफा, झरना, मणिसंयोग, देवयोनियों के भव्य समागम वाले लौकिक रूप को अलौकिक कल्पना के साथ किया है । इसकी एक झलक इस प्रकार दर्शनीय है –

"समहाफणिभीमबिलं भूरिविहङ्गमतुमुलोरुघोरविरावम् ।
वारणवराहहरिवगोगणसारङ्गसङ्कुलमहासालम् ।।
चलकिसलयसविलासं चारुमहीकमलरेणुपिञ्जरवसुधम् ।
सकुसुमकेसरवाणं लवङ्गतरुतरुणवल्लरीवरहासम् ।।" [3]

इस प्रकार महेन्द्र पर्वत, सुवेल पर्वत का जैसा अलौकिक चित्रण यहां प्राप्त होता है, सम्भव है कि अन्यत्र दुर्लभ होगा ।

नदी–समुद्र :–

नदियां मानव के लिए वरदान स्वरूप हैं यही कारण है कि उनको 'देवी' की संज्ञा से समादृत करते हैं । भट्टि काव्यगत नदियों के अन्तर्गत गंगा, यमुना, तमसा तथा सरयु का वर्णन हमें प्राप्त होता है ।

पितृतर्पण के अवसर पर नदियों का बड़ा महत्व देखा जाता है । नदी तट ही पिण्डदानस्थल से समन्वित देखे जाते हैं यथा –

---

१. भट्टिकाव्य ८/५०

२. वही १०/४६

३. वही १३/३८ – ३९

उच्चिक्यिरे पुष्पफलं वनानि सस्नुःपितृन्पिप्रियुरापगासु ।
आरेटुरित्वा पुलिनान्यशङ्कं छायां समाश्रित्य विशश्रमुश्च ।।"[१]

कवि की अपनी कल्पना है कि समुद्र प्यासा हुआ नदियों के जल को बराबर पीता रहता है । ऐसा नहीं कि नदियां स्वयं समुद्र में प्रवाहित होती रहती है । यहां नदी के साथ ही समुद्र की उत्प्रेक्षा–समन्वित बहुत ही मनोवैज्ञानिक चित्रण दर्शनीय है । यथा –

"अमर्षितमिव ध्नन्तं तटाऽद्रीन् सलिलोर्मिभिः ।
श्रिया समग्रं द्यूतितं मदेनेव प्रलोठितम् ।।
पूतं शीतैर्नभस्वद्भिर्ग्रन्थित्वेव स्थितं रुचः ।
गुम्फित्वेव निरस्यन्तं तरङ्गान् सर्वतो मुहुः ।।
वञ्चित्वाऽप्यम्बरः दूरं स्वस्मिस्तिष्ठतमात्मानि ।
तृषित्वेवाऽनिशं स्वादु पिबन्तं सरितां पयः ।।
द्युतित्वा शशिना नक्तं रश्मिभिः परिवर्धितम् ।
मेरोर्जेतुमिवाऽऽभोगमुच्चैर्दिद्योतिषुं मुहुः ।।"[२]

महाकाव्य के अन्तिम सर्ग का समापन करते हुए कवि सर्वप्रथम श्रीराम के भावीकृत्य भरत की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए हनुमान् के माध्यम से अपने सन्देशभूतं अयोध्यागमन में मार्ग की नदियों का सुमनोहर एवं परमपवित्र वर्णन करता है । यमुना में स्नान और भरद्वाज ऋषि के दर्शन की बात कहते हैं जैसे –

"ततः परं भरद्वाजो भवता दर्शिता मुनिः ।
द्रष्टाश्च जनाः पुण्या यमुनाऽम्बुक्षतांऽहंसः ।।"[३]

अनन्तर कवि राम के शब्दों में गङ्गोत्पति का कथन करते हुए उसमें स्नान की बात करते हैं –

"स्यन्त्वा स्यन्त्वा दिवः शम्भोर्मूर्ध्नि स्कन्त्वा भुवं गताम् ।
गाहितासेऽथ पुण्यस्य गङ्गां मूर्तिमिव द्रुताम् ।।"[४]

तमसा नदी का वर्णन कवि "पुण्य की पिघली हुई मूर्ति के समान" करते हुए कहते हैं –

---

१. भट्टिकाव्य ३/३८
२. वही ७/१०४ – १०७
३. वही २२/१०
४. वही २२/११

"तमसाया महानीलपाषाणसदृशत्विषः ।
वनाऽन्तान् बहु मन्तासे नागराऽऽक्रीडसाक्षिणः ।।" [1]

इसके बाद श्रृङ्गारिकता से परिपूर्ण सरयू नदी का वर्णन दर्शनीय है –

"नगरस्त्रीस्तनन्यस्तधौतकुङ्कुमपिञ्जराम् ।
विलोक्य सरयूं रम्यां गन्ताऽयोध्यात्वया पुरी ।।" [2]

इस प्रकार नदियों के वर्णन में कवि ने महाकाव्य की भूमिका का यथासम्भव निर्वाह किया है ।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि महाकवि ने प्रकृति को मनोरंजन का साधन न मानकर उसे मानव के लिए शिक्षाप्रदायी माना है । अन्तः प्रकृति और बाह्य–प्रकृति चित्रण दोनों कवि के लिए अभिप्रेत प्रतीत होता है । भट्टि ने मानव जैसे प्रकृति को भी सुख–दुःख व संवेदना समन्वित वर्णित किया है । उनके प्रकृति–वर्णन में कल्पना की नूतनता, सुकोमलता, भावुकता एवं सहृदयता तो देखते ही बनती है ।

भट्टि के प्रकृति चित्रण से यह स्पष्ट होता है कि भट्टि का प्रकृति–चित्रण सजीव, आकर्षण तथा मानवीय संवेदनाओं एवं सुकोमल अनुभूतियों का विशाल भवन है । कवि प्रकृति के कण–कण में व्याप्त सौन्दर्य, सहानुभूति एवं चेतनता से आप्लावित है । भट्टि ने अपने प्रकृति–वर्णन में प्रकृति को मुख्य रूप से विरहोद्दीपक ही प्रस्तुत किया है । उन्हें प्रकृति अपने आराध्य राम के सीता–वियोग में विरह को उद्दीप्त करने वाली प्रतीत होती है ।

❑

१. भट्टिकाव्य २२/१२

२. वही २२/१३

महाकवि भट्टि का वैदुष्य एवं आचार्यत्व

भट्टि का वैदुष्य

१. व्याकरण :–

संस्कृत वाङ्मय में काव्य के माध्यम से शास्त्रीय पदार्थों का निर्वचन करने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है । रामायण एवं महाभारत में प्रसङ्गवश दार्शनिक पदार्थों का निर्वचन विद्यमान है । इसी प्रकार अश्वघोष रचित 'बुद्धचरित' एवं 'सौन्दरनन्द' को बौद्धदर्शन का परिचय देने वाला हेतु बनाया गया है । इसी परम्परा को परिष्कृत व जीवित रखने हेतु अनेक कवियों ने व्याकरण–शिक्षण को सरल एवं रोचक बनाने के लिए व्याकरणात्मक–काव्यों की रचना की है । इन आचार्यों का प्रमुख लक्ष्य व्याकरणशास्त्र के जटिल नियमों को दूर कर उन्हें सरल एवं सर्वजन–बोधगम्य बनाना रहा है । प्रायः सभी भाषाओं में व्याकरण की दुरुहता के समान ही व्याकरण–शिक्षा की समस्या अद्यावधि जटिल बनी हुई है ।

पाश्चात्य शिक्षाविद् व्याकरण को काव्य से सर्वथा भिन्न मानते हैं । उनके अनुसार व्याकरण को गद्यात्मक भाषा द्वारा ही समझा जा सकता है, काव्य द्वारा नहीं, क्योंकि व्याकरण के शिक्षण से काव्य की सरसता लुप्त हो जाती है, किन्तु इस मत के अपवादस्वरूप संस्कृत कवियों ने काव्य को व्याकरण–शिक्षण का माध्यम माना बनाकर एक अभिनव शैली का सर्जन किया है । इन काव्यों को **क्षेमेन्द्र** ने 'काव्यशास्त्र' की संज्ञा दी है ।[1]

इन काव्यों का 'काव्यशास्त्र' नाम सार्थक प्रतीत होता है; क्योंकि इन काव्यों में एक तरफ शास्त्रीय नियमों का प्रयोगों द्वारा निर्वचन किया जाता है तो दूसरी ओर काव्य के वास्तविक गुणों का भी समावेश किया जाता है ।

महाकवि भट्टि **काव्यशास्त्र** की परम्परा के सर्वाग्रणी माने जाते हैं । इनके काव्य 'रावणवध' का ध्येय व्याकरण–सम्मत शद्ध प्रयोगों का निदर्शन करना है । इन्होंने अपने इस ग्रन्थ की रचना राजकुमारों को व्याकरण की शिक्षा देने के लिए ही की है । भट्टि ने स्वयं ही कहा है कि – उनके इस ग्रन्थ का रसास्वादन भी वही कर सकता है जो वैयाकरण भी हो और आलङ्कारिक भी –

---

१. शास्त्रं, काव्यं, शास्त्रकाव्यं, काव्यशास्त्रं च भेदतः ।
चतुष्प्रकारः प्रसरः सतां सारस्वतो मतः ।।
शास्त्रं काव्यविदः प्रातुः सर्वकाव्यङ्गलक्षणम् ।
काव्यं विशिष्टशब्दार्थसाहित्यसदलङ्कृति ।।
शास्त्रकाव्यं चतुर्वर्गप्रायं सर्वोपदेशकृत् ।
भट्टि–भौमक–काव्यादि 'काव्यशास्त्र' प्रचक्षते ।।

– क्षेमेन्द्र–सुवृत्ततिलक ३/२, ३, ४

"व्याख्या–गम्यमिदं काव्यमुत्सवः सुधियामलम् ।
हता दुर्मेधसश्चाऽस्मिन् विद्वत्प्रियतया मया ।।" [1]

जो विद्वान् व्याकरण के ज्ञाता है, उनके लिए यह ग्रन्थ दीपक की भाँति है, किन्तु व्याकरण की दृष्टि से रहित लोगों के लिए अन्धे के हाथ में दिए गए दर्पण के समान है –

"दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम् ।
हस्तामदर्श इवान्धानां भवेद्व्याकरणादृते ।।" [2]

अपने लेखक के नाम से ही प्रसिद्ध इस महाकाव्य के २२ सर्गों का कवि ने वैज्ञानिक ढंग से चार काण्डों में विभाजन किया है, जिनमें नाम क्रमशः इस प्रकार है – १. प्रकीर्ण काण्ड, २. अधिकार काण्ड, ३. प्रसन्न काण्ड, ४. तिङन्त काण्ड ।

व्याकरण के नियम उसकी भाषा में एक विशेष रूप में निबद्ध किए गए हैं । कई स्थानों पर श्लोक रचना में भट्टि ने पाणिनि के सूत्रों को ज्यों का त्यों प्रयोग किया है –

पाणिनि सूत्र 'विदाङ्कुर्वन्तु इत्यन्यतरस्याम्' ३/१/४१ का 'विदाङ्कुर्वन्तु' भट्टिकाव्य ६/४ में प्रयुक्त है । इसी प्रकार पाणिनि सूत्र ३.१.२२ 'अमावस्यदन्यतरस्याम्' का 'अमावास्यासमन्वये' भट्टिकाव्य के ६/६४ में पाणिनि सूत्र ८.३.६० 'सूत्रं प्रतिष्ठातं' का 'सुप्रतिष्ठातसूत्राणाम्' भट्टिकाव्य ६/८३ में प्रयुक्त है ।

अधिकार काण्ड में प्रायः एक सूत्र का एक ही उदाहरण मिलता है । जैसे – पाणिनि सूत्र ३.२.१६ 'चरेष्टः' सूत्र का 'वनेचराग्रयाणाम्' भट्टिकाव्य ५/६७, पाणिनि सूत्र ३.२.१७ 'भिक्षा–सेनाऽऽदायेषु च' का 'आदायचर' भट्टिकाव्य ५/६७ में दिया है ।

ऐसे उदाहरण जो काव्य–प्रवाह में रूकावट डाल सकते हैं, भट्टिकाव्य में छोड़ दिए गए हैं । भट्टि ने बहुत कम अधिकार सूत्रों का प्रयोग किया है तथा मध्य में भी काव्य की रोचकता को बनाए रखने के लिए प्रकीर्ण श्लोकों को रख दिया है । उन्होंने पाणिनीय सूत्रों को क्रम से निषद्ध करते हुए बीच में आने वाले सभी वैदिक सूत्र, प्रत्युदाहरण तथा कात्यायन के वार्तिकों को छोड़ दिया है ।

छोटे सूत्रों के प्रायः उदाहरण भट्टि ने दिए हैं । पाणिनि सूत्र ७.१.१४३ 'विभाषाग्रह' के सामान्य तथा वैकल्पिक दोनों उदाहरण भट्टिकाव्य में दिए गए हैं –

---

१. भट्टिकाव्य २२/३४

२. वही २२/३३

ग्रहेण – भट्टिकाव्य ६.८३

ग्राहेण – भट्टिकाव्य ६.८३

पाणिनि सूत्र ६.२.४६ 'सनीवन्तर्द्ध भ्रस्ज दम्भु श्रिस्वृपूर्ण भरज्ञपिसनाम्' के २० में से १५ उदाहरण भट्टिकाव्य में दिए गए हैं –

दिदेविषुम् – ६/३२

ईर्त्सुम् – ६/३२

दृधूर्षुः – ६/३२

आदिद्रिषुः – ६/३२

धिप्सुम् – ६/३३

दिदम्भिषुः – ६/३३

संशिश्रीषुः – ६/३३

विभ्रक्षुः – ६/३४

विभ्रंज्जिषुः – ६/३४

संयुयूषुम् – ६/३५

यियविषुः – ६/३५

प्रोर्णुनविषुः – ६/३६

प्रोर्णुनूषुः – ६/३६

जिज्ञापयिषूः – ६/३७

बुभूर्षू – ६/३७

इसी तरह निपातन में भी एक ही अत्युपयुक्त उदाहरण को भट्टिकाव्य में दिया गया है, अन्यों को छोड़ दिया है। जैसे – पाणिनि सूत्र ३.१.१२ 'पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या' सूत्र के एक ही शब्द का उदाहरण दिया है –

निकाय्य – भट्टिकाव्य ६.६७

एक ही अर्थ में यदि दो या तीन निपातों का प्रयोग हो तो भी केवल एक ही निपात का प्रयोग किया गया है।

जिस सूत्र में एक ही शब्द का निपातन है उसका पूरा उदाहरण भट्टिकाव्य में दिया गया है। पाणिनि सूत्र ८.३.९० 'सूत्रं प्रतिष्णातम्' में सूत्र अर्थ में प्रति उपसर्ग से परवर्ती 'स्ना' धातु के सकार के स्थान पर षत्व

का निपातन है । यह पूरे का पूरा सूत्र **भट्टिकाव्य** में उदाहरण रूप में दिया गया है, यथा –

सुप्रतिष्णातसूत्राणाम् – भट्टिकाव्य ६/८३

यदि एक ही निपात का अनेक अर्थों में प्रयोग हो तो एक ही अर्थ का उदाहरण दिया गया है । पाणिनि सूत्र ३.३.६४ 'वृक्षासनयोर्विष्टर' में वृक्ष तथा आसन अर्थों में 'विष्टर' शब्द का निपातन है ।

''सर्वनारीगुणैः प्रष्ठां विष्टरस्थां गविष्ठिराम्' ' – भट्टिकाव्य ६/८४

अनेक धातुओं में जब एक विशेष प्रत्यय जोड़ा जाता है तो भट्टिकाव्य में सभी धातुओं को न देकर कम प्रयोग होने वाली तथा काव्य प्रवाह में रूकावट डालने वाली धातुओं को छोड़ दिया गया है । यथा –

पाणिनि सूत्र ३.१.५८ 'जृस्तन्भुम्रुचुम्लुग्रुचग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च' में इन धातुओं से 'च्लि' को विकल्प से अङ् आदेश होता है । भट्टिकाव्य में दो पहले के तथा एक बाद का उदाहरण दिया गया है ।

अस्तम्भीत् – भट्टिकाव्य ६.३०

अस्तभत् – भट्टिकाव्य ६.३०

अजारीत् – भट्टिकाव्य ६.३०

अजरत् – भट्टिकाव्य ६.३०

अश्वताम् – भट्टिकाव्य ६.३०

यदि अनेक धातुओं का एक ही अर्थ में प्रयोग हो तो भट्टिकाव्य में इस अर्थ में एक ही धातु का प्रयोग दिखाया गया है –

पाणिनि सूत्र ३.३.६५ 'स्थागापापचो भावे' सूत्र से भाव अर्थ में 'स्था', 'गा' तथा 'पच' धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में 'क्तिन्' प्रत्यय होता है । भट्टिकाव्य में केवल 'स्था' धातु से भाव अर्थ में 'क्तिन्' प्रत्यय का प्रयोग है –

स्थितिम् – भट्टिकाव्य ७.६८

धातुओं से प्रत्यय जोड़ते समय भी भट्टिकाव्य में एक ही प्रथम प्रत्यय का उदाहरण मिलता है । यथा – पाणिनि सूत्र ३.१.१३३ 'ण्वुलतृचौ' में से केवल 'ण्वुल' प्रत्यय का उदाहरण भट्टिकाव्य में मिलता है –

कारकः – भट्टिकाव्य ६.७२

जब अनेक उपपदों से विशिष्ट धातु से एक से अधिक प्रत्यय लगते हैं तो भट्टिकाव्य में अधिकतर एक ही उदाहरण दिया गया है । बहुत ही कम स्थलों पर दो, तीन या चार उदाहरण दिए गए हैं । पाणिनि सूत्र

३.२.१७ 'भिक्षासेनादायेषु च' से 'भिक्षा' 'सेना' तथा 'आदाय' उपपदों से विशिष्ट 'चर्' से प्रत्यय होता है –

आदायचरः – भट्टिकाव्य ५/६७

यहाँ केवल एक ही उदाहरण दिया गया है ।

धातुओं की लम्बी सूची में से भी उपयुक्त उदाहरण ही दिए गए हैं । बहुत ही कम स्थलों पर सभी उदाहरण दिए गए हैं । पाणिनि सूत्र ३.२.१४२ सूत्र के भट्टिकाव्य में पन्द्रह उदाहरण दिए गए हैं । यथा –

संज्वारिणेव – भट्टिकाव्य ७.६

द्रोहि – भट्टिकाव्य ७.६

खद्योतसम्पर्कि – भट्टिकाव्य ७.६

नयनाभोषि – भट्टिकाव्य ७.६

संसर्गी – भट्टिकाव्य ७.८

अनपकारिणम् – भट्टिकाव्य ७.६

योगिनम् – भट्टिकाव्य ७.१०

अभ्याद्यातिभिः – भट्टिकाव्य ७.७

परिशरिभिः – भट्टिकाव्य ७.७

परिसारिण्यः – भट्टिकाव्य ७.७

परिदेविनम् – भट्टिकाव्य ७.७

आक्रीडिन्ः – भट्टिकाव्य ७.८

दैवानुरोधिन्यः – भट्टिकाव्य ७.६

परिक्षेपी – भट्टिकाव्य ७.१०

त्यागिनम् – भट्टिकाव्य ७.१०

व्याकरण के कुछ प्रमुख विषयों के सन्दर्भ में हम भट्टिकाव्य का पुनरावलोकन करेंगे –

१. ध्वनि–विचार :–

संस्कृत व्याकरण वर्णो की संख्या ६३ मानी गई है ।[१]

भट्टिकाव्य में ५१ वर्ण मिलते हैं, इनमें १३ स्वर तथा ३८ व्यञ्जन हैं । स्वरों में से भट्टिकाव्य में 'ऋ' तथा

१. पाणिनि शिक्षा ३.४

'लृ' दुर्लभ ध्वनियां हैं । 'ऋ' भट्टिकाव्य में नौ बार तथा 'लृ' केवल चार बार प्रयुक्त है । 'लृ' का प्रयोग लौकिक संस्कृत में कम होता है । व्यंजनों में 'झ' वर्ण का पांच बार, जिह्वामूलीय तथा उपध्यमानीय का एक–एक बार प्रयोग हुआ है । अनुनासिक भट्टिकाव्य में तीन बार आया है ।

२. सन्धि :–

सन्धियों में भट्टि ने प्रायः सूत्रों के ही उदाहरण दिए हैं, प्रत्युदाहरणों का प्रयोग कम किया है । स्वर–सन्धि का वर्णन भट्टिकाव्य में पाणिनि क्रम से नहीं किया गया है । **व्यंजन सन्धि** में **णत्व** सन्धि के उदाहरण पाणिनीय सूत्र–क्रम से ही उदाहरण दिए गए हैं । **विसर्ग सन्धि** का वर्णन भट्टिकाव्य में नवें सर्ग के ५८ – ६६ वें श्लोक तक है । **णत्व सन्धि** के उदाहरण नवें सर्ग के ६२ श्लोक से १०६ वें श्लोक तक दिए गए हैं । एक स्थान पर **णत्व–सन्धि** में प्रत्युदाहरण का भी प्रयोग किया गया है ।

स्वर–सन्धि – **यण सन्धि** :– ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, लृ के अनन्तर कोई असवर्ण स्वर आए तो इ, उ, ऋ, लृ के स्थान् पर य्, व्, र्, ल् आदेश हो जाता है ।[१]

शेषाण्यहौषीत् – शोषाणि + अहोषीत् भट्टिकाव्य १.१२

रुदित्वत्यसौ – रुदितवति + असौ भट्टिकाव्य २०/२०

ताम्रोत्पलान्याकुल – ताम्रोत्पलानि + आकुल भट्टिकाव्य २/२

शक्त्यृष्टि – शक्ति + ऋष्टि भट्टिकाव्य ६/४

उपेहयुर्ध्वम् – उपेहि + ऊर्ध्वम् भट्टिकाव्य २०/१६

इत्युदाहृतः – इति + उदाहृतः भट्टिकाव्य १.१

योगिनामाप्येष – योगिनमपि + एष भट्टिकाव्य ७.१०

कदान्वेते – कदानु + ऐते भट्टिकाव्य ७.१२

विशेष – पदान्तीय 'उ' के साथ ई, ऐ, औ, ऋ तथा लृ की सन्धि भट्टिकाव्य में नहीं मिलती ।

अयादि सन्धि :–

भट्टिकाव्य में ए, ओ, ऐ, औ, के अनन्तर कोई भी स्वर हो तो 'एव्' के स्थान पर क्रमशः 'अय्' अव्, आय्, आव्, हो जाते हैं ।[२] निर्दिष्ट स्वरों में से भट्टिकाव्य में केवल 'औ' ही अ, आ, इ, उ, ऐ तथा औ परे होने पर 'अव्' में परिवर्तित होता है । **यथा** –

१. अष्टाध्यायी, ६.१.७७

२. वही ६.१.७८

बालिनावमुम् – बालिनौ + अमुम् भट्टिकाव्य ६.६३

तावासनादि – तौ + आसनादि भट्टिकाव्य २/२६

यहाँ उदाहरण में **औ** को **अव्** आदेश हुआ है ।

सारोऽसाविन्द्रियाऽर्थानाम् – सारोऽसौ + इन्द्रियाऽर्थानाम् भट्टिकाव्य ५.२०

रात्रावैक्षत – रात्रौ +ऐक्षत भट्टिकाव्य ६/८३

तावोजिहताम् – तौ + औजिहताम् भट्टिकाव्य २/४१

गुण सन्धि[१] :–

सर्वेषुभृताम् – सर्व + इषुभृताम् भट्टिकाव्य १/३

सीमेव – सीमा + इव भट्टिकाव्य १.६

सर्वर्तु – सर्व +ऋतु भट्टिकाव्य १.५

ब्रह्मर्षि – ब्रह्मा + ऋषि भट्टिकाव्य १२/५७

वृद्धि सन्धि :–

'अ' या 'आ' से परे 'ए' या 'ऐ' हो तो दोनों के स्थान 'ऐ, औ' 'वा औ', परे हाने पर **औ** हो जाता है ।[२]

प्रैष्यम् – प्र + एष्यम् भट्टिकाव्य ७/१०८

मिथ्यैव – मिथ्या + एव भट्टिकाव्य ५/७१

बलौघान् – बल + औघान् भट्टिकाव्य ३/४७

सवर्ण दीर्घ सन्धि :–

पणिनि के अनुसार ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ तथा ऌ से परे यदि इनके समान ही स्वर आ जाएँ तो दोनों के स्थान पर **सवर्ण दीर्घ** स्वर हो जाता है ।[३]

सहाऽऽसनम् – सह + आसनम् भट्टिकाव्य १/३

गोत्रभिदाऽध्यवात्सीत् – गोत्रभिदा + अध्यवात्सीत् भट्टिकाव्य १/३

शिरांसीव – शिरांसि + इव भट्टिकाव्य १/७

अष्टाध्यायी, ६.१.८७

वही ६.१.८८

वही ६.१.१०१

पूर्वरूप सन्धि :–

पद के अन्त में आने वाले 'ए' और 'ओ' के पश्चात् यदि 'अ' हो तो उस 'अ' को पूर्वरूप हो जाता है तथ उसके स्थान पर अवग्रह चिन्ह का प्रयोग किया जाता है ।[१]

लोकेऽधिगतासु – लोके + अधिगतासु भट्टिकाव्य १/६

व्यंजन सन्धि :–

पाणिनि के अनुसार जब दो व्यंजन अत्यन्त समीप होते हैं अथवा पहला वर्ण व्यंजन होता है और दूसरा स्वर हो तो उनमे जो परिर्वतन होता है उन्हें **व्यंजन सन्धि** कहते हैं । भट्टिकाव्य में अनेक स्थलों पर पणिनि के इस सामान्य नियम के अपवाद मिलते हैं । भट्टिकाव्य में अन्त्य 'न्' तथा आदि 'श्' की तीन स्थितियाँ दिखायीं गई हैं । प्रायः 'न्' और 'श्' में कोई परिवर्तन नहीं होता । कतिपय उदाहरण देखिए –

'स्' और तवर्ग के साथ 'श्' और चवर्ग में से कोई वर्ण हो तो 'स्' और त वर्ग के स्थान पर 'श्' और चवर्ग हो जाता है ।[२]

त + श् का कोई उदाहरण भट्टिकाव्य में नहीं मिलता

स् + च् – आमिश्राश्चातकैः – आमिश्रास + चातकैः भट्टिकाव्य ७/७

स् + छ् – ससैन्यश्छादयन् – ससैन्यस + छादयन् भट्टिकाव्य ६/५८

'स्तो श्चुनाश्चुः'[३] का उदाहरण –

त + छ् – भुवनहितच्छलेन – भुवनहित + छलेन भट्टिकाव्य १/१

पाणिनि के अनुसार यदि तवर्ग के किसी वर्ण के पश्चात् ल् हो तो तवर्ग के वर्ण को ल् हो जाता है । अनुनासिक न् को ल् परे होने पर उससे पहले स्वर पर अनुनासिक बन जाता है ।[४]

जगल्लक्ष्मी – जगत् + लक्ष्मी भट्टिकाव्य १६/२३

कस्मांल्लोकानि – कस्मान् + लोकानि भट्टिकाव्य ६/३६

तांल्लक्ष्मणः – भट्टिकाव्य ११/३१

---

१. अष्टाध्यायी, ६.१.१०६

२. वही ६.१.१२३

३. वही ८.४.४०

४. वही ८.४.६०

णत्व सन्धि :–

भट्टिकाव्य में रेफ और षकार से परे नकार को णकारादेश होता है यदि निमित्त और निमित्त एक पदस्थ हो ।[1]

मुष्णन्तन् – भट्टिकाव्य ६/६२

विस्तीर्णोरः स्थलम् – भट्टिकाव्य ६/६२

संज्ञा विषय में गकार भिन्न निमित्त से परे नकार को णकार आदेश हो ।[2]

खरणसाऽऽदयः – भट्टिकाव्य ६/६३

भट्टिकाव्य में गद्, हन्, नद्, पा आदि धातुओं के परे होने पर उपसर्गस्थ निमित्त से परे नि के नकार को णकरादेश होता है ।[3]

प्रण्यगादीत् – भट्टिकाव्य ६/६६

प्रणिघ्नन्तम् – भट्टिकाव्य ६/६६

प्रणिनदन् – भट्टिकाव्य ६/६६

प्रणियातुम् – भट्टिकाव्य ६/१००

अन्तर शब्द से उत्तरवर्ती अयन शब्द के नकार को भी णकारादेश हो जाता है यदि समुदाय संज्ञा शब्द न हो तो ।[4]

अन्तरयणम् – भट्टिकाव्य ६/१०३

उपसर्गस्थ निमित्त से परे निस्, निक्ष् और निन्द के नकार को णकार विकल्प से होता है ।[5]

परिणिसंक – भट्टिकाव्य ६/१०६

प्रणिद्यः – भट्टिकाव्य ६/१०६

---

१. अष्टाध्यायी, ८.४.१

२. वही ८.४.४

३. वही ८.४.१८

४. वही ८.४.२५

प्रणिक्षिष्यति – भट्टिकाव्य ६/१०६

पदान्त षकार से परे नकार को णकारादेश नही होता[१] –

दुष्पानः – भट्टिकाव्य ६/१०८

क्षुभ्नादिक शब्दों में नकार को णकार नहीं होता[२] –

क्षुभ्नता – भट्टिकाव्य ६/१०६

विसर्ग सन्धि :–

विसर्ग सन्धि का वर्णन भट्टि ने पाणिनि सूत्र के क्रम से किया है । नवें सर्ग के ५८वें श्लोक से ६६वें श्लोक तक इन नियमों के उदाहरण भट्टि काव्य में दिए गए हैं । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

ससैन्यश्छादयन् – ससैन्यः छादयन् भट्टिकाव्य ६/५८

जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का एक–एक उदाहरण मिलता है –

वानरः कुलशैलाभः भट्टिकाव्य ६/५६

कुलषशैलाभ प्रसह्यायुधशीकरम् भट्टिकाव्य ६/५६

पद के आदि में न आने वाले कवर्ग तथा पवर्ग के परे रहते हैं विसर्जनीय के स्थान में सकारादेश हो जाता है[३] –

तमस्कल्पान् – भट्टिकाव्य ६/५६

रक्षस्पाशान् – भट्टिकाव्य ६/५६

यशास्कल्पान् – भट्टिकाव्य ६/५६

महाकवि भट्टि की यह विशेषता है कि महान् वैयाकरण के वचनों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं तथा उसे अत्यन्त रोचक बनाते हुए साहित्य प्रेमियों के हृदय में उतार देते हैं । यहाँ भट्टि ने कारिका के ही उदाहरणों में थोड़ा सा परिवर्तन करके दिया है । यथा –

निष्क्रयम् – भट्टिकाव्य ६/६१ निष्कृतम् काशिका ८.३.४१ पर

---

१. अष्टाध्यायी, ८.४.३५

२. वही ८.४.३८

वही ८.३.३८

दुष्कृत – भट्टिकाव्य ६/६१ पर दुष्कृतम् काशिका ८.३.४१ पर

आविष्कृत – भट्टिकाव्य ६/६१ पर आविष्कृतम् काशिका ८.३.४१ पर

बहिष्कृतः – भट्टिकाव्य ६/६१ पर बहिष्कृतम् काशिका ६.३.४१ पर

चतुष्काष्ठम् – भट्टिकाव्य ६/६२ पर चतुष्कृतम् काशिका ८.३.४१ पर

यहाँ इकार तथा उकार उपधा में होने के कारण प्रत्ययों से पहले विसर्ग के स्थान पर सकारादेश हुआ है ।

समास में कृ, कम्, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा तथा कर्ण शब्दों के परे रहते अकारोत्तरवर्ती, अव्ययभिन्न एवम् उत्तर पद के अनवयव विर्सजनीय के स्थान पर नित्य सकारादेश हो जाता है ।[1]

भट्टिकाव्य में केवल 'कृ' तथा 'कम्' की ही यशः शब्द के साथ सकारादेश विसर्ग की सन्धि हुई है –

यशस्करः – भट्टिकाव्य ६/६५

यशस्कामान् – भट्टिकाव्य ६/६५

क वर्ग परे रहते 'तमस्' शब्द के विसर्जनीय के स्थान में सकार आदेश होता है ।[2]

तमस्काण्डैः – भट्टिकाव्य ६/६६

३. समास :–

महाकवि भट्टि ने समास के सभी नियमों की व्याख्या करते हुए विशद् विवेचन किया है । सर्वत्र उनकी रूचि दीर्घ समासों की तरफ नहीं है, केवल १३वें सर्ग में दीर्घ समासों का प्रयोग बहुतायत से किया है । इस सर्ग में अधिकतर श्लोकों में दोनों पक्तियों में विभिन्न शब्दों की विभक्तियों का लोप करके एक–एक शब्द बना दिया है । इस सर्ग में बहुव्रीहि समास का प्रयोग अधिक किया गया है । यथा –

"अरविन्दरेणुपिञ्जरसारसरवहारिविमलबहुचारुजलम् ।
रविमणिसंभवहिमहरसमागमाबद्धबहुलसुरतरुधूपम् ।।"[3]

"हरिरवविलोलवारणगम्भीराबद्धसरसपुरुसंरावम् ।
घोणासंगमपङ्काबिलसुबलभरसहोरुवराहम् ।।"[4]

१. अष्टाध्यायी, ८.३.४६

२. वही ८.३.४८

३. भट्टिकाव्य १३/१९

४. वही १३/२०

"लङ्कालयतुमुलारवसुभरगभीरोरुकुञ्जकन्दरविवरम् ।
वीणास्वरससङ्गमसुरगणसङ्कुलमहातमालच्छायम् ।।" [१]

इसी तरह १३वें सर्ग के ३३, ३४, ४०, ४१, ४२, ४६, ४७ तथा ४६वें श्लोकों में दीर्घ समासों का प्रयोग किया गया है । शेष काव्य में भट्टि ३ या ४ शब्दों को समस्त पद बनाते हैं पर वहाँ भी दीर्घ समासों के उदाहरण दर्शनीय है ।

— शक्त्यृष्टिपरिध प्रासगदामुद्गरपाणयः । [२]

भट्टिकाव्य में निम्नलिखित समासों का वर्णन किया गया है —

१. सुप्सुपा (सहसुपा) समास
२. अव्ययी भाव समास
३. तत्पुरुष समास
४. कर्मधारय समास
५. बहुव्रीहि समास
६. द्वन्द्व समास

१. सुप्सुपा समास :—

पाणिनि सूत्र के आधार पर "सहसुपा" पर पतंजलि इसे समास की श्रेणी में स्वीकार करते हुए व्याख्या करते हैं [३] —

"सुप च सह सुप समस्यते अधिकारश्च लक्षणं व यस्य समासस्य अण्य लक्षणं नास्ति इदं तटस्थं लक्षणं भविष्यति ।"

पर डॉ० नरेन्द्र चन्द्र नाथ इसे अलग समास नहीं मानते क्योंकि पाणिनि ने इसको अलग श्रेणी में नहीं रखा है । पतंजली की व्याख्या भी स्वीकार्य नहीं हो सकती, क्योंकि पाणिनीय सूत्र समास की सामान्य विशेषता

---

१. भट्टिकाव्य १३/३२
२. वही ६/४
३. महाभाष्य, पाणिनीय सूत्र २.१.४ पर व्याख्या ।

बताता है, अलग श्रेणी नहीं ।[1]

एम०आर० काले इस समास को अलग श्रेणी का मानते हैं । एम०आर० काले के अनुसार इसे पाँचवी श्रेणी का समास माना जा सकता है ।[2]

वैयाकरणों के विचारों का अनुसरण करते हुए भट्टिकाव्य के टीकाकारों ने कुछ प्रयोगों को सुप्सुपा समास का नाम दिया है –

प्रतनूनि – प्रकृष्टेन तनूनि प्रकर्षेण तनूनि भट्टिकाव्य १/१८
विचित्रम् – विशेषेण चित्रम् भट्टिकाव्य २/१७
अतिगुरु – अत्यन्तं गुरुः भट्टिकाव्य २/३६
सहचरीम् – सह चरतीति भट्टिकाव्य ५/२०
श्रुताऽन्वित – श्रुतैरन्वितः भट्टिकाव्य १/१

२. अव्ययी भाव समास :–

भट्टिकाव्य में इस समास का प्रयोग कम हुआ है । निम्न–अर्थों में **अव्ययी भाव** समास का प्रयोग भट्टि ने किया है –

विभक्ति अर्थ में –

अधिमर्म – मर्मसु – इति भट्टिकाव्य ५/३
अधिजलधि – जलधौ इति भट्टिकाव्य १०/६७
अनुरहसम् – रहसि इति भट्टिकाव्य ५.८७

सामीप्य अर्थ में 'उप' उपसर्ग का प्रयोग –

उपाग्नि – अग्नेः समीपे भट्टिकाव्य ६/१०६

---

1. Paninian Inter pretation of the Sanskrit Language, P. 128. "This Supa-Supa Cannot be admitted as separate class of Compounds approved by Panini Patanjali's statement is also not accepatable. Because this rule gives a general characteristic of compound not a class of compound. A Higher Sanskrit Grammer, P. 115 f. Art, 85. cf.

2. "This is true only generally speaking for there is a fifth class of compounds Viz. Supsupa - Compounds not governed by any if the rules given under the four classes be explained on the general principal that any Subant pada may be compounded with any other subant pada.

उपशूरम् – शूरस्य समीपे भट्टिकाव्य ८/८७

औपनीविकः – नीव्याः समीपे भट्टिकाव्य ४/२६

अभाव अर्थ में –

अभयम् – भयस्यऽभावः भट्टिकाव्य ४/२७

अनपराधम् – अपराधस्य अभावः भट्टिकाव्य ४/३६

पश्चात् अर्थ में –

अनुपदी –पदस्य पश्चाद् भट्टिकाव्य ५/५०

आवृति अर्थ में –

प्रतिककुभम् –' ककुभं ककुभं' प्रति ११/४७

अनुदिशं – दिशं दिशं प्रति १०/८

पदार्थ की अनतिवृत्ति अर्थ में –

यथेप्सितम् – इप्सितं अनतिक्रमस्य २/२८

यौगपथ या साकल्य अर्थ में –

सराजम् – राज्ञा युगपद् या राज्ञा सह

कुछ शब्द दो 'तिष्ठद्गु' आदि में निपातित है उन्हें पाणिनि ने **अव्ययीभाव समास** माना है ।[1] भट्टिकाव्य में इस गण के दो समास प्रयुक्त हैं –

आयतीगवम् – आयत्यो गवो यस्मिन् काले ४/१४

आतिष्ठद्गु – तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् ४/१४

३. तत्पुरुष समास :–

भट्टिकाव्य में तत्पुरुष समास प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हैं, जो अनेक प्रकार की विभिन्नताएं लिए हुए हैं । इनकी श्रेणियाँ पाणिनि नियमानुसार हैं, केवल एक रूपक समास पणिनि विभाजन के अनुसार नहीं है । –

द्वितीया तत्पुरुष समास – इस समास के बहुत कम उदाहरण भट्टिकाव्य में हैं–

---

१. अष्टाध्यायी, २.१.१७

कष्टाश्रितम् – कष्टम् श्रितम् भट्टिकाव्य ५/५३

विपद्गतम् – विपदम् गतम् भट्टिकाव्य १८/२८

खट्वारुढ़ः – खट्वाय् आरुढ़ः भट्टिकाव्य ५/१०

तृतीया तत्पुरुष समास –

आत्मकृतान् – आत्मना कृतान् भट्टिकाव्य २/६

राममहितः – महितः पूजितः मह–पुजायाम् १०/२

सिंहसमः – सिंहेन समः १०/३६

चतुर्थी तत्पुरुष समास –

भुवनहित – भुवनेभ्यः हितम् भट्टिकाव्य १/१

राक्षसार्थम् – राक्षसाय अर्यं भट्टिकाव्य १२/५०

पञ्चमी तत्पुरुष समास –

वासच्युतः – वासात्–च्युतः भट्टिकाव्य ११/२२

षष्ठी तत्पुरुष समास –

दैत्यपुरम् – दैत्यानां पुरम् भट्टिकाव्य २/४२

राज्यधुराम् – राज्यस्य धुराम् भट्टिकाव्य ३/५४

सप्तमी तत्पुरुष समास –

निर्माण दक्षः – निर्माणे दक्षः भट्टिकाव्य १/६

आतिथ्यनिष्णाः – आतिथ्ये निष्णाः भट्टिकाव्य २/२६

पानशौण्डः – पाने शौण्डः भट्टिकाव्य ५/१०

४. कर्मधारय समास :–

विशेषण वाचक सुबन्त का विशेष्यवाचक समानाधिकरण सुबन्त के साथ बाहुल्येन तत्पुरुष समास होता है ।[१] भट्टिकाव्य में इसका प्रयोग बहुधा है । कतिपय उदाहरण देखिए –

स्वादुशीतैः – स्वादु नि च तानिशीलनि तः स्वादुरीत नि० भट्टिकाव्य ७/६४

---

१. अष्टाध्यायी, २.१.५७

नृसिहौ – नरः सिंहः इव भट्टिकाव्य २/४१

कपिव्याघ्रः – कपिः व्याघ्रः इव भट्टिकाव्य ८/६०

परमार्थ – परमश्चासौ अर्थः भट्टिकाव्य १/१५

श्रेणीकृतः – श्रेणी च असौ कृतः भट्टिकाव्य ६/४२

द्विगु समास –

भट्टिकाव्य में इस समास के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं । इस समास का प्रथम पद संख्यावाचक होता है ।[१]

द्वयंजलम् – द्वयोरंजलयोः समाहारः भट्टिकाव्य ३/५०

चतुष्काष्ठम् – चतसृणां काष्ठानाम् समाहारः भट्टिकाव्य ६/६२

पंचगवम् – पंचानाम् गवां समहारः भट्टिकाव्य २०/१२

अन्य तत्पुरुष समास –

प्रादि तत्पुरुष –

समास शब्दों का एक विशाल समूह जिनके प्रारम्भ में उपसर्ग आते हैं भट्टिकाव्य में "कुगतिप्रादाय" श्रेणी के अन्तर्गत रखे गए हैं । कतिपय उदाहरण देखिए –

प्राध्ययनम् – प्रकृष्टमध्ययनम् भट्टिकाव्य २/२४

विपक्ष – विरुदः पक्षः भट्टिकाव्य १/२२

प्रयत्नात् – प्रकृष्टो यत्नः प्रयत्नः तस्मात् भट्टिकाव्य ३/४

कदुष्णम् – ईषदुष्ण भट्टिकाव्य ३/१८

काक्षेण – कुत्सितंअक्षम् भट्टिकाव्य ५/२४

गति समास –

भट्टिकाव्य में कुछ विशेष शब्दों का **क्त्वा प्रत्ययान्त** शब्दों से समास हुआ है –

हस्तेकृत्य – हस्ते कृत्वा, भट्टिकाव्य ५/१६

साक्षात्कृत्य – साक्षात्कृत्वा भट्टिकाव्य ५/७१

---

१. अष्टाध्यायी, २.१.५२

सजूः कृत्य – सजूः कृत्वा भट्टिकाव्य ५/७२

नञ तत्पुरुष – अनीचैः – न नीचैः भट्टिकाव्य १/२७, अप्रगल्भम् – न प्रगल्भम् भट्टिकाव्य २/१५, नाकसदाम् – न कम् अकम् भट्टिकाव्य १/४

उपपद संज्ञक सुबन्त का किसी उत्तरपद कृदन्त के साथ समास होता है । भट्टिकाव्य में इसके कुछ उदाहरण विद्यमान हैं –

परन्तपः – परान् तापयतीति भट्टिकाव्य १/१

रात्रिचरी – रात्रौ चरति इति भट्टिकाव्य २/२३

देवयजीन् – देवान् यजन्ति इति देवयज्यं तान् भट्टिकाव्य २/३४

अलुक् तत्पुरुष समास –

इसके प्रथम पद की विभक्ति का लोप नहीं होता इसलिए अलुक् तत्पुरुष समास कहलाता है । भट्टिकाव्य में इसके कम उदाहरण विद्यमान हैं –

गविष्ठिराम् – भट्टिकाव्य ६/८४

गेहेनर्दिनम् – भट्टिकाव्य ५/४१

अग्रेवणम् – भट्टिकाव्य ६/६३

केवल एक उदाहरण भट्टिकाव्य में "एकदेशि समास" का मिलता है –

पूर्वाह्णे – अह्नः पूर्वम् पूर्वाह्णः तस्मिन् ६/६५

मध्यम पदलोपी समास –

इस समास में **पूर्व पद** का **अन्तिम पद** जो कि स्वयं एक समास शब्द होता है लोप हो जाता है । भट्टिकाव्य में इसके असंख्य उदाहरण मिलते हैं –

तमस्काण्डैः – तमः सवर्णाः काण्डास्तमरस्काण्डाः तैः ६/६६

लतामृगम् – लताचारी मृगो लतामृगस्तं ६/१२६

चिन्तामणि – चिन्तापूरकां मणि १०/३५

कालरात्री – काल प्रयुक्ता रात्री १४/४३

रुपक समास :–

भट्टिकाव्य के टीकाकारों ने काव्य में प्रयुक्त कुछ शब्दों को **रूपक समास** का नाम दिया है । पाणिनि ने इस समास के लिए कोई नियम नहीं बनाया है । एम०आर० काले के अनुसार कर्मधारय समास तथा रूपक समास में रचना की दृष्टि से कोई भेद नहीं है । केवल कर्मधारय समास में प्रधानता उपमान की श्रेष्ठता बताने वाले शब्द को दी जाती है तथा उपमावाचक शब्द भी विद्यमान रहता है । रूपक समास में उस वस्तु या व्यक्ति की प्रधानता हो जाती है जिससे तुलना की जाती है । भट्टिकाव्य में उदाहरणों की व्याख्या पाणिनि के 'मयूरव्यसकादयश्च' (अष्टाध्यायी २.१.७२) सूत्र से की गई है । कतिपय उदाहरण देखिए –

विप्रवह्नि – विप्र एव वह्नि भट्टिकाव्य १/२३

तपोमरुदभिः – तपांसि एव मरुतः तपोमरुषः तैः २/२८

शराऽग्नि – शर एव अग्नि २/२८

अरिसमिन्धनेषु – अरय एव समिन्धानि, तेषु २/२८

शोकाग्निना – शोकः एव अग्नि, तेन ३/२१

५. बहुव्रीहि समास :–

इस समास में दो या दो से अधिक शब्द संयुक्त होकर किसी अन्य पद की प्रधानता बताते हैं ।[1] भट्टिकाव्य में इसके असंख्य उदाहरण मिलते हैं –

त्रिदशाः – त्रिस्त्रः दशाः येषां ते भट्टिकाव्य १/२

पुण्यकीर्तिः – पुण्यकीर्तिः यस्य सः भट्टिकाव्य १/५

अबलानाम् – अविद्यमानं बलं यासां तासां भट्टिकाव्य १०/१२

समन्युम् – मन्युना सह विद्यमानः यः तम् भट्टिकाव्य १/२३

दशरथः – दशसु रथो यस्य सः भट्टिकाव्य १/१

ऋष्यश्रृगः – ऋष्यस्य इव श्रृगं यस्य सः भट्टिकाव्य १/१०

धनुष्पाणिः – धनुः पाणौ यस्य सः भट्टिकाव्य ५/१३

६. द्वन्द्व समास :–

द्वन्द्व समास में "च" के द्वारा दो या दो से अधिक पदों को जोड़ा जाता है । **भट्टिकाव्य में इतरेतर द्वन्द्व**

---

१. अष्टाध्यायी, २.२.२४

तथा समाहार द्वन्द्व दो प्रकार के द्वन्द्व समास के उदाहरण पाये जाते हैं –

इतरेतर द्वन्द्व – शक्रयक्षेन्द्रौ – शक्रश्च, यक्षश्च, इन्द्रश्च १८/३१

देवगन्धर्व किन्नराः – देवाः च, गन्धर्वाः च, किन्नराः च ५/१०७

समाहार द्वन्द्व –

भट्टिकाव्य में इस समास के २१ उदाहरण पाये जाते है कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

स्थिरबाहुमुष्टिः – बाहुश्च मुष्टिश्च २/३१

वाक्त्वचन – वाक् च त्वक् च ४/१६

नक्तन्दिवम् – नक्तं च दिवं च ४/३६

हिताऽहितम् – हितं च अहितं च ८/८२

श्वावराहम् –श्वाश्च वराहश्च १२/३३

पुष्पफलम् – पुष्पं च फलं च ८/७२

वाजिकुंजरम् – वाजिनश्च कुंजराश्च १७/१०

हंसकोकिलम् – हंसश्च कोकिला च ६/७६

दधि क्षीरम् – दधि च क्षीरम् च ५/१२

सुबन्त :–

भट्टिकाव्य में शब्द रूपों में पूर्ण रूप से पाणिनीय नियमों का ही अनुसरण किया गया है । फिर भी भट्टि ने अपने काव्य में अपने पाण्डित्य तथा व्याकरण ज्ञान का विशेष परिचय दिया है और भाषा पर अपना पूर्ण अधिकार भी प्रदर्शित किया है ।

भट्टिकाव्य में सुबन्त की अनेक महत्वपूर्ण विशेषताएँ मिलती हैं । यथा –

सुबन्त के अजन्त प्रातिपदिक के दो रूप मिलते हैं –

धर्मम् – भट्टिकाव्य ६/११५

धर्म – भट्टिकाव्य २/३५

पद् शब्द से कालान्तर में पाद बनाकर भट्टिकाव्य में पुल्लिग पाद के ही रूप मिलते हैं –

पादौ – भट्टिकाव्य ६/६७

नपुंसक लिंग हलन्त प्रातिपदिक "वार" जल से विकसित इकारान्त प्रातिपदिक **वारि** के भी भट्टिकाव्य में नपुंसक लिंग में ही प्रयोग मिलते हैं –

वारीणि – भट्टिकाव्यं १०/२३

वारीणाम् – भट्टिकाव्य १३/८

अप्सरस् हलन्त स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग कालान्तर में **अप्सरा** स्त्रीलिंग में होने लगा, परन्तु भट्टिकाव्य में अप्सरस् शब्द का ही प्रयोग मिलता है –

अप्सरसाम – भट्टिकाव्य १.७

अजन्त प्रातिपदिक :–

अकारान्त प्रातिपदिक –

भट्टिकाव्य में अकारान्त शब्दों का वर्ग सबसे अधिक संख्या वाला है तथा इस वर्ग के रूप केवल पुंल्लिग तथा नपुंसक लिंग में बनते हैं ।

अकारान्त शब्द रूपों में प्रथमा तथा द्वितीया एक वचन में नपुंसक लिंग के साथ प्रयुक्त विभक्ति का अम् बन जाता है[1] यथा –

जलम् – भट्टिकाव्य २/१६

षट्पदम् – भट्टिकाव्य २/१६

कलम् – भट्टिकाव्य २/१६

गुञ्जितम् – भट्टिकाव्य २/१६

अदन्त अंग से परे टा, ङसि, ङ्स् के स्थान में क्रम से इन, आत्, स्य ये आदेश हो जाते हैं ।[2]

कृतान्तेन – भट्टिकाव्य ४/३

बलात् – भट्टिकाव्य-४/२

सौभागिनेयस्य – भट्टिकाव्य ४/३५

---

१. अष्टाध्यायी, ७.७.१६

२. वही ७.१.१२

झलादि बहुवचन परे रहते अदन्त अङ्ग को (ए) आदेश होता है । "ओस" परे रहते भी "ए" होता है ।[1]

वैरायमाणेभ्यः – भट्टिकाव्य ५.७५

सदृशयोः – भट्टिकाव्य ७.५

सुरतेषु – भट्टिकाव्य ५.६८

भट्टिकाव्य में ह्रस्वान्त, नधन्त तथा आबन्त अंग से परे आम् को नुट् आगम होता है ।[2] तथा नाम् से पूर्व अंग के अन्तिम ह्रस्व स्वर का दीर्घ हो जाता है ।[3]

इन्द्रियार्थाऽनाम् – भट्टिकाव्य ५/२०

पितृणाम् – भट्टिकाव्य ६/६४

क्रौंचानाम् – भट्टिकाव्य ७/१४

सस्यानाम् – भट्टिकाव्य ७/२

आकारान्त प्रातिपदिक :–

आकारान्त प्रातिपदिक में से भट्टिकाव्य में स्त्री वाचक आकारन्त शब्दों का ही अधिक प्रयोग है । धात्वन्त आकारान्त प्रातिपदिकों का प्रयोग भट्टिकाव्य में दुर्लभ है ।

भट्टिकाव्य में हलन्त, ङ्यन्त, आबन्त शब्दों से सु, ति, सि सम्बन्धी अपृक्त हल् का लोप हो जाता है ।[4]

वरांगना – भट्टिकाव्य १/१०

भट्टिकाव्य में टा तथा ओस् विभक्ति परे होने पर आबन्त अंग के आप् को "ए" हो जाता है ।[5]

असूर्यम्पश्यया – भट्टिकाव्य ६.६६

साऽमर्षतया – भट्टिकाव्य २/३

---

१. अष्टाध्यायी, ७.३.१०३, १०४

२. वही ७.१.५४

३. वही ६.४.३

४. वही ६.१.६८

५. वही ७.३.१०५

अन्तिम आ का सम्बुद्धि में ए बन जाता है ।[1]

मृगेक्षणे – भट्टिकाव्य ८/७६

भट्टिकाव्य में आबन्त अंग से परे याट् भागम होता है ।[2]

पर्णशालायाम् – भट्टिकाव्य ४/७

कृत्स्नायाम् – भट्टिकाव्य ६/१०६

सप्तमी एकवचन की विभक्ति को 'आम्' आदेश हो जाता है ।[3]

वसुन्धरायाम् – भट्टिकाव्य ६/१०६

इकारान्त तथा उकारान्त शब्द :–

भट्टिकाव्य में इकारान्त तथा अकारान्त शब्दों की विस्तृत संख्या है । इनमें से अधिकतर रूप पुलिंग तथा स्त्रीलिंग में मिलते हैं । नंपुसक लिंग में रूप कम मिलते हैं ।

पुंलिग तथा स्त्रीलिंग के प्रथमा, द्वितीया, द्विवचन में प्रातिपदिक के अन्तिम स्वर तथा विभक्ति के स्वर दोनों के स्थान पर पूर्ववर्ती स्वर का दीर्घ हो जाता है ।[4]

निराकरिष्णु – भट्टिकाव्य ५.१

वर्तिष्णू – भट्टिकाव्य ५.१

पुंल्लिग में विभक्ति के अन्तिम स् का न् बन जाता है ।[5]

पशून् – भट्टिकाव्य ७.५०

बहून् – भट्टिकाव्य ८.२७

पतीन् – भट्टिकाव्य १४.६

शारीन् – भट्टिकाव्य १४.११

---

१. अष्टाध्यायी, ७.३.१०६

२. वही ७.३.११३

३. वही ७.३.११६

४. वही ६.१.१०२

५. वही ६.१.१०३

नपुंसक लिंग प्रातिपदिकों से परे प्रथमा द्वितीया एक वचन की विभक्ति का लोप हो जाता है ।[1]

द्रोहि – भट्टिकाव्य ७/६

खद्योतसम्पर्कि – भट्टिकाव्य ७/६

भट्टिकाव्य में पुंल्लिग तथा नपुंसक लिंग के तृतीय एकवचन के रूपों में साधारणतया विभक्ति का ना बनता है ।[2]

त्रस्नुना – भट्टिकाव्य ५/३१

विंशति बाहुना – भट्टिकाव्य ५/१०४

संज्वारिणा – भट्टिकाव्य ७/६

भट्टिकाव्य में सम्बुद्धि में इकारान्त तथा अकारान्त पुंलिग स्त्रीलिंग प्रातिपदिकों के अन्तिम स्वर को गुण हो जाता है ।[3]

सुदुबुद्धे – भट्टिकाव्य ५/४

दाशरथे ! – भट्टिकाव्य २/३४

ईकारान्त प्रातिपदिक :–

भट्टिकाव्य में ईकारान्त शब्दों की संख्या अधिक है ।

सु, प्रत्ययान्त अंग, इवर्ण, उवर्णान्त, धातु तथा भू इस अंग को इयङ्, उवङ् आदेश होता है, अजादि प्रत्यय परे रहने पर[4] –

सुधीः – भट्टिकाव्य १२/६

सुधियाः – भट्टिकाव्य १२/२५

भट्टिकाव्य में द्वितीया एकवचन की अम् विभक्ति का अकार प्रायेण अंग के अन्तिम ई में विलीन हो जाता है[5] –

---

१. अष्टाध्यायी, ६.४.८

२. वही ७.१.७२

३. वही ७.३.११६

४. वही ६.४.७७

५. वही ६.१.१०७

सायन्तनीम् – भट्टिकाव्य ५.६५

लक्ष्मीम् – भट्टिकाव्य २/८

दिवातनीम् – भट्टिकाव्य ५/६५

कांञ्चनीम् – भट्टिकाव्य ७/६३

महाकुलीम् – भट्टिकाव्य ७/८०

पाणिनि सूत्र के अनुसार अजादि प्रत्यय परे रहते संयुक्त व्यंजन के बाद ईकार होने पर ई के स्थान पर इयङ् आदेश हो जाता है। लेकिन संयुक्त व्यञ्जन पूर्व न होने पर ई का **यण्** होता है।[1]

भट्टिकाव्य में इसका उदाहरण देखिए –

श्रियम् – भट्टिकाव्य ८.५०

श्रिया – भट्टिकाव्य ७/१०४

धिया – भट्टिकाव्य १२/८१

सदातन्या – भट्टिकाव्य ५/६५

मैथिल्या – भट्टिकाव्य ८/३६

सम्बुद्धि में ईकारान्त अंग के अन्तिम स्वर का ह्रस्व हो जाता है[2] –

नक्तंचरि – भट्टिकाव्य ६/२३

कूपमाण्डूकि – भट्टिकाव्य ५/८५

ऋकारान्त प्रातिपदिक :–

भट्टिकाव्य में ऋकारान्त प्रातिपदिक पुलिंग में ही अधिक मिलते हैं – पितृ, नृ, भर्तृ, भ्रातृ, स्त्रीलिंग में भट्टिकाव्य में मातृ तथा स्वसृ शब्दों के रूप मिलते हैं।

पितृणाम् – भट्टिकाव्य ६/६४

पित्रा – भट्टिकाव्य ८/८

नृभिः – भट्टिकाव्य १४/४६

मातुः स्वसुः – भट्टिकाव्य ६/८०

---

१. अष्टाध्यायी, ६.४.८२

२. वही ७.३.१०३

हलन्त प्रातिपदिक :–

हलन्त प्रातिपदिकों की भट्टिकाव्य में बहुत कम उदाहरण उपलब्ध होती है ।

क वर्गीय प्रातिपदिक :–

भट्टिकाव्य में क वर्गीय प्रातिपदिक का कोई उदाहरण नहीं मिलता ।

च वर्गीय प्रातिपदिक :–

भट्टिकाव्य अधिकतर च वर्गीय प्रातिपदिकों को क वर्ग आदेश हुआ है झल् प्रत्याहार परे होने पर [१] जैसे–

वणिक् – भट्टिकाव्य ७/४६

बालधिभाक् – भट्टिकाव्य १२/२०

देवभाक् – भट्टिकाव्य ६/६५

रामर्त्विक् – भट्टिकाव्य ६/११८

पंक भाक् – भट्टिकाव्य १०/७३

अनेक चवर्गीय शब्दों में न् का आगम हुआ है झल् परे रहने पर [२] –

प्राञ्चि – भट्टिकाव्य २/१२

देहभाञ्जि – भट्टिकाव्य १४/५६

युङ् – भट्टिकाव्य ६/११६

क्रौञ्चानाम् – भट्टिकाव्य ७/१४

भट्टिकाव्य में कोई टकारान्त प्रातिपदिक नहीं मिलता है ।

तकरान्त प्रातिपदिक :–

तकारान्त प्रातिपदिकों के भट्टिकाव्य में बहुत शब्द उपलब्ध हैं । जिसमें से अधिकतर समास में उत्तर पद में प्रयुक्त है यथा –

अग्निचित् – भट्टिकाव्य ६/१३१

---

१. अष्टाध्यायी, ८.२.३०

२. वही ७.१.७०

सोमसुत् – भट्टिकाव्य ६/१३१

सुकृताम् – भट्टिकाव्य ६/१३०

सुहृत् – भट्टिकाव्य ८/१४

मरुत् – भट्टिकाव्य ६/२

जगत् – भट्टिकाव्य ६/२१

जगति – भट्टिकाव्य ६/१०५

जगन्ति – भट्टिकाव्य ६/३७

इन्द्रजित् – भट्टिकाव्य ६/५१

सरिताम् – भट्टिकाव्य ७/१०६

पकारान्त प्रातिपदिक :–

भट्टिकाव्य में केवल एक अपः शब्द का रूप मिलता है –

अर्वदभ्ः – भट्टिकाव्य १४/५०

शकारान्त प्रातिपदिक :–

यादृक् – भट्टिकाव्य ६/११६

कीदृक् – भट्टिकाव्य ६/१२६

तादृक् – भट्टिकाव्य १७/३७

कीदृशं – भट्टिकाव्य ६/१२३

षकारान्त प्रातिपदिक :–

द्विषौ – भट्टिकाव्य ५/३

द्विषः – भट्टिकाव्य ७/६६

सकारान्त प्रातिपदिक :–

भट्टिकाव्य में इसका बहुलता से प्रयोग है –

अयसः – भट्टिकाव्य १२/४०

चेतसि – भट्टिकाव्य ६/४५

सदसि – भट्टिकाव्य ६/१३७

अम्भसाम् – भट्टिकाव्य ७/१०

चन्द्रमसा – भट्टिकाव्य ८/१००

रक्षसा – भट्टिकाव्य ४/२

चेतसि – भट्टिकाव्य ११/२८

श्रेयसि – भट्टिकाव्य २/२२

सरसाम् – भट्टिकाव्य १०/४

शत्रन्त प्रातिपदिक :–

भट्टिकाव्य में पुलिंग तथा नपुंसकलिंग में शत्रन्त प्रातिपदिक के रूप मिलते है । स्त्रीलिंग में इन प्रातिपदिकों के आगे ङीप प्रत्यय जोड़कर रूप बनाए गए हैं –

कुर्वन्तः – भट्टिकाव्य ७/३७

आलोचयन्तम् – भट्टिकाव्य ७/४०

ध्यायन्ती – भट्टिकाव्य ७/४४

मत्, वत् प्रत्ययान्त प्रातिपदिक :–

मत्, वत् प्रत्ययान्त प्रतिपदिकों में सर्वनाम् प्रत्यय परे रहते नुम् का आगम हो जाता है ।[1]

उदन्वान् – भट्टिकाव्य ८/६

हनुमान् – भट्टिकाव्य १०/१६

नमस्वन्तः – भट्टिकाव्य १७/७४

मरुत्वान् – भट्टिकाव्य १०/१६

जृम्भावान् – भट्टिकाव्य १०/७५

तनुत्रवान् – भट्टिकाव्य ४/१०

तम्, इयसुन्, ईष्ठन्, क्त, सन्, विनि, इमनिच्, प्रत्ययान्त प्रातिपदिक :–

भट्टिकाव्य में क्रमशः इनके उदाहरण इस प्रकार हैं –

वृद्धतम् – भट्टिकाव्य २/४४

कनीयान् (इयसुन्) – भट्टिकाव्य ३/५१

---

१. अष्टाध्यायी, ७.१.७०

वरिष्ठः (ईष्ठन्) – भट्टिकाव्य १/१५

बहिष्ठः, वन्दिष्ठम्, प्रेष्ठम्, गरिष्ठम्, वरिष्ठम् २/४५

शयितं (क्त) ८/१२६

भुक्तं (क्त) ८/१२६

जल्पितं (क्त) ८/१२६

हसितं (क्त) ८/१२६

स्थितम् (क्त) ८/१२६

स्त्रग्विणम् (विनि) १६/१२

स्त्रग्विणी (विनि) ४/१८

परिदेविनी (विनि) ५/५३

महिमा (इमनिच) १०/६३

लघिम्ना (इमनिच) ३/७

कृष्णिमानम् (इमनिच) ५/८८

प्रथिमान (इमनिच) ४/१७

भट्टिकाव्य में संख्यावाचक शब्द :–

भट्टिकाव्य में संख्यावाचक शब्दों का प्रयोग विशेषणों के समान ही हुआ है । लेकिन एक, द्वि, त्रि, चतुर का तीनों लिंगों में प्रयोग होता है । यथा –

एकेन बहवः शूराः – भट्टिकाव्य ६/४६

एकम् आसनम् – भट्टिकाव्य २/४६

एवैकः सुखायते – भट्टिकाव्य ५/७४

द्वाभ्याम् – भट्टिकाव्य ६/१२४

द्वे सहस्त्रे – भट्टिकाव्य १५/६६

लक्षे च द्वे – भट्टिकाव्य १७/६८

चालीस संख्या के लिए भट्टि ने **विशति** के साथ **द्वि** का प्रयोग किया है –

द्विविंशतिभिः – भट्टिकाव्य १७/४०

त्रिशत्तमम् – भट्टिकाव्य ७/८६

त्रिधा – भट्टिकाव्य १७/६१, १/२

त्रिसृषु – भट्टिकाव्य १/६

चतुर शब्द का केवल एक रूप भट्टिकाव्य में मिलता है –

चतुरः – भट्टिकाव्य १/१३

पंच शब्द का प्रयोग भट्टिकाव्य में **विंशति** के साथ १०० संख्या के लिए हुआ है । केवल दो ही प्रयोग मिलते हैं –

पंचविशतिभिः – भट्टिकाव्य १७/४१

अन्य संख्यावाचक शब्दों के रूप भट्टिकाव्य में इस प्रकार मिलते हैं –

चतुर्दश – भट्टिकाव्य १२/५६

त्रिशतमम् – भट्टिकाव्य ७/८६

शतसाहसं – भट्टिकाव्य ८/३७

अशीति सहस्त्राणि – भट्टिकाव्य ६/३

त्रिदशैः – भट्टिकाव्य ६/३

दशदन्ति सहस्त्राणि – भट्टिकाव्य १७/६७

अष्टधण्टां – भट्टिकाव्य १७/६२

शतसहस्त्रेण – भट्टिकाव्य १७/६६

एकशतम् – भट्टिकाव्य १७/१०७

त्रिदशान् – भट्टिकाव्य १/२

सर्वनाम :–

सर्वादिगण में पढ़े गए सर्वनामों में द्वि, अन्य, पूर्व, पर, अपर, स्व, तद्, यद्, इदम्, अदस्, एक, युष्मद्, अस्मद्, भवत् तथा किम् के प्रयोग मिलते हैं ।[1]

कतिपय उदाहरण देखिए – सर्व

सर्वम् – भट्टिकाव्य ५/८

---

१. अष्टाध्यायी, १.१.२७

सर्वः – भट्टिकाव्य ५/७४

सर्वा – भट्टिकाव्य ८/६६, ६६

सर्वस्य – भट्टिकाव्य १८/८

उभ –

उभौ – भट्टिकाव्य १७/१०३

उभयोः – भट्टिकाव्य १७/१०६

अन्य –

अन्ये – भट्टिकाव्य २/२०

अन्यः – भट्टिकाव्य २/३५

अन्यान् – भट्टिकाव्य ६/४१

अन्यैः – भट्टिकाव्य ८/१२८

तद् – पु० –

ते – भट्टिकाव्य ६/६६, ८/१३

ताः – भट्टिकाव्य ८/५०

तेन – भट्टिकाव्य १/१०

तस्य – भट्टिकाव्य १/११

तान् – भट्टिकाव्य २/२८

स्त्रीलिङ्ग –

सा – भट्टिकाव्य ७/६५

ताभ्यः – भट्टिकाव्य ८/३३

तस्याः – भट्टिकाव्य २/१

नपुंसकलिङ्ग –

तानि – भट्टिकाव्य १/१६

तद् तद् – भट्टिकाव्य २/१६

इदम् – पुलिङ्ग –

अनेन – भट्टिकाव्य ६/६४

एभ्यः – भट्टिकाव्य ३/४२

अस्मिन् – भट्टिकाव्य ७/६१

अस्य – भट्टिकाव्य २/४२

अयम् – भट्टिकाव्य ७/६२, २/३४

नपुंसकलिङ्ग –

इदम् – भट्टिकाव्य २/४६

स्त्रीलिङ्ग –

अस्मै – भट्टिकाव्य १४/८४

युष्मद् अस्मद् –

त्वम् – भट्टिकाव्य १/१८

युयम् – भट्टिकाव्य ४/६

युवाम् – भट्टिकाव्य २/२७

माम् – भट्टिकाव्य १/२२

वयम् – भट्टिकाव्य ८/१२

त्वाम् – भट्टिकाव्य ८/११२

किम् –

कस्मात् – भट्टिकाव्य २/३३

केचित् – भट्टिकाव्य ३/१०

केचन् – भट्टिकाव्य ३/१०

के – भट्टिकाव्य ७/८५

केन – भट्टिकाव्य ७/८८

कश्चन् – भट्टिकाव्य १४/८४

तिङन्त प्रकरण :–

भट्टिकाव्य का अन्तिम **चतुर्थकाण्ड** संस्कृत के एक जटिल स्वरूप **तिङन्त** के विविध शब्द रूपों को प्रदर्शित करता है । यह **काण्ड** सबसे बड़ा काण्ड है । चतुर्दश से द्वाविश सर्ग तक ६ लकारों का प्रयोग किया गया है । भट्टि एक सर्ग में एक ही लकार और प्रत्यय के साथ धातुओं का बड़ा सुन्दर क्रम प्रस्तुत करता है । एक श्लोक में एक भी सुबन्त पद का प्रयोग किये बिना धातु रूपों से ही अपने काव्य–प्रवाह को भट्टि ने आगे बढ़ाया है। इस तरह का प्रयोग "पुष्पतुल्यानां आख्यातानां सुबन्त पदव्यवधानदृते गुम्फनादिह्वयमाख्यातमाला" कहा गया है । यथा –

"भ्रेमुर्ववल्गुर्ननृतुर्जजक्षुर्जगुः समुत्पुप्लुविरे निषेदुः ।
आस्फोटयाञ्चक्रुभिप्रणेदू रेजुर्ननन्दुर्विययु समीयुः ।।"

– रावणवध १३/२८

पूरे महाकाव्य में भट्टि ने ४८० के लगभग धातुओं का प्रयोग किया है । जिनमें से २८० परस्मैपदी, १२० आत्मनेपदी, ८० उभयपदी धातुओं का प्रयोग है ।

४८० धातुओं में १३ दुर्लभ धातुओं का प्रयोग किया गया है तथा लगभग २२ धातुओं का एक से अधिक गणों में प्रयोग है । १० गण एवं ६ लकारों के साथ ही भट्टिकाव्य में आत्मनेपद, परस्मैपद, षत्व, णत्व, सन्नत के भी प्रयोग पाणिनीय सूत्र क्रम से दिए गए हैं । भट्टिकाव्य में कुछ ऐसे प्रयोग भी दिए गए हैं जो रूप रचना की दृष्टि से अनेक विद्वानों के चिन्तन के विषय रहे हैं ।

चतुर्दश सर्ग से द्वाविंश सर्ग तक लकार व्यवस्था –

लिट् लकार :–

भट्टिकाव्य में केवल चतुर्दश सर्ग में ही २२० प्रयोग लिट् लकार के प्रयोग उपलब्ध है । परोक्षे लिट् 'भू' को वुक् का आगम होता है लुङ्, लिट् का अच् परे होने पर [1] भट्टिकाव्य में भू धातु का लिट् लकार में कोई प्रयोग नहीं मिलता । कतिपय उदाहरण देखिए –

प्रजिघाय – १४/१

वादयाञ्चक्रिरे – १४/३

जिहेषिरे – १४/५

---

१. अष्टाध्यायी, ६.४.८८

पुस्फुटुः – १४/६

ममङ्गिरे – १४/१०

निजगरुः – १४/११

चकासाञ्चक्रूः – १४/१६

आनशिरे – १४/१६

रेधुः – १४/१६

शुश्रुवान् – १४/२२

विविधुः – १४/२४

मुमुदे – १४/३८

आजुहाव – १४/४४

आनहे – १४/५१

विभयाञ्चक्रुः – १४/७८

शिश्वयुः – १४/७६

शुशुवः – १४/७६

बभ्रज्ज – १४/८६

विलेपुः – १४/१०१

लुङ् लकार :–

सामान्य भूत में लुङ् लकार होता है[१] भट्टिकाव्य में कतिपय उदाहरण –

अभैषीत् – १५/१

प्रातिष्ठित् – १५/१

व्याहार्षुः – १५/२

अभ्यषिचन् – १५/३

व्यलिपत् – १५/६

अदाङ्क्षु – १५/४

अप्रोक्षित् – १५/५

१. वही ३.२.११०

अतौत्सुः – १५/४

अवीवदन् – १५/४

अजीगणत् – १५/५

अबुद्ध – १५/५

अस्नासीत् – १५/६

अप्सासीत् – १५/६

अद्राक्षीत् – १५/७

निरदिक्षत् – १५/८

अरुधत् – १५/१०

प्रावोचम् – १५/११

आगमत् – १५/१३

अधानिषत् – १५/१७

अव्ययीः – १५/१७

अकर्तीत् – १५/६७

अगदीत् – १५/१०२

अशिश्रावत् – १५/१०३

अमार्जीत् – १५/१११

अमार्क्षीत् – १५/१११

अवभासत् – १५/१११

अक्राक्षीत् – १५/१२२

लृट् लकार :–

क्रियार्थ क्रिया के उपपदत्व में तथा अनुपपदत्व में भी भविष्यत् काल में धातु से लृट् लकार होता है ।[१]

भट्टिकाव्य का षोडश सर्ग लृट् लकार के १११ प्रयोगो से पूर्ण है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

करिष्यामि – १६/१

जायिष्यते – १६/२

१. अष्टाध्यायी, ३.३.१३

सन्दर्शिष्ये – १६/६

उपहनिष्यते – १६/१२

कत्स्र्यति – १६/१५

वितत्स्र्यति – १६/१५

कामयिष्यते – १६/२१

अवाप्स्यति – १६/२१

विनङ्क्ष्यति – १६/२६

एष्यति – १६/२६

लङ् लकार :–

जब क्रिया का अनद्यतन भूतकाल में होना प्रकट करना हो, तब धातु से लङ् लकार होता है ।[1]

भट्टिकाव्य के सप्तदश सर्ग में कुल ११२ श्लोकों में लगभंग ३४५ लङ् लकार के प्रयोग किए गए हैं । कतिपय उदाहरण देखिए –

आशासत् – १७/१

अस्नुः – १७/१

अहावयन् – १७/१

अवाचयन् – १७/१

आदन् – १७/३

न्यश्यन् – १७/४

आमुञ्चत् – १७/६

अदशन् – १७/१३

अभ्राम्यत् – १७/१५

व्यष्टभ्नात् – १७/१६

मा स्म निगृह्णः – १७/२१

मा स्म तिष्ठत – १७/२६

प्रावर्धत – १७/६०

---

१. वही ३.२.१११

व्याश्नुत् – १७/६०

अतुभ्नात् – १७/६०

अक्षिणोत् – १७/६०

अक्षुभ्नात् – १७/६०

लट् लकार :–

वर्तमान् अर्थ में धातु से लट् प्रत्यय होता है ।[1]

भट्टिकाव्य के अष्टादश सर्ग में ४२ श्लोकों में कुल १२६ लट् लकार के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं कतिपय उदाहरण देखिए –

व्युश्नुते स्म – १८/१

रोदिति स्म – १८/१

शेते – १८/२

नियच्छसि – १८/३

समदन्ति – १८/१२

संस्वजते – १८/२३

प्रमोदन्ते – १८/२३

चित्रीयन्ते – १८/२३

नमन्ति – १८/३६

रुदन्ति – १८/३६

लिङ् लकार :–

विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न तथा प्रार्थना अर्थों में धातु से लिङ् लकार होता है ।[2]

आशीः अर्थ में धातु से लिङ् तथा लोट् प्रत्यय होता है[3] –

---

१. अष्टाध्यायी, ३.२.१२३

२. अष्टाध्यायी, ३.३.१३१

३. वही ३.२.१७३

विधेयासुः – १६/२

चिनुयात् – १६/१३

जुहुयात् – १६/१३

गायेयुः – १६/१३

तिष्ठेत् – १६/१८

सीदेत् – १६/१८

वध्याः – १६/२६

भूयाः – १६/२६

धेयाः – १६/२७

पेयाः – १६/२७

हिस्त्राः – १६/२७

लोट् लकार :–

"विधि आदि अर्थों में धातु से **लोट् लकार** भी होता है ।[१]

भट्टिकाव्य में इसका उदाहरण देखिए –

प्रार्थनायां लोट् – वर्द्धस्व – २०/१

निमन्त्रणे – भूषय – २०/१५

विधौ – हन्यताम् – २०/२

विधौ – गृहाण – २०/२

प्रार्थनायां लोट्–उपशाम्यतु – २०/५

प्रार्थनायां लोट्–एधि – २०/६

निमन्त्रणे लोट्–यतस्व – २०/१५

प्रार्थनायां लोट्–प्रतिष्ठस्व – २०/१८

प्रार्थनायां लोट्–विद्यस्व – २०/३३

प्रार्थनायां लोट्–आस्स्व – २०/३३

प्रार्थनायां लोट्–सबुध्यस्व – २०/३३

---

३. वही ३.३.१६२

आमन्त्रणे लोट्–प्रवपाणि – २०/३६

प्रार्थनायां लोट्–श्रृण्वन्तु – २०/३६

प्रार्थनायां लोट्–विदन्तु – २०/३६

लृङ् लकार :–

पाणिनि के अनुसार "लिङनिमित्ते लृङ् क्रियाऽतिपत्तौ" [1] अर्थात् लिङ् का निमित्त हेतुहेतुमद्भाव आदि है, उसमें क्रिया यदि भविष्यत् काल की हो तो धातु से लृङ् लकार होता है ।

"कृष्णं नमेत् चेत् सुखं यायात्" "कुष्ण को नमस्कार करें तो सुख प्राप्त करें" इस वाक्य में नमस्कार–क्रिया सुख–प्राप्ति क्रिया का हेतु है । सुख–प्राप्ति क्रिया सहेतुक है, इसलिए इसे **हेतुमत्** कहा जाता है । इस प्रकार यहाँ दोनों क्रियाओं का 'हेतुहेतुमद्भाव' सम्बन्ध है । इसमें 'हेतुहेतुमर्तोलिङ्' [2] सूत्र से लिङ् लकार होता है ।

परन्तु जब 'हेतुहेतुमद्भाव' आदि के स्थल में भविष्यत् काल और क्रिया की असिद्धि प्रतीत होती हो तो हेतु और हेतुमत् दोनों क्रियाओं के लिए लृङ् लकार आता है, जैसे – 'सुवृष्टिश्चेद् अभविष्यत् तदा सुभिक्षमभिवष्यत्' – 'अच्छी वर्षा होगी तो सुभिक्ष–सुकाल होगा'

इस वाक्य में **वृष्टि होना** क्रिया **सुमिक्ष** होना क्रिया का हेतु है और यह भविष्यत् काल की है तथा इनकी असिद्धि यहां प्रतीत हो रही है । अतः दोनों से लृङ् लकार आया है ।

महाकवि भट्टि ने अपने काव्य के २१वें सर्ग में इसी धातु के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं –

आशंकिष्यथाः – २१/१

अभविष्यत् – २१/२

अपास्यम् – २१/२

आर्थयिष्यत् – २१/३

आकरिष्यत् – २१/४

अहास्यः – २१/६

अशोचिष्यः – २१/६

समपत्स्यत – २१/७

---

१. अष्टाध्यायी, ३.३.३

२. वही ३.३.१५६

आयास्यन् – २१/७

अमंस्यत – २१/१०

अगमिष्यत् – २१/१०

अधास्यत् – २१/१४

अकर्त्स्यत् – २१/१७

अघटिष्यत् – २१/१७

लुट् लकार :–

अनद्यतन भविष्यात् काल में धातु से लुट् प्रत्यय होता है ।[1]

जब क्रिया का भविष्यत् काल में होना और अनद्यतनत्व – आज न होना – बताना अभीष्ट हो, उस समय लुट् लकार का प्रयोग होता है ।

भट्टि ने २२वें सर्ग में इस प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं –

प्रयातासि – २२/१

गाधितासे – २२/२

आनन्दितारः – २२/१४

प्रष्टारः – २२/१४

प्रक्रिया :–

भट्टिकाव्य में आत्मनेपद, परस्मैपद, षत्व, णत्व, सन्नत के भी प्रयोग पाणिनि क्रम से ही दिए गए हैं । इसके अतिरिक्त नामधातु, कण्डवादि धातु, यङ्, लुगन्त, यङन्त, कर्म कर्तृ भावकर्म, लकारार्थ, णिजन्त आदि प्रत्यय युक्त धातु के रूपों का विशद प्रयोग हुआ है ।

आत्मनेपद प्रक्रिया :–

भट्टिकाव्य में अनुदात्तेत् तथा ङित् धातुओं से "ल" के स्थान में आत्मनेपद प्रत्यय ही आदेश होते हैं ।[2]

अगाधत – ८/१

---

१. अष्टाध्यायी, ३.३.१५

२. अष्टाध्यायी, १.३.१२

अनुपसर्गक ज्ञा धातु से कर्तृभिप्राय क्रियाफल में आत्मनेपद होता है ।[1] भट्टिकाव्य में इसका उदाहरण –

जानानाभिः – ८/४७

आत्मनेपद का एक और उदाहरण –

वहमानाभिः – ८/४६

परस्मैपद प्रक्रिया :–

जिस धातु से जिस विशेषण को निमित्त मानकर आत्मनेपद का नियम किया गया उससे अन्य विशेषण "शेष" शब्द का अर्थ है । शेष से कर्त्ता के लकार वाच्य होने पर परस्मैपद होता है, अन्य नहीं ।[2]

कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

पिबन्तीभिः – ८/४६
अनुकुर्वद् – ८/५०
पराकुर्वन् – ८/५०
अभिक्षिपन्तम् – ८/५१
प्रवहन्तम् – ८/५२
परिमृष्यन्तम् – ८/५२
अरमन्तम् – ८/५२
व्यरमत् – ८/५३
पर्यरमत् – ८/५३
उपारंसीत् – ८/५४
अयोधयत् – ८/५६
नाशयेयम् – ८/५७
जनयेयम् – ८/५७
अचलयन् – ८/६०

---

१. वही १.३.७६

२. वही १.३.७८

भट्टिकाव्य में नामधातु प्रक्रिया :–

क्यच् :–

क्रिया विशेष अर्थो, पूजा, परिचर्या, विस्मित होना अर्थो में क्रम से नसम्, वरिवस्, चित्रङ् से **क्यच्** प्रत्यय किया गया है ।[१]

नमस्यन्ति – १८/२१

पूजयन्ति, वरिवस्यन्ति – १८/२१

चित्रियन्ते – १८/२३

अवरिवस्यन् – १७/५१

काम्यच् :–

भट्टिकाव्य में **क्यच्** के विषय में कर्मवाची द्वितीयान्त पद से **काम्यच्** प्रत्यय होता है ।[२] इसका एक ही प्रयोग मिलता है – रणकाम्यन्ति ।

क्यङ् :–

आचार अर्थ में उपमानवाची कर्त्ता सुबन्त से विकल्प करके **क्यङ्** प्रत्यय होता है और सकार का लोप होता है ।[३]

ओजायमाना – ५/७६ (तेजस्विनी भवन्ति)

करने अर्थ में वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ प्रातिपदिक से **क्यङ्** प्रत्यय होता है[४] –

वैरायते – १८/६

अशब्दायन्त – १७/१६

वैरायमाणेभ्यः – ५/७५

---

१. अष्टाध्यायी, ३.१.१६

२. वही ४.१.६

३. वही ३.१.११

४. वही ३.१.१७

भट्टिकाव्य में कण्डवादि प्रक्रिया :–

कण्डवादि धातुओं से यक् प्रत्यय नित्य होता है[1] –

मन्तु अपराधे – मन्तूयिष्यति १६/३१

वल्गुपूजा माधुर्ययोः – वल्गूयिष्यति १६/३१

ववल्गुः – १२/२८

भट्टिकाव्य में यङ्लुगन्त प्रक्रिया :–

भट्टिकाव्य में इसके केवल दो ही रूप उपलब्ध हैं, यङ् लुगन्त धातु से परे हलादि **पित्** सार्वधातुक प्रत्यय को ईट् आगम विकल्प से होता है ।[2] –

बोभवीति – १८/४१

शशमाञ्चकुः – १४/६७

भट्टिकाव्य में यङ्न्त प्रक्रिया :–

भट्टिकाव्य में क्रिया के बार–बार शीघ्र या निरन्तर अर्थ में, हलादि एकाच् धातुओं से यङ् प्रत्यय होता है ।[3] –

अकोकूयिष्ट – १५/११४

अबेभिदिष्ट – १५/११६

भट्टिकाव्य में कर्मकर्तृ प्रक्रिया :–

कृष् तथा रंज् के कर्मकर्त्ता के वाच्य होने पर **यक्** के विषय में श्यन् और आत्मनेपद के स्थान में परस्मैपद विकल्प से होता है[4] –

श्रीर्निष्कुष्यति लंकायाम् – १८/२२

---

१. अष्टाध्यायी, ३.१.२७

२. वही ७.३.६४

३. वही ३.१.२२

४. वही ३.१.६८

भट्टिकाव्य में **दुह्** से भी कर्मकर्त्ता में "त" शब्द परे होने पर **च्लि** को **चिण्** विकल्प से होता है[१] –

अदोहीव विषादोऽस्य –, ६/३४

भट्टिकाव्य में भावकर्म प्रक्रिया :–

भाव तथा कर्मवाची सार्वधातुक परे होने पर धातु से यत् प्रत्यय होता है ।[२]

न्यश्वसी – ६/३४

समभावि – ६/३४

भट्टिकाव्य में णिजन्त प्रक्रिया :–

भट्टिकाव्य में हेतु के प्रेरणा रूप व्यापार को कहने के लिए धातु मात्र से **णिच्** प्रत्यय आता है ।[३]

णिच् के णित् होने से धातु के अन्त्य **अच्** तथा उपधा भूत "अ" को वृद्धि होती है । णिच् के आर्धधातुक होने से उपधा भूत लघु **इक्** को गुण होता है –

आशाययत् – १७/१११

शायितवत, अपात्तयत्, द्राघयन्ति – १८/२३

अभाजयत् – १७/८०

भट्टिकाव्य में सन्नन्त प्रक्रिया :–

भट्टिकाव्य में इष् धातु के कर्मकारी स्थानापन्न धातु से इच्छा अर्थ में **सन्** प्रत्यय विकल्प से होता है यदि "इष्" धातु का कर्त्ता ही उस कर्म स्थानिक धातु का कर्त्ता भी हो[४] –

युयुत्सिष्ये – १६/३५

इषन्त, ऋधु, भ्रत्ज, दम्भु, श्रि, स्वृ, यु, अर्णु, भर, ज्ञपि और सन् इन अंगों से परे **क्लापि** सन् आर्द्धधातुक

---

१. अष्टाध्यायी, ३.१.६३

२. वही ३.१.६७

३. वही २.१.२६

४. वही ३.१.१७

को विकल्प से इट् आगम होता है[1] –

दिदेविषुम् – ११/३२

धिप्सुम् – ६/३३

संशिश्रीषुः – ६/३३

विभ्रक्षुः – ६/३४

भट्टिकाव्य में षत्व प्रक्रिया :–

अपदान्त सकार को मूर्धन्य को आदेश होता है ।[2]

धूर्षु, त्वक्षु – ६/६७

आर्युषि – ६/८७

प्रतुष्टूषुः – ६/६६

असिषजयिषुः – ६/६१

उत्सिसाहयिषन् – ६/६६

अभिष्यन्त – ६/७१

पर्यषहिष्ट – ६/७३

भट्टिकाव्य में णत्व प्रक्रिया :–

रेफ और षकार से परे नकार को णकारादेश हो यदि निमित्त और निमित्त एक पदार्थ हों ।[3] –

मुष्णन्तम् – ६/६२

अग्रेवणम् – ६/६३

निर्वणम् – ६/६४

प्रहापणम् – ६/१०४

कृत् प्रत्यय :–

भट्टिकाव्य में कृत प्रत्ययों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है । लगभग ३६० पाणिनीय सूत्रों के उदाहरण

---

१. अष्टाध्यायी, ७.२.४६

२. वही ८.३.५८

३. वही ५.४.१

भट्टिकाव्य में पाणिनि क्रम से दिए गए हैं । एक–एक सूत्र के एक से लेकर ६–७ तक भी उदाहरण मिलते हैं । प्रायः भट्टिकाव्य में पाणिनि नियमों का अनुसरण पूर्णतया किया गया है । कहीं–कहीं कुछ अनियमितताएँ विभिन्न विद्वानों के अनुसार मिलती है उन्हें यथा स्थान इस अध्याय में दर्शाया गया है । पाणिनि अष्टाध्यायी के ३.१.६६ से लेकर ३.३.१२८ सूत्र पूर्ण रूप से पाणिनि क्रम अपनाया गया है ।

भट्टिकाव्य में कृत्य प्रत्ययों का वर्णन सर्ग ६.४७ श्लोक से ६.६७ तक किया गया है । सर्ग ६.२७ से ८७ श्लोक तक निरुपपद कृदधिकार को लिया गया है । सर्ग ६.८८ से ६४ तक सोपपद कृत का प्रयोग हुआ है । भट्टिकाव्य ६.६५ से १०८ श्लोक तक खश् और खच् प्रत्ययों का वर्णन है । यह अधिकार ५.६७ से १०४ श्लोक तक है । डाऽधिकार सर्ग ६.११० से ११२ श्लोक तक । इसके बाद कृत सोपपद का सर्ग ६.११३ से १३६ तक वर्णन है । अनुपपद् कृत् सर्ग ६.१३७ से १३६ से तक है । ताच्छील्य कृत् का वर्णन सर्ग ७.१ से ७.२७ श्लोक तक है । निरधिकार कृत सर्ग ७.२६ से ३३ तक प्रयोग हैं । भांव में कृत प्रत्यय सर्ग ७.३४ से ८५ श्लोक तक किये गये है । बीच में सर्ग ७.६८ से ७७ श्लोक तक स्त्रीलिंग कृत् प्रत्ययों के उदाहरण दिए गए हैं । इन कृत् प्रत्ययों का वर्णन करने के बाद भट्टिकाव्य में इनमें प्रयोग होने ङित्, कित् अधिकार का सर्ग ७६१ से १०७ श्लोक तक इट् प्रतिषेध का सर्ग ६.१२ से २२ श्लोक तक ङाऽधिकार का सर्ग ६.२३ से ६.५७ श्लोक का वर्णन किया गया है । पाणिनि की तरह भट्टि ने भी पहले कृत्य प्रत्ययों का वर्णन किया है ।

तद्धित प्रत्यय :–

भट्टिकाव्य में तद्धित प्रत्ययों का प्रयोग बाहुल्य से पाया जाता है । लगभग १०० से अधिक प्रत्ययों के उदाहरण विभिन्न अर्थों में दृष्टिगोचर होते हैं । इन प्रत्ययों का प्रयोग वैदिक भाषा और ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत कम मिलता है, पर लौकिक संस्कृत में यह प्रयोग उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता गया है । पतंजलि ने अपने महाभाष्य के पस्पशाह्निक में इस तथ्य को स्वीकार किया है ''प्रिय तद्धिता दाक्षिणात्याः'' । पाश्चात्य विद्वान् इन प्रत्ययों के लिए नाम गौण प्रत्यय देते हैं । तद्धित प्रत्यय 'तेभ्य प्रथागेभ्यः हिताः' इस निर्वचन के अनुसार भट्टिकाव्य में सुबन्त पद संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और अव्ययों से तथा स्वार्थिक प्रत्यय होने पर केवल प्रातिपदिक से जोड़े जाते हैं । प्रायः सभी प्रत्ययों का प्रयोग पाणिनि नियमों के अनुसार किया गया है फिर भी तीन या चार स्थानों पर विभिन्न विद्वानों की शब्द निष्पत्ति के विषय में वैचारिक–भिन्नता यथास्थान दर्शायी गयी है । भट्टिकाव्य के तद्धितान्त शब्दों का अन्वाख्यान इस अध्याय में पणिनि–क्रम से किया गया है । भट्टिकाव्य में विभिन्न अर्थों में बार–बार प्रयुक्त होने वाले प्रत्यय इस प्रकार हैं –

अण्, अञ्, ख, यञ्, अञ्, पुक्, ईञ्, ण्य्, नञ्, स्नञ्, ढक्, इनङ्, घ, ज्यङ्, ण्यत्, त्यप्, एण्य्, टयु, टयुल्, यत्, छ, भयट्, ईकक्, यत्, वति, त्व्, तल्, इमनिच्, ष्यञ्, ख, खञ्, जाहच्, वुञ्, चुचुंप्, शंकटच्, त्यकन्, इतच्, द्वयसच्, डट्, क्तुप्, त्यप्, वुन्, अबुक्, कन्, वति, इनि, वलच्, लच्, विनि, तसिल, ह, थाल, थमु,

अस्तात्ति, अन्, कन्, यत्, वुन्, ष्वुन्, छ, कृत्वसुच्, सुच्, तमप्, इष्ठन्, इयसुन्, कल्पम्, पाशम्, अकच्, र, डुफ्च्, घा, मयट, यत्, स्न, शस्, साति, डाच्, आकिनी, ज्य, छ, अज्, यज्, ढक्, तल्, क, ढच्, अच्, टच्, षच्, ष्, अप्, असिच्, अनिच्, इ, कप्, त्रल, दा, हिल्, एनप्, आदि ।

ज्योतिषशास्त्र :–

ज्योतिष, वेद का नेत्र कहा गया है । कवि की काव्यगत निपुणता ज्योतिष के बिना अधूरी प्रतिभासित होती है । ज्योतिष वेदाङ्गों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । यज्ञों की सफलता के लिए इसकी परम अपेक्षा होती है कि यज्ञारम्भ में और उसकी समाप्ति पर शुद्ध ग्रहों का सान्निध्य है अथवा नहीं । यह कार्य भी ज्योतिष का ही है कि ग्रह अनुकूल है या प्रतिकूल है । जैसे मोरो की शिखायें और नागों की मणियाँ शिरस्थायिनी होती है, ठीक उसी प्रकार वेदाङ्गशास्त्रों में ज्योतिष भी सिरमौर है –

"यथा शिखा मयुराणां नागानामणयोयथा ।
तद्वेद्वदाङ्गशास्त्राणा गणितं मूर्ध्नि संस्थितम् ।।" [१]

महाकवि भट्टि को ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान था । उन्होंने अपने काव्य में शकुनों तथा अपशकुनों का कई स्थानों पर प्रयोग किया है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

प्रथम सर्ग में राम के तपोवनगमन के समय इच्छित फल की सूचना देने वाला दक्षिण बाहु भी अच्छी तरह फड़क उठा और शुभ–शकुन के अनुकूल पक्षियों ने भी उच्च स्वर में कूँजना शुरु किया –

"अथ जगदुरनीचैराशिषस्तस्य विप्रा –
स्तुमुलकलनिनादं तूर्यमाजध्नुरन्ये ।
अभिमतफलशंसी चारु पुस्फोर बाहु –
स्तरुषु चुकुवुरुच्चैः पक्षिणश्चाऽनुकूलाः ।।" [२]

ननिहाल में भरत ने स्वप्न में आकाश से गिरे हुए सूर्य को पृथ्वी पर चलते हुए देखा और इससे अपने पिता के अनिष्ट की आशंका की । [३] –

"सुप्तो नभस्तः पतितं निरीक्षाञ्चक्रे विवस्वन्तमधः स्फुरन्तम् ।
आख्यद्वसन्मातृकुले सरिवभ्यः पश्यन् प्रमादं भरतोऽपि राज्ञः ।।"

---

१. वेदाङ्ग ज्योतिष, श्लोक संख्या – ४

२. भट्टिकाव्य १/२७

३. वही ३/२४

धूम्राक्ष के शिर के समीप गृध्र निलीन हुआ। अशुभसूचक कौवे शब्द करने लगे। आकाश ने रुधिरक्षरण किया। उसी तरह से भूतल कम्पित हुआ[1] –

"निलिल्ये मूर्ध्नि गृध्रास्य क्रूरा ध्वाङ्क्षा क्वाशिरे।
शिशीके शोणितं व्योम चचाल क्षमातलं तथा ।।"

अकम्पन की बाई आँख का फड़कना, अशुभसूचक पक्षी का शब्द करना, अनिष्ट की सूचना देता है[2] –

"पस्पन्दे तस्य वामाऽक्षि सस्यमुश्चाऽशिवाः खगाः।
तान् वव्राजावमत्यासौ बभासे च रणे शरैः ।।"

युद्ध भूमि में गमन करते समय कुम्भकर्ण की बाई आंख फड़कने लगी। अनिष्ट सूचक श्रृगाल शब्द करने लगे। मूसल में गृध बैठ गए और प्रज्जवलित उल्का गिर पड़ी[3] –

"अस्पन्दिष्टाऽक्षि वामं च घोराश्चाऽराटिषुः शिवाः।
व्यपप्तन्मुसले गृध्रा दीप्तयाऽपाति चोल्कया ।।"

राक्षसों के युद्धभूमि में प्रस्थान करते समय भीषण अपशकुन होने लगे[4] –

"आसीद् द्वारेषु संघट्टो रथाऽश्वद्वि परक्षसाम्।
सुमहाननिमित्तैश्च समभूयत भीषणैः ।।"

आयुर्वेद :–

कविवर भट्टि ने अपने काव्य में कई स्थानों पर अपने आयुर्वेद ज्ञान का परिचय दिया है – भरत की ननिहाल से लौटने के प्रतीक्षा करते हुए, दशरथ के पार्थिव शरीर को सुरक्षित रखने हेतु शीघ्र ही तैल में रख दिया गया।

आयुर्वेद की मान्यता है कि यदि शव को तेल में रख दिया जाय, तो वह दुर्गन्ध से बचा रहेगा, सड़ने जैसे उसमें दोष नहीं आयेंगे। ननिहालस्थ भरत की प्रतिक्षा कर रहे बन्धुओं द्वारा दशरथ के शव को सुरक्षित रखने के लए तैल में रखने के वर्णन से हमें भट्टि के आयुर्वेद सम्बन्धित ज्ञान का पता चलता है –

---

१. भट्टिकाव्य १४/७६

२. वही १४/८३

३. वही १५/२७

४. वही १७/५७

"ताः सान्त्वयन्ती भरतप्रतीक्षा तं बन्धूता न्यक्षिपदाशु तैले ।
दूतांश्च राजाऽऽत्मजमानिनीषुः प्रास्थापयन्मन्त्रिमतेन यूनः ।।" [1]

अधोलिखित श्लोक भी आयुर्वेद का उत्तम उदाहरण है [2] –

"श्रोत्राक्षिनासावदनं सरुक्मं कृत्वाऽजिने प्राक्शिरसं निधाय ।
संचिन्त्य पात्राणि यथाविधानमृत्विग्जुहाव ज्वलितं चिताग्निम् ।।"

अर्थात् भरत ने कृष्णसार नामक मृग के चर्म पर शव को पूर्वाभिमुख रख कर, कान, नेत्र, नाक और मुँह के छिद्रो में सोने का टुकड़ा डालकर, स्त्रक् आदि यज्ञ पात्रों को शरीर के तत् सम्बन्धि अंगों में रखकर प्रज्ज्वलित चिताग्नि को आहूतियों से तृप्त किया ।

द्वादश सर्ग में विभीषण राक्षसराज रावण को कहा – 'हे महाराज ! सुख पूर्वक रहे, मूर्ख रोगी पथ्यभूत, कटु पदार्थों को नहीं खाता हुआ जो रोगयुक्त होता है, वह वैद्यों का दोष नहीं है ।" [3] –

"उवाच चैनं क्षणदाचरेन्द्रं सुखं महाराज विना मयाऽऽस्स्व ।
मूर्खातुरः पथ्यकटूननश्नन् यत्साऽऽमयोऽसौ भिषजां न दोषः ।।"

यमक अलंकार से सुशोभित इस श्लोक में प्रमदा रोग से पीड़ित व्यक्ति हर्ष से रहित हो जाता है [4] इसका वर्णन है –

"न गजा नगजा दयिता, दयिता
विगतं विगतं ललितं ललितम् ।
प्रमदा प्रमदाऽऽमहता महता –
मरणं मरणं समयात् समयात् ।।"

लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमान् जी ओषधियों को लाने के लिए पर्वत पर गये [5] –

"आयिष्ट मारुतिस्तत्र तौ चाऽप्यहृषतां ततः ।
प्राहैष्टां हिमवत्पृष्ठे सर्वौषधिगिरिं ततः ।।

---

१. भट्टिकाव्य ३/२३
२. वही ३/३५
३. वही १२/८२
४. वही १०/६
५. वही १५/१०४ – १०५

तौ हनुमन्तमानेतुमोषधीं मृतजींविनीम् ।
सन्धानकरणीं चाऽन्यां विशल्यकरणीं तथा ।।"

अर्थात् उस स्थान में हनुमान् जी आ गये तब जाम्बवन्त और विभीषण प्रसन्न हुए अनन्तर उन दोनों ने मृतजीवनी (मरे हुए को जीवित करने वाली), संधानकरणी (क्षत को संधान करने वाली) और विशाल्यकरणी (गड़े हुए बाणाऽग्र को हटाने वाली) औषधि लाने के लिए हनुमान् जी को मध्य भाग में स्थित सम्पूर्ण औषधों से युक्त पर्वत में भेजा ।

रावण के अन्तिम संस्कार के लिए एकत्र की गयी सामग्रियों के विवरण से भी हमें भट्टि के **आयुर्वेद** ज्ञान का परिचय मिलता है[१] –

"उह्येरन् यज्ञपात्राणि ह्रियेत् च विंभावसुः ।
भ्रियेत चाऽऽज्यमृत्विग्भिः कल्प्येत च समित्कुशम् ।।
स्नानीयैः स्नावयेताऽऽशु रम्यैर्लिम्पेत वर्णकैः ।
अलङ्कुर्यात रत्नैश्च रावणाऽर्हैर्दशाऽऽननम् ।।
वासयेत सुवासोभ्यां मेध्याभ्यां राक्षसाऽधिपम् ।
ऋत्विक् स्त्रग्विणमादध्यात् प्राङ्मूर्धानं मृगाऽजिने ।।"

अर्थात् तुम लोग यज्ञ पात्रों को और दक्षिणाग्नि आदि अग्नि को ले जाओ । अध्वर्यु आदि यज्ञ करने वाले धृतादि हवि इकट्ठा करें और समिधा और कुशों का सम्पादन करें । रावण को स्नान के साधनों से शीघ्र स्नान कराओ, सुन्दर चन्दन, कुङ्कुम आदि विलेपन द्रव्यों से लिप्त करो और रावण के योग्य रत्नों से अलंकृत करो । राक्षसराज को पवित्र उत्तरीय और अधरीय दो वस्त्रों से आच्छादित करो । ऋत्विक उनकों माला पहनाकर पूर्वाऽभिमुख कर कृष्णसार मृग के चर्म में रखें ।

दर्शनशास्त्र :–

भारतीय दार्शनिकों ने 'दर्शनविद्या' को बौद्धिक गवेषणा का विषय न बनाकर उसे व्यवहारिक स्वरूप देने का प्रयत्न किया है । दर्शन के दो रूपों **नास्तिक** तथा **आस्तिक** में से महाकवि भट्टि ने **आस्तिक दर्शन** को ही अपने ग्रन्थ में बड़ी निपुणता के साथ पिरोया है । कथात्मक प्रवाह दर्शन का आधार पाकर सशक्त बन पड़ा है –

सांख्य दर्शन :–

यज्ञ रक्षार्थ मुनि विश्वामित्र के राजा दशरथ के यहाँ पधारने का वर्णन महाकवि भट्टि ने **सांख्य दर्शन** को

१. भट्टिकाव्य १९/१० – १२

लक्ष्य कर ही किया है । राजा दशरथ महर्षि से कुशल क्षेम पूछते हुए कहते हैं कि "पुर्नजन्म पर विजय पाने के लिए जिस विषयों से परे अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि से सर्वथा पृथक् भूत ध्यान से, अति सूक्ष्म प्रकृति, पुरुष आदि २५ तत्वों को जाना, इस प्रकार का आपका ध्यान तो निर्विघ्न है ? यह प्रसङ्ग सांख्य दर्शन का मूल ही है –

"ऐषीः पुनर्जन्मजयाय यत्त्वं रुपादिबोधान्न्यवृतच्च यत्ते ।
तत्त्वान्यबुद्धाः प्रतनूनि येन, ध्यानं नृपस्तच्छिवमित्यवादीत् ।।" [1]

सांख्य योग, वेदान्त आदि के सिद्धान्त गीता में प्रतिपादित देखे जाते हैं । इसमें उपनिषदों के भी तत्व निरूपित हैं । भट्टिकाव्य में स्थान–स्थान पर गीता के सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है ।

अर्जुन को उपदेश देने के अवसर पर भगवान् कृष्ण ने कहा कि – 'हमें भक्तजन् जिस रूप में भेजते हैं, उसी रूप में मैं उन्हें दर्शन देता हूँ ।" [2]

अतः राम भी तपोवन में श्रमजीवियों, सोमयाजियों एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण समूह की सन्निधि में रहकर उनका कष्ट हरण किये, साथ ही सत्कार से भी उन्हें आनन्दित करते हैं –

"व्रातीनव्यालदीप्रास्त्रः सुत्वनः परिपूजयन् ।
पर्षद्वलान्महाब्रह्मैराट नैकटिकाश्रमान् ।।" [3]

गीता में कहा गया है कि जिसने विष्णु पद प्राप्ति का मार्ग अपनाया है उसके लिए लाभ–हानि, जय–पराजय कहाँ ? यही रहस्य विभीषण के प्रति राम–रावण के मरण के बाद रखते हैं और कहते हैं कि आप मोह में न पड़ें यह आपके लिए अनुपयुक्त है –

"यच्च यत्र भवांस्तिष्ठते, तत्राऽन्यो रावणस्य न ।
यच्च यत्र भवान्, सीदेन्महद्भिस्तद्विगर्हितम् ।।" [4]

'शील' दार्शनिक शब्द है यह आभ्यन्तर वृत्ति वाला होता है । कवि ने अग्नि के द्वारा सीता–संशुद्धि के कथन में यही **शील** देखने की बात वर्णित की है । वह इसे आभायन्तर वृत्ति का होने के कारण उसकी वाह्य चेष्टाओं की बात भी करते हैं –

---

१. भट्टिकाव्य १/१८

२. ये यथा मां प्रपद्यन्तेतांस्तथैवभजाम्यहम् । – गीता ४/४१ पूर्वार्द्ध

३. वही ४/१२

४. वही १६/१८

"त्वयाऽद्रक्ष्यत किं नाऽस्याः शीलं संवसता चिरम् ।
अदर्शिष्यन्त वा चेष्टाः कालेन बहुना न किम् ।।" [१]

कविवर भट्टि ने अपने महाकाव्य के समापन में गीता के निष्काम कर्म योग का सम्पादन करते हुए कहा है कि मैंने इस व्याकरण शिक्षारूप ग्रन्थ का निर्माण तो कर दिया किन्तु अब इसका क्षेम कारी राजा ही होवें । राजा भगवान् का अंशभूत होता है । अतः यह मेरी कृत्ति नहीं, अपितु उन्हीं की कृत्ति है । अस्तु, मैं उन्हीं को समर्पित करता हूँ –

"काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां श्रीधरसूनुनरेन्द्रपालितायाम् ।
कीर्तिरतो भवतान्–नृपस्य क्षेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम् ।।" [२]

इस प्रकार भट्टिकाव्य में **गीता** के **सांख्य योग** एवं **निष्काम कर्म योग** स्थल कवि की दार्शनिक पृष्ठभूमि को अभिव्यंजित करते हैं ।

योगदर्शन :–

योग क्रिया में **ध्यान** मुख्य माना जाता है । यम, नियम्, आसन, प्राणायाम् तथा प्रत्याहार ये पांच बहिरंग हैं । धारणा, ध्यान और समाधि ये तीन **अन्तरंग** हैं । धारणा में चित्त की एकाग्रता और समाधि में ध्येय वस्तु से पृथक वस्तु का अभाव ही मुख्य माना जाता है । यही **ध्यान** की निर्विघ्नता राजा दशरथ ने विश्वामित्र से पूछी । तदन्तर **समाधि** की निर्विघ्नता का कथन करते हुए महर्षि ने राम–लक्ष्मण को लेकर विघ्नभूत राक्षसों के मारे जाने की बात कही । दोनों कथन में **ध्यान** एवं **समाधि** की एकरूपता का स्थल द्रष्टव्य है [३] –

"ऐषीः पुनर्जन्मजयाय यत्त्वं रुपादिबोधान् न्यवृतञ्च यत्ते ।
तत्त्वान्यबुद्धाः प्रतनूनि येन, ध्यानं नृपस्तच्छिवमित्यवादीत् ।।"

"आख्यन् मुनिस्तस्यशिवं समाधेर्विघ्नन्ति रक्षांसि वने क्रतूश्च ।
तानि द्विषद्वीर्यनिराकरिष्णुस्तृणेढु रामः सह लक्ष्मणेन् ।।"

सीता की खोज में सन्नध वानर वृन्द **योगासन** का ही अवलम्बन करते हैं उन्हें योग में पूर्ण विश्वास है –

"अभावे भवतां योऽस्मिन् जीवेत् तस्याऽस्त्वजीवनिः ।

---

१. भट्टिकाव्य २१/५

२. वही २२/३५

३. वही १/१८ – १९

४. वही ७/७७

इत्युक्त्वा सर्व एवाऽस्थुबुर्द्ध्वा योगऽऽसनानि ते ।।" ४

वेदान्त दर्शन :–

वेदान्त दर्शन को 'उत्तरमीमांसा' दर्शन भी कहते हैं । इसके अन्तर्गत उपनिषदों में वर्णित तथ्यों का वर्णन रहता है । भट्टि ने उपनिषदों के ब्रह्मविषयक आत्मज्ञानियों की विद्या का वर्णन सीता हरण के अवसर पर कृत्रिम वेष धारण कर मन्त्रोंचारण करते हुए रावण के सन्यासी रूप में किया है[१] –

"आधीयन्नात्मविद्विद्यां धारयन्मस्करिव्रतम् ।
वदन् बह्वङ्गुलिस्फोटं भ्रूक्षेपं च विलोकयन् ।।"

यहाँ रावण के द्वारा कपट सन्यासी के वेष में आत्मविद्या का पढ़ा जाना ही **वेदान्त दर्शन** को स्पष्ट करता है । भट्टिकाव्य में कवि द्वारा दर्शन को केवल संकेत ही किया गया है, उसका विस्तार के साथ वर्णन नहीं मिलता है ।

राजनीतिशास्त्र :–

भट्टिकाव्य के पंचम, सप्तम, द्वादश, पंचदश एवं एकोनविंशति सर्गों में महाकवि ने राजनीतिक स्थल वर्णित किये हैं । यही नहीं इसका द्वादश सर्ग तो पूर्णतया राजनीतिपरक दृष्टिगत होता है ।

राजनीति के अन्तर्गत राजा की गुप्तचर व्यवस्था की मुख्य भूमिका होती है । 'नैषधचरित्र' में नारायण द्वारा गुप्तचर नीति के बारे में उद्धरण दिया गया है कि – 'गायें गन्ध से देखती हैं, ब्राह्मण वेदरूपी नेत्र से देखते हैं जबकि राजा लोग गुप्तचर रूपी नेत्र से देखते हैं । सामान्य लोग तो सामान्य आंखों से देखने का कार्य करते हैं[२] –

"गन्धेन गवः पश्यन्ति ब्राह्मणा वेदचक्षुषा ।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चुक्षभ्यानितरे जनाः ।।"

भट्टिकाव्य में रावण के प्रति गुप्तचर नीति की दुर्बलता का कथन करती हुई शूर्पणखा कहती है – "आप हमारी नाक कटने एवं खर–दूषण की मारे जाने की बात भी नहीं जान सकें ।"[३] –

"यद्यहं नाथ ! नाऽऽयास्यं विनासाहतबान्धवा ।

---

१. भट्टिकाव्य ५/६३

२. नैषधीयचरित, १/१३, नारायण द्वारा उद्धृत

३. भट्टिकाव्य ५/८

नाऽज्ञास्यस्त्वमिदं सर्व प्रमाद्यंश्चारदुर्बलः ।।"

विवेकी विभीषण मेघ सदृश गम्भीरता के साथ रावण को बतलाता है कि – "जो आप दूतरूप हनुमान् को मारना चाहते हैं, वह अनुचित है क्योंकि अपराधिक दूत को भी मारना राजनीतिक भूल हैं । अतः आप शान्तचित्त होकर क्रोध दूर करें ।"[१] –

"प्रणिशाम्य दशग्रीव ! प्रणियातुमलं रूषम् ।
प्रणिजानीहि, हन्यन्ते दूता दोषे न सत्यपि ।।"

"यथादिष्ट कार्य करके उसके ही जैसे कुछ अधिक कार्य कर लेना" उत्तमदूतता का लक्षण है, हनुमान् यह भली–भाँति जानते हैं[२] –

"कृत्वा कर्म यथाऽऽदिष्टं पूर्वकार्याऽविरोधि यः ।
करोत्यभ्यधिकं कृत्यं तमाहुर्दूतमुत्तमम् ।।"

इसी प्रकार दूत की उत्तमता में शत्रु की कर्कश वाणी सुनकर भी रूष्ट न होना और स्वकार्यसिद्धि का ही ध्यान किया जाना हनुमान् ऐसे दूत में दर्शनीय है[३] –

"तस्मिन् वदति रूष्टोऽपि नाऽकार्षं देवि ! विक्रमम् ।
अविनाशाय कार्यस्य विचिन्वानः परापरम् ।।"

विभीषण के द्वारा दिये गये राजनीतिक उपदेश द्वादश सर्ग के श्लोक २२ से ५४ तक, पुनः श्लोक संख्या ७४ एवं ७५ में दृष्टिगत होते हैं । रावण के प्रति विभीषण का उपदेश कथन ही इस महाकाव्य के राजनीतिक स्वरूप का आधारभूत स्तम्भ है ।

विभीषण का रावण के प्रति राजनीतिगत उपदेश कि – "जो जयेच्छुक राजा वृद्धि, क्षय एवं स्थान इन सबों में प्राप्त अपनी तथा शत्रु की वृत्ति निरन्तर विचार करके सन्धि प्रस्ताव उचित मानता है, निःसंदेह उसकी चंचला राजलक्ष्मी उसके पास सदा विद्यमान रहती है[४] –

"वृद्धिक्षयस्थानगतामजस्त्रं वृत्तिं जिगीषुः प्रसमीक्षमाणः ।
घटेत सन्ध्यादिषु यो गुणेषु, लक्ष्मीर्न तं मुञ्चति चञ्चलाऽपि ।।"

---

१. भट्टिकाव्य ६/१००

२. वही ८/१२८

३. वही ८/११३

४. वही १२/२६

नीति भ्रष्ट एवं अजितेन्द्रिय तथा मदादि छः अन्तः स्थित शत्रुओं से समन्वित शत्रु वृत्ति उपेक्षा के योग्य होती है। ऐसी अप्रीतिजनक वृद्धि समूल नाश करने वाली हो जाती है[१] –

"उपेक्षणीयैव परस्य वृद्धिः प्रनष्टनीतेरजितेन्द्रियस्य।
मदाऽदियुक्तस्य विरागहेतुः समूलघातं विनिहन्ति याऽन्ते ।।"

महाकवि भट्टि ने राजनीति के विषय में छः नीतियों को आवश्यक मानकर उसका कथन विभीषण के माध्यम से रावण के प्रति किया है। सन्धि, विग्रह, आसन, प्रयाण, समाश्रय एवं द्वैधिभावप्रकार ये ६ राजनीतियां राजा के लिए परम अपेक्षित हैं। अतः प्रजानुरक्त, फलप्राप्ति को अभिष्ट मानने वाले, स्वयं के क्षयकारक, कामादि ६ शत्रुओं को जीतने वाले विद्वान्, विजय की इच्छा वाले राजा को सन्धि स्वीकार करके शत्रु की उपेक्षा करनी चाहिए। यथा[२] –

"जनाऽनुरागेण युतोऽवसाद फलाऽनुबन्धः सुधियाऽऽत्मनोऽपि।
उपेक्षणीयोऽभ्युपगम्य सन्धिं कामाऽऽदिषड्वर्गजिताऽधिपेन ।।"

'विग्रह' का राजनीतिशास्त्र में बड़ा महत्त्व है। 'कौटिल्य' के राजनीति ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में विग्रह नीति के अन्तर्गत 'उपनिषत्' प्रयोग विस्तार से मिलता है।[३] भट्टिकाव्य में भी महाकवि ने 'विग्रह नीति' के प्रसंग में अपने शत्रु को विषादि–दान से मारने का वर्णन करते हुए 'उपनिषत् प्रयोग' के नाम से अभिहीत किया है[४]–

"सन्धौ स्थितो वा जनयेत्स्ववृद्धिं हन्यात् परं वोपनिषत्प्रयोगैः।
आश्रावयेदस्य जनं पैरवी विग्राह्य कुर्यादवहीनसन्धिम् ।।"

राजनीतिक उपदेश के परिप्रेक्ष्य में कवि रावण के प्रति विभीषण के कथन का उल्लेख करते हुए कहता है कि आपके शत्रुभूत श्रीराम अपनी पत्नी सीता के अपहरण से संतप्त दिखाई देते हैं और आप हम अक्षकुमारादि बन्धुओं के मर जाने से सन्तप्त हैं। अतः जिस प्रकार सन्तप्त लोहे की सन्तप्त लोहे के साथ सन्धि होती है, उसी प्रकार आप भी शत्रु राम के साथ संधिप्रस्ताव करके उनकी सीता को छोड़ दें[५] –

"रामोऽपि दाराऽऽहरणेन् तप्तो, वयं हतैर्बन्धुभिरात्मतुल्यैः।
तप्तस्य तप्तेन यथाऽऽयसो नः सन्धिः परेणाऽस्तुः विमुञ्च सीताम् ।।"

---

१. भट्टिकाव्य १२/२७

२. वही १२/२८

३. अर्थशास्त्र, कौटिल्य, सम्पादन रामतेजपाण्डेय, शास्त्री काशी सं० २०१६, १४, १ – ४, ६८३ से ७०२ तक

४. वही १२/३०

५. वही, १२/४०

अन्त में महाकवि भट्टि नीतियों में सर्वोत्तम नीति 'सन्धि' को बतलाते हुए अन्य नीतियों को नगण्य सिद्ध करते हैं[1] –

"संधानमेवाऽस्तु परेण तस्मान्नाऽन्योऽभ्युपायोऽस्ति निरुप्यमाणः ।
नूनं विसन्धौ त्वयि सर्वमेतन्नेष्यन्ति नाशं कपयोऽचिरेण ।।"

रावण के मातामह माल्यवान् ने भी विभीषण के ही राजनीतिक वचनों को औचित्यपूर्ण मानते हुए उसे आवश्यक रूप से करने के लिए रावण को प्रेरित किया[2] –

"प्रमादवास्तवं क्षतधर्मवर्त्मा गतो मुनीनामपि शत्रुभावम् ।
कुलस्य शान्तिं बहु मन्यसे चेत् कुरूष्व राजेन्द्र, विभीषणोक्तम् ।।"

महाकवि भट्टि ने राजनीतिशास्त्र के लिए चाणक्य (कौटिल्य) के राजनीतिक ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' का ही नाम स्मरण किया है । उन्होंने बहुवचनान्त रूप 'अर्थशास्त्राणि' का प्रयोग कर अनेक अर्थशास्त्र ग्रन्थों की सूचना दी है । अतिकाय के पराक्रम वर्णन में विभीषण ने राम से कहा है कि "इसने अर्थशास्त्र पढ़े हैं यह यमराज को पराजित करने वाला है देवताओं से भी युद्ध में विजयी हुआ है । इसे भय नहीं होता"[3] –

"अध्यगीष्टाऽर्थशास्त्राणि, यमस्याऽह्वोष्ट विक्रमम् ।
देवाऽऽहवेष्वदीपिष्ट नाऽजनिष्टाऽस्य साध्वसम् ।।"

पुरूषोत्तम श्रीराम चन्द्र ने रावण का वध कर उनके राजसिंहासन पर धर्नात्मा विभीषण का राज्याभिषेक किया तत्पश्चात् उन्हें राजोचित राजनीतिक उपदेश भी दिया ये उपदेश राजनीतिशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्त रूप में ही दिए गए हैं । यह राजनीतिगत उपदेश १९वें सर्ग के श्लोक संख्या २४ से ३० तक वर्णित हैं । इस राजनीतिक कथन के समापन में राम के माध्यम से कवि कहता है कि "सुनीति प्रवीण चारजनों से शत्रु वृत्ति का ज्ञान करने में उद्यत होना, श्रेष्ठ जयेच्छुराजा के लिए मुख्य राजनीति के कर्तव्य बतलाये गये हैं[4] –

"संभुत्सीष्ठाः सुनयनयनैर् विद्विषामीहितानि ।।"

---

१. भट्टिकाव्य १२/५४

२. वही १२/६०

३. वही १५/८८

४. वही १९/३० अन्तिम चरण

धार्मिक दृष्टि से :–

१ .संस्कार :–

धार्मिक संस्कारों को भारतीय समाज में जीवन की शुद्धि एवं परिष्कार का प्रमुख साधन माना जाता है । इन संस्कारों का प्रभाव आजीवन चिर स्थायी रहता है । भट्टि ने जन्म एवं मृत्यु के समस्त संस्कारों का वर्णन किया है रामजन्मोत्सव के अवसर पर वशिष्ठ समस्त बाल ग्रंहों का निवारण कर ब्रह्मपूजनोपरान्त उनका जातकर्म संस्कार सम्पन्न करते हैं[१] –

"आचीर्द द्विजातोपरमाऽर्थविन्दानुदेजयान्भूतगणान्यषेधित् ।
विद्वानुपानेष्ट च तान् स्वकाले यतिर्वसिष्ठो यमिनां वरिष्ठः ।।"

भरत द्वारा पितृ ऋण को सुनकर राम पहले मृत पिता का पिण्डदान करते हैं[२] –

"चिरं रुदित्वा करुणं सशब्दं गोत्राभिधायं सरितं समेत्य ।
मध्ये जलाद्राघवलक्ष्मणाभ्यां प्रत्तं द्वयञ्जलमन्तिकेऽपाम् ।।"

सीता–वियोग से दुःखित होते हुए भी धर्मात्मा राम पितृ पक्ष में पिता को जलांजलि प्रदान करते हैं[३] –

"स्नानभ्यषिचताऽम्भोऽसौ रुदन्दयित्तया विना ।
तथाऽभ्यषिक्त वारीणि पितृभ्यः शोकमूर्च्छितः ।।"

भरत द्वारा दशरथ का, सीता–वियोगी राम द्वारा जटायु का, अनुज सुग्रीव द्वारा बालि का तथा विभीषण द्वारा रावण का अन्तिम संस्कार कवि ने सम्पन्न कराया है ।

२. यज्ञानुष्ठान् एवं अग्निपूजन :–

जीवन की धार्मिक क्रियाओं के साथ–साथ यज्ञ एवं अग्नि को विशेष स्थान दिया गया है । भट्टि के दशरथ विविध यज्ञों के कर्ता हैं । पुत्रयेष्टि यज्ञ कर्ता ऋष्यश्रृंग, प्रयाज, तथा अनुयाज आदि अंगयाग का अनुष्ठान एवं हवन करते हैं[४] –

"रक्षांसि वेदीं परितो निरास्थदङ्गान्ययाक्षीदमितः प्रधानम् ।

---

१. भट्टिकाव्य १/१५

२. वही ३/५०

३. वही ६/२३

४. वही १/१२

शेषाण्यहौषीत् सुतसम्पदे च, वरं वरेण्यो नृपतेरमार्गीत् ।।"

इन्द्र को यज्ञांश प्रदान करते हैं ।[१] राम स्वयं यज्ञीय आभिक्षा पुरोडाश एवं धृत की राक्षसों से रक्षा करते हैं ।[२]

"आमिक्षीयं दधिक्षीरं पुरोडाश्यं तथौषधम् ।
हविर्हैयङ्गवीनं न नाऽप्युपध्नन्ति राक्षसाः ।।"

भट्टि के राक्षस भी अग्नि होम करता है । इन्द्रजित् स्वयं ब्राह्मणों से अग्निहोम कराता है[३] –

"आशासत ततः शान्तिमस्नुरग्नीनहावयन् ।
विप्रानवाचयन् योधाः प्राकुर्वन् मङ्गलानि च ।।"

इन्द्रजित् निकुम्भिला यज्ञशाला में यज्ञ करता है[४] –

"मा स्म तिष्ठत तत्रस्थो वध्योऽसावहुताऽनलः ।
अस्त्रे ब्रह्मशिरस्युग्रे स्यन्दने चाऽनुपार्जिते ।।"

सीता–शुद्धि के समय अग्निदेव स्वयं सीता की शुद्धि एवं राम के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन करते हैं[५] –

"समुत्क्षिप्य ततो वह्निमैथिलीं राममुक्तवान् ।
काकुत्स्थ ! दयितां साध्वीं त्वमाशङ्किष्यथाः कथम् ।।"

३. तीर्थ माहात्म्य :–

भट्टि ने अपने काव्य में अपने काव्य में तीर्थ जलस्नान, तप एवं तपस्या का यत्र–तत्र सम्यक् निरूपण किया है । राज्याभिषेक से पूर्व दशरथ सेवकों को तीर्थजल लाने का आदेश देते हैं[६] –

"प्रास्थापयत्पूगकृतान्स्वपोषं पुष्टान्प्रयत्नाद् दृढगोत्रबन्धान् ।
सभर्मकुम्भान्पुरुषान्समन्तात् पत्काषिणस्तीर्थजलाऽर्थमाशु ।।"

---

१. भट्टिकाव्य ५/११
२. वही ५/१२
३. वही १७/१
४. वही १७/२६
५. वही २१/१
६. वही ३/४

अर्थात् महाराज दशरथ के एकत्र किए गए, अपने धन से परिपुष्ट किए गए, कठोर शरीर सन्धियों वाले तथा सोने के घड़े लिये हुए पैदल चलने वाले, बहुत से पुरुषों को तीर्थों का जल लाने हेतु, सब दिशाओं में उत्साह से भेजा । राम को वापस लाने हेतु जाते समय भरत अनुचरों सहित पवित्र गंगा जल में स्नान करते हैं[१] –

"सम्प्राप्य तीरं तमसाऽऽपगाया गङ्गाम्बुसम्पर्कविशुद्धिभाजः ।
विगाहितुं यामुनमम्बु पुण्यं ययुनिरुद्धश्रमवृत्तमस्ते ।।"

राक्षस भी शिर में पवित्र जल धारण करते हैं[२] –

"योद्धारोऽबिभरुः शान्त्यै साऽक्षतं वारि मूर्धभिः ।
रत्नानि चाऽददुर्गाश्च सनावाञ्छन्नथाऽशिषः ।।"

४. व्रतोपासना :–

व्रत और उपासना पुरातन आर्य संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं । अभीष्ट सिद्धि एवं आत्म–सिद्धि हेतु विशेष अवसरों पर व्रत एवं उपासना की जाती है ।

भट्टि ने अवसरानुकूल हिन्दू नियमों, अनुष्ठानों, जप–तप, पूजा, व्रत, उपासना आदि कार्यों का सम्यक् निरूपण किया है । भरद्वाज मुनि मौनव्रती, भूमिशायी, योगाभ्यासी तथा योगबल से सम्पन्न हैं[३] –

"वाचयमान् स्थण्डिलशायिनश्च युयुक्षमाणाननिशं मुमुक्षून् ।
अध्यापयन्तं विनयात्प्रेणमुः पद्गा भरद्वाजमुनि सशिष्यम् ।।"

सीताहरण हेतु पंचवटी में प्रविष्ट रावण भी तीर्थ जल से पवित्र, जपशील, अक्षमाली एवं परिव्राजक व्रत धारण किए हुए है[४] –

"आधीयन्नात्मविद्विधां धारयन्मस्करिव्रतम् ।
वदन्बह्वगुंलिस्फोटं भ्रूक्षेपं च विलोकयन् ।।"

वनवासिनी शबरी भी सन्ध्या वन्दनकारिणी, मेखला धारिणी, तपस्विनी है, जो धर्म–कार्य में लगी हुई और सात्त्विक फलों का आहार करने वाली है[५] –

---

१. भट्टिकाव्य ३/३६

२. वही १७/५३

३. वही ३/४१

४. वही ५/६३

५. वही ६/६३

धर्मकृत्यरतां नित्यमवृष्यफलभोजनाम् ।
दृष्ट्वा तानमुचद्रामो युग्यायात इव श्रमम् ।।"

राक्षसगण भी जप–तप, पूजादि धार्मिक क्रियाओं के सम्पादक हैं । प्रहस्त, कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि धार्मिक कर्मों एवं पवित्र अनुष्ठानों के कर्ता हैं ।

५. देववाद :–

भट्टि वैदिक साहित्य एवं संस्कृति निर्माता धार्मिक वृत्ति से ओत–प्रोत थे । उनका साहित्य धार्मिक उद्देश्य से प्रेरित था । उनके देवता भौतिक शक्ति के रूप में सर्वोच्च सत्ता का प्रतिनिधित्व करते हैं । प्रकृति पूजा वैदिक संस्कृति का आदि स्रोत है । प्राकृतिक शक्तियों से भयभीत मानव ने प्रकृति में दैवीशक्ति की कल्पना की, जिसके फलस्वरूप समाज में **बहुदेववाद** का प्रारम्भ हुआ ।

पौराणिककाल में यह बहुदेववाद **एकेश्वरवाद** में बदल गया । एकत्वभावना से प्रेरित ऋषियों ने एक सर्वोपरि एवं सर्वनियामक सत्ता की कल्पना करके **एकेश्वरवाद** का सूत्रपात किया ।

इस प्रकार धर्मनिष्ठ प्रकृतिपूजा आर्यों ने इन्द्र आदि **वैदिक** तथा ब्रह्मादि **पौराणिक देवों** की कल्पना कर, उन्हें अति मानवीय शक्तियों एवं गुणों से सम्पन्न कर, उनकी पूजा का विधान किया एवं अपनी इष्ट सिद्धि हेतु उनके अर्चन, तर्पण एवं पूजन का प्रारम्भ किया ।

कविवर भट्टि धार्मिक प्रकृति के कवि हैं । उन्होंने काव्य में स्थान–स्थान पर वैदिक एवं पौराणिक देवताओं के पूजन–अर्चन तथा वन्दन का विधान किया है ।

(क) वैदिक देवता :–

वैदिक देवताओं में कवि ने देवराज **इन्द्र** को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है । कवि के महाराज दशरथ इन्द्र के मित्र एवं देवपूजक हैं[1] –

"वसूनि तोयंधनवद्व्यकारीत् सहाऽऽसनं गोत्रभिदाऽध्यवासीत् ।।"

दशरथ की अयोध्या इन्द्रपूरी अमरावती के तुल्य है ।[2] रावण को भी इन्द्र ने एरावत समर्पित कर दिया ।[3]

---

१. भट्टिकाव्य १/३

२. वही १/५

३. वही ५/२६

रावण इन्द्र का परम शत्रु और जेता है ।[1]

वैदिक देवताओं में सूर्य, वरूण, अश्विनी कुमार, बृहष्पति तथा यमराज आदि देवताओं का यत्र–तत्र कार्यानुरूप चित्रण है ।

(ख) पौराणिक देवता :–

विष्णु :–

महाकवि भट्टि के राम विष्णु के अवतार हैं । उन्होंने वामन तथा कच्छप रूप धारण किया था ।[2]

"बलिर्बबन्धे जलधिर्ममन्थे जह्रेऽमृतं दैत्यकुलं विजिग्ये ।
कल्पाऽन्तदुःस्था वसुधा तथोहे येनैष भारोऽति गुरुर्न तस्या ।।"

अर्थात् हे रामचन्द्र ! आपने बलि को वामन रूप में बाँधा, कच्छप रूप में समुद्र का मन्थन किया, अमृत का मोहिनी रूप में हरण किया, दैत्य वंश को जीता, प्रलय काल में हिरण्याक्ष द्वारा हरण की गयी दुःखी वसुधा का उद्धार किया, ऐसे आसाधारण कार्य करने वाले आपके लिए यह यज्ञ रक्षण रूपी कार्य बड़ा भार नहीं हैं ।

सीता के शब्दों में राम साक्षात् नारायण तथा स्थाणु (शिव) के विजेता हैं ।

ब्रह्मा :–

विष्णु की निर्मात्री शक्ति को ब्रह्म रूप दिया गया है । वे इस सृष्टि के निर्माता हैं । ब्रह्म ने दक्षता पूर्वक रामभूमि अयोध्या का निर्माण किया[3] –

"निर्माणदक्षस्य समीहितेषु सीमेव पद्माऽऽसनकौशलस्य ।
ऊर्ध्वस्फुरद्रत्नगभस्तिभिर्या स्थिताऽवहस्येव पुरं मघोनः ।।"

अर्थात् सृष्टि रचना में निपुण ब्रह्मा जी की चतुराई की प्रतीक स्वरूप अभिष्टरचिदपदार्थों सीमा की तरह जो अयोध्यापूरी आकाश की ओर निकलने वाली रत्नों की किरणों से मानों अमरावती को भी तिरस्कृत कर बैठी हो, ऐसी सुन्दर नगरी अयोध्या में महाराज दशरथ रहते थे ।

---

१. भट्टिकाव्य ६/५२

२. वही २/३६

३. वही १/६

कमलासन् ब्रह्मा स्वयं उपस्थित होकर सीता जी की शुद्धि प्रमाणित करते हैं[१] –

"आनन्दयिष्यदागम्य कथं त्वामरविन्दसत् ।
राजेन्द ! विश्वसूर्धाता चारित्रे सीतया क्षत्ते ।।"

शिव :–

महादेव शंकर को कवि ने विविध नामों एवं गुणों के आधान रूप में निरूपित किया हैं । उनके दशरथ त्र्यम्बक् (शिव) के एकमात्र उपासक हैं[२] –

"न त्र्यम्बकादन्यमुपास्थिताऽसौ यशांसि सर्वेषु भृतां निरास्थत् ।।"

राम स्वयं स्थाणु (शिव) के जेता हैं । अग्नि संशोधन के समय महादेव स्वयं उपस्थित होकर सीता की शुद्धि को प्रमाणित करते हैं एवं उन्हें नारायण स्वरूप मानते हैं[३] –

"प्रणमन्तं ततो राममुक्तवानिति शङ्करः ।
किं नारायणमात्मनं नाऽभोत्स्यत भवानजम् ।।"

सांस्कृतिक :–

महर्षि वाल्मीकि भारतीय संस्कृति के महान गायक एवं उनके महाकाव्य रामायण के नायक महामानव राम भारतीय वैदिक संस्कृति के प्रतीक हैं । भारतीय संस्कृति का चित्र फलक विशाल एवं विविधता से परिपूर्ण है । उनकी अनेकता में ही एकता के दिग्दर्शन होते हैं । साहित्य समाज का दर्पण एवं व्यक्ति समाज का अंग है । परिवेशगत चेतना एवं भावना की अभिव्यक्ति ही उसका स्वाभाविक धर्म है । अतः किसी भी कलाकृति में तत्कालीन समाज का निरूपण अवश्यम्भावी होता है ।

महाकवि भट्टि पौराणिक कालीन भारत की महान् विभूति है । उन्होंने रामायण के अनुकरण पर अपनी प्रतिभा और विद्वता द्वारा चमत्कार उत्पादन का प्रयास किया है । उनके काव्य में भारतीय समाज की सांस्कृति चेतना के पर्याप्त प्रसून विकीर्ण है ।

हम यहाँ प्रमुख सांस्कृतिक तत्त्वों के आलोक में भट्टिकाव्य का अवलोकन करने का प्रयास करेंगे –

---

१. भट्टिकाव्य २१/१२

२. वही १/३

३. वही २१/१६

१. वर्णाश्रम व्यवस्था :–

वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति एवं समाज की मेरुदण्ड है । बचपन में विद्याध्ययन, यौवन में सुखभोग, वार्धक्य में मुनिवृत्ति एवं अन्त में योग द्वारा शरीर त्याग अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास ही आर्य जाति की **आश्रम व्यवस्था** है । इस व्यवस्था के सम्यक् पालन से ही सामाजिक सुख–शान्ति एवं लौकिक तथा पारलौकिक कल्याण सम्भव है ।

भट्टि के राम की ऋषि–मुनियों एवं आश्रमों में पूर्णनिष्ठा है । वनवास काल में शरभंग, सूतीक्ष्ण, भरद्वाज आदि मुनि आश्रमों में जाकर उनका सत्कार करते हैं एवं स्वयं सत्कृत होते हैं । जब राम विश्वामित्र के यज्ञ रक्षण हेतु जाते हैं तब आश्रमवासी ऋषिगण उनको अपनी यज्ञ रक्षा का भार समर्पित करते हैं[१] –

"दैत्याऽभिभूतस्य युवामवोढं मग्नस्य दोर्भिर्भुवनस्य भारम् ।
हवींषि सम्प्रत्यपि रक्षतं तौ तपोधनैरित्थमभाषिषाताम् ।।"

अर्थात् 'हे राजकुमारों ! आप दोनों ने युगान्तर में पहले भी दैत्यों से पीड़ित निराश्रय भूवन के संरक्षण का भार अपने हाथों से ढोया था, अतः आज भी हवनीय पदार्थों की रक्षा करें', इस प्रकार तपोवन के ऋषियों ने उन दोनों राम और लक्ष्मण से कहा ।

महर्षि विश्वामित्र क्षात्रतेज एवं ब्राह्मण तेज को एकदूसरे का रक्षक एवं पूरक मानते हुए कहते हैं[२] –

"मया त्वमाप्याः शरणं भवेयुः वयं त्वायाऽऽप्याप्स्महि धर्मवृद्धयै ।
क्षात्रं द्विजत्वं च परस्परार्थं शङ्कां कृथा मा प्रहिणु स्वसूनुम् ।।"

अर्थात् हे राजन् ! यज्ञ आदि कर्मों में विघ्न पड़ने पर धर्मवृद्धि के लिए तुम्हारी शरण में आते हैं, और उसी प्रकार तुम भी हमारी शरण में आते हों । क्षत्रिय तेज और ब्रह्म तेज परस्पर में उपकार के लिए हैं, अतः शंका मत करो, अपने पुत्र को मेरे साथ भेज दें ।

२. गो–ब्राह्मण चित्रण :–

भारतीय संस्कृति और समाज में गो–ब्राह्मण का विशेष महत्व तथा उच्च्य स्थान रहा है । गायें राष्ट्रीय सम्पत्ति एवं समृद्धि की प्रतीक तथा ब्राह्मण राष्ट्र के कर्णधार होते हैं ।

भट्टि के महामुनि वशिष्ठ भी रामजन्म के समय वेदज्ञ ब्राह्मणों की पूजा करते हैं । महापुरुष राम धर्म–कर्म

---

१. भट्टिकाव्य २/२७

२. वही १/२१

के रक्षक एवं ब्राह्मणों के पूजक हैं ।[1]

वनवासी राम का प्रमुख कार्य ब्राह्मणों की रक्षा एवं गो–सेवा करना रहा है ।[2] –

"परेद्यव्यद्य पूर्वेद्युरन्येद्युश्चापि चिन्तयन् ।
वृद्धिक्षयौ मुनीन्द्राणां प्रियम् भावुकतामगात् ।।
आतिष्ठद्गु जपन्सन्ध्यां प्रक्रान्तामायातीगवम् ।
प्रातस्तरां पतत्रिभ्यः प्रबुद्धः प्रणमन् रविम् ।।"

रामचन्द्र जी पक्षियों से पहले उठकर गायों के गोचरभूमि से दोहन के लिए गोठे में आने के समय से लेकर दोहनकालपर्यन्त सन्ध्या में गायत्री जप कर सूर्योपस्थान करते हुए आगामी दिन में तथा अन्य दिन में भी ऋषियों की लाभ–हानि का विचार करते हुए उनके प्रेमपात्र हो गयें ।

भट्टिकाव्य के राक्षस भी ब्राह्मण सेवक हैं । वे उनसे यज्ञंकार्य सम्पन्न कराते हैं । युद्धप्रस्थान से पूर्व इन्द्रजित् स्वयं ब्राह्मणों से होम एवं स्वस्तिवाचन् कराता है[3] –

"आशासत ततः शान्तिमस्नुरग्नीनहावयन् ।
विप्रानवाचयन् योधाः प्राकुर्वन् मङ्गलानि च ।।"

राम वनवास काल में गो–चरण योग्य भूमि एवं ब्राह्मणों की धार्मिक क्रिया सम्पादन में सहयोग करते हैं ।

३. तपोवन वर्णन :–

तपोवन भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत हैं । इन्हें प्रारम्भ से ही विद्यापीठ के रूप में मान्यता प्राप्त है । तपोवनवासी ऋषिमुनि धर्म–कर्म के रक्षक रहे हैं ।

भट्टि के राम यज्ञ रक्षा के समय जब वन में प्रवेश करते हैं, तब उन्हें दिव्यमुनि आश्रमों के दर्शन होते हैं, जहाँ मुनियों के प्रभाव से हिंसक–मृग पारस्परिक वैर को त्याग कर प्रेमपूर्वक निवास करते हैं[4] –

"क्षुद्रान्न जक्षुर्हरिणान्मृगेन्द्रा विशश्वसे पक्षिगणैः समन्तात् ।
नन्नम्यमानाः फलादित्यसेव चकाशिरे तत्र लता विलोलाः ।।"

---

१. भट्टिकाव्य २/३५
२. वही ४/१३ – १४
३. वही १७/१
४. वही २/२५

उस (विश्वामित्र के) तपोवन में सिंह अपने से छोटे मृगादि पशुओं को नहीं खाते हैं । पक्षीगण सभी जगहों पर विश्वासपूर्वक रहते हैं । चंचल लतायें फल देने की इच्छा से मानो बहुत अवनत होकर शोभा पा रही हैं ।

राम को वन में वापस लाने हेतु भरत जब पुरजनों सहित वन जाते समय भरद्वाज आश्रम में जाते हैं । तब वहाँ के शान्त, शिक्षापूर्ण एवं जनसेवा से युक्त वातावरण को देखकर मुग्ध हो जाते हैं । त्यागी मुनि उनका विधिवत् आतिथ्य सत्कार करते हैं । उनके लिए नृत्य गान एवं खान–पान की व्यवस्था करते हैं ।[1]

वनवास काल में भी राम वेदज्ञ ब्राह्मणों से युक्त मुनि आश्रमों में निवास करते हैं[2] –

"व्रातीनव्यालदीप्राऽस्त्रः सुत्वनः परिपूजयन् ।
पर्षद्वलान्महाब्रह्मैराट नैकटिकाश्रमान् ।।"

४. आतिथ्य सत्कार :–

आतिथ्य सत्कार भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग है । 'अतिथि देवो भव' हमारा पवित्र कर्तव्य है ।

महाकवि भट्टि का मानस भारतीय संस्कृति की वैदिक सरिता धारा से अभिसिप्त अलंकार की मूर्ति है । उनकी भावनायें अतिथि सत्कार से ओत–प्रोत हैं । वे रामायण के आतिथ्य परक स्थलों का चित्रण नहीं भूलते हैं । भट्टि के वशिष्ठ रामजन्म के समय अतिथि ब्राह्मणों का सत्कार करते हैं[3] –

"आर्चीद् द्विजातोन्परमाऽर्थविन्दानुदेजयान्भूतगणान्न्यषेधीत् ।
विद्वानुपानेष्ट च तान् स्वकाले यतिर्वसिष्ठो यमिनां वरिष्ठः ।।"

राजा दशरथ के समीप राम को वन ले जाने हेतु जब विश्वामित्र आते हैं तब दशरथ उनका मधुपर्क से आतिथ्य सत्कार करते हैं[4] –

"ततोऽभ्यगाद् गाधिसुतः क्षितीन्द्रं रक्षोभिरभ्याहतकर्मवृत्तिः ।
रामं वरीतुं परिरक्षणार्थं राजाऽऽर्जिहत्तं मधुपर्कपाणिः ।।"

---

१. भट्टिकाव्य ३/४१ – ४५
२. वही ४/१२
३. वही १/१५
४. वही १/१७

राम–विवाह के समय जब दशरथ जनक पुर पहुँचते हैं तो राजर्षि जनक कुलोचित सत्कार एवं पूजन करते हैं[१] –

"वृन्दिष्ठमार्चीद्वसुधाधिपानां तं प्रेष्ठमेतं गुरुवद्गरिष्ठम् ।
सदृङ्गमहान्तं सुकृताऽधिवासं बहिष्ठकीर्तिर्यशसां वरिष्ठम् ।।"

भरत पुरजनों के साथ जब राम को वापस लाने वन जाते हैं तब महर्षि भरद्वाज वस्त्र, भोजन, शयनादि द्वारा उनका भव्य स्वागत करते हैं[२] –

"वस्त्राऽन्नपानं शयनं च नाना कृत्वाऽवकाशे रुचिरं प्रक्लृप्तम् ।
तान्प्रीतिमानाह मुनिस्ततः स्म निबद्ध्वमाद्ध्वं पिबताऽत्तशेध्वम् ।।"

रावण जब तपस्वी रूप में पंचवटी में प्रवेश करता है तब सीता अर्घ्य द्वारा उनका सत्कार करती हैं[३] –

"ओजायमाना तस्याऽर्घ्यं प्रणीय जनकाऽऽत्मजा ।
उवाच दशमूर्धानं साऽऽदरा गद्गदं वचः ।।"

इसके अतिरिक्त शबरी द्वारा राम का जल, मधुर्पकादि पूजन सामग्री से पूजा का वर्णन है[४] –

"अथाऽर्घ्यं मधुपर्काद्यमुपनीयाऽऽदरादसौ ।
अर्चयित्वा फलैरर्च्यौ सर्वत्राऽऽख्यदनामयम् ।।"

अष्टम सर्ग में मैनाकपर्वत द्वारा हनुमान् का अतिथ्य सत्कार किया जाता है[५] –

"फलान्यादत्स्व चित्राणि परिकीडस्व सानुषु ।
साध्वनुक्रीडमानानि पश्य वृन्दानि पक्षिणाम् ।।
क्षणं भद्राऽवतिष्ठस्व ततः प्रस्थास्यसे पुनः ।
न तत् संस्थास्यते कार्यं दक्षेणोरीकृतं त्वया ।।"

अनेक प्रकार के फलों को ग्रहण कीजिए । समतल भूमि में बिहार करें । सुन्दरता से क्रीड़ा करते हुए इन पक्षियों के समूह को देखिए । हे कल्याणकारिन्! कुछ समय तक विश्राम करें, उसके पश्चात् फिर प्रस्थान

१. भट्टिकाव्य २/४५
२. वही ३/४४
३. वही ५/७६
४. वही ६/७१
५. वही ८/१० – ११

करियेगा । आलस्य रहित आपके द्वारा अंगीकृत यह (सीतान्वेषण रूपी) कार्य क्या सम्पन्न नहीं होगा ? (अर्थात् यह कार्य आपसे अवश्य पूरा होगा ।)

५. क्षात्र–कर्म :–

भारतीय वर्णाश्रम व्यवस्था में क्षात्रकर्म को विशेष महत्व दिया गया है । क्षत्रिय ही समाज का शासक होता है । उसका प्रमुख कार्य प्रजा रक्षण एवं अन्याय विरोध है, जिसकी पूर्ति हेतु उसे शस्त्रधारण करना होता है । भट्टिकाव्य के राम भी जब मारीच वैदिक धर्म विरोध तथा ब्राह्मण भक्षण को राक्षस धर्म बतलाता है । तब राम भी कहते हैं कि धर्मरक्षण हमारा कर्तव्य है इसलिए मैंने क्षत्रिय वृत्ति धारण की है [१] –

"धर्मोऽस्ति सत्यं तव राक्षसाऽयं मन्यो व्यतिस्ते तु ममाऽपि धर्मः ।
ब्रह्मद्विषस्ते प्रणिहन्मि येन राजन्यवृत्तिर्धृतकार्मुकेषुः ।।"

संगीतशास्त्र :–

महाकवि भट्टि ने संगीत एवं अन्यान्य उपयोगी ललित कलाओं का भी स्वज्ञान अभिव्यंजित किया है । गायन, वाद्य, स्वर, ताल, लय आदि के प्रभावोत्पादक दृश्य वर्णन इनकी संगीतप्रवीणता का अच्छा परिचय देते हैं । जय मंगल ने चार प्रकार के गीतों का कथन किया है – १. स्वरगत, २. पदगत, ३. लयगत तथा ४. अवधानगत । [२]

लंकागत प्रभात वर्णन में संगीतशास्त्र के ये स्वरूप बड़े मनोहारी ढंग से वर्णित हैं । प्रातः समय में लंका–ललनाओं ने राजमंदिरों में ताल द्वारा सम्पादित लय के मधुरता युक्त, अवधान के साथ षडज आदि स्वरों से रागों को निबद्ध कर सुबन्त, तिङन्त आदि पदसमूह से परिच्छिन्न अर्थ वाला मंगलमय गीत का गान किया [३] –

"तालेन सम्पादितसाम्यशोभं, शुभाऽवधानं स्वरबद्धरागम् ।
पदैर्गताऽर्थं नृपमन्दिरेषु प्रातर्जगुर्मङ्गलवत्तरुण्यः ।।"

भ्रमरों के संगीत श्रवण में दत्तचित्तमृगों को शिकारी द्वारा मारे जाने का वर्णन इस प्रकार है [४] –

"दत्तावधानं मधुलेहिगीतौ प्रशान्तचेष्टं हरिणं जिघांसुः ।

---

१. भट्टिकाव्यम् २/३५

२. भट्टिकाव्य ११/१६ व्याख्या भाग, व्याख्याकार पण्डित शेषराज शर्मा, शास्त्री

३. वही ११/१६

४. वही २/७

आकर्णयन्नुत्सुकहंसनादाँल्लक्ष्ये समाधिं न दधे मृगावित् ।।"

युद्ध के आरम्भ में संरम्भार्थ बजाये जाने वाले वाद्यों का विशेष रूप से महाकवि ने वर्णन किया है । जब राम कि सेना के आगमन की सूचना मिली, तब महापणव, वंशी, गुञ्जा, पटह, पेला, महाझल्लरी आदि वाद्यों के भयंकर शब्द से समन्वित, ढक्का और घण्टा के जोरदार शब्द से युक्त, युद्ध के क्लेश को सहन करने वाली शत्रु–सेना युद्ध के लिए उद्यत हो गयी [1] –

"गुरुपणववेणुगुञ्जाभेरीपेलोरुझल्लरीभीमरवम् ।
ढक्काघण्टातुमुलं सन्द्ध परषबलं रणायाससहम् ।।"

जिस प्रकार दीपक–नृत्य, पतंग नृत्य तथा कामदेव भस्म नृत्यादि लोक प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार 'दधिमन्थन नृत्य' भी लोक प्रसिद्ध है । तपोवन प्रयाण में राम द्वारा इस नृत्यदर्शन का मनोहारी वर्णन देखिए [2] –

"विवृत्तपार्श्वरुचिराङ्गहारं समुद्ववहञ्चारुनितम्बरम्यम् ।
आमन्द्रमन्थध्वनिदत्ततालं गोपाऽऽङ्गनानृत्यमनन्दयत्तम् ।।"

रावण के भवन में विद्यमान कामचेष्टा वाली दिव्य नारियां लीला, किलकिचिंत और विभ्रमादि नृत्य–स्वरूप के विधिज्ञान में कुशल थीं [3] –

"नित्यमुद्यच्छमानाभिः स्मरसंभोगकर्मसु ।
जानानाभिरलं लीलाकिलकिञ्चितविभ्रमान् ।।"

साहित्यदपर्णकार विश्वनाथ ने दश रूपकों के प्रसंग में विस्तार से लीला [4], किलकिंचित [5] तथा विभ्रम [6] के स्वरूपगत लक्षण को अपने ग्रन्थ में उल्लिखित किया है ।

जिस प्रकार एक नृत्याचार्य अपने शिष्यों को सुन्दर ढंग से चंचलता आदि अभिनय की शिक्षा देता है, ठीक उसी प्रकार भ्रमर ने भी लंका ललनाओं को नृत्य शिक्षा दी है । [7] यथा –

---

१. भट्टिकाव्य १३/४५

२. वही २/१६

३. वही ८/४७

४. अङ्गैर्वेषैरलङ्कारै प्रेसगभिर्वचनैरपि । प्रीतिप्रयोजितेलीला प्रियस्याऽनुकृतिं विदुः ।। –साहित्यदर्पण, ३/११४

५. स्मित् शुष्करुदितहसितत्रासक्रोधश्रमादीनाम् । साऽकर्थै किलकिंचितमभीष्टतमसङ्गमादिजाद्धर्षात् ।। वही ३/११८

६. त्वरया हर्षरागादेर्दयिताऽऽगमनादिषु । अस्थाने भूषणादीनां विन्यासोविभ्रमो मतः ।। – वही ३/१२१

७. भट्टिकाव्य, ११/३७

"विलोलतां चक्षुषि हस्तवेपथुं भ्रुवोर्विभङ्गं स्तनयुग्मवल्गितम् ।
विभूषणानां क्वणितं च षट्पदो गुरुर्यथा नृत्यविधौ समादधे ।।"

अर्थात् नृत्यविधि में गुरु के जैसे भ्रमर ने लंका की सुन्दरियों के सन्निधि में मँडराते हुए, उनके नेत्र में चपलता का, हाथों में कम्पन का, भौहों में कुटीलता का, पयोधरों में संचलनादि का, आभूषणों में शब्द का विधान किया ।

इस प्रकार महाकवि भट्टि ने **संगीतशास्त्र** की तीनों विधाओं नृत्य, गीत तथा वाद्य के शास्त्रीय रूप का वर्णन प्रस्तुत किया है ।

कामशास्त्र :–

महाकवि भट्टि ने कामशास्त्र के अन्तर्गत कामी–कामिनियों के परस्पर स्वाभाविक काम–क्रीडा का वर्णन प्रस्तुत किया है । यह शास्त्र काम क्षेत्र से सम्बन्धित नारी के प्रत्येक स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत करता है । "जिसके युगलस्तन अति कठोर हैं । नितम्ब भार विशाल है, कटिभाग पतला है, वह नारी 'न्यग्रोधपरिमण्डला' अर्थात् वटवृक्षवत् शारीरिक विशालता और क्षीणता वाली होती है ।" [1]

कवि ने शूर्पणखा के कथन में सीता को 'न्यग्रोधपरिमण्डला' नारी की गुणों से परिमण्डित बतलाया है [2] –

"योषिद्वृन्दारिका यस्य दयिता हंसगामिनी ।
दूर्वाकाण्डमिव श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला ।।"

शूर्पणखा ने उपर्युक्त श्लोक में सीता को **श्यामा नारी** कहा है । उसी प्रकार त्रिजटा के स्वप्न में भी सीता को **श्यामा** नारी कहकर ही वर्णित किया गया है [3] –

"अद्य सीता मया दृष्टा सूर्यं चन्द्रमसा सह ।
स्वप्ने स्पृशन्ती मध्येनतनुः श्यामा सुलोचना ।।"

महाकवि भट्टि ने राम के महेन्द्र पर्वत पर आरूढ़ होने के समय नायक रूप महेन्द्र एवं नायिका रूपी अम्बर का कामशास्त्र पर आधारित बड़ा ही श्रृंगारिक चित्रण प्रस्तुत किया है । [4] **यथा –**

---

१. स्तनौ सुकठिनौ यस्मानितम्बेचविशालता । मध्ये क्षीणा भवद्या सा न्यग्रोधपरिमण्डला ।।
– भट्टिकाव्य ५/१८ के व्याख्या भाग, व्याख्याकार डॉ० गोपाल शास्त्री ।

२. भट्टिकाव्य ५/१८

३. वही ८/१००

४. वही १०/४८

"ग्रहमणिरसनं दिवो नितम्बं
विपुलमनुत्तमलब्धकान्तियोगम् ।
च्युतधनवसनं मनोऽभिरामं
शिखरकरैर्मदनादिव स्पृशन्तम् ।।"

अर्थात् गृहरूपमेखला वाली जो रत्न जटित है, विस्तीर्ण एवं प्रशंसनीय कान्ति समन्वित, वस्त्रतुल्य, मेघों से रहित, मनोहारी अम्बर रूपी नायिका के नितम्ब को कामातुर व्यक्ति के समान महेन्द्र नायक हाथ–सदृश अपने शिखरों से छू रहा है, ऐसे महेन्द्र पर्वत पर राम आरूढ़ हुए ।

भट्टिकाव्य का एकादश सर्ग पूर्णतया कामशास्त्र विषयक वर्णनों से पूर्ण है । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

प्रेमलीला में इच्छाविच्छेद कहाँ हो पाता है प्रिया को रात्रि–प्रहर में गाढ आलिङ्गनपाश में आबद्ध करता हुआ भी लंकागत कामीजन प्रभात न होने पर भी सन्तोष न प्राप्त कर सका[1] –

"वक्षः स्तनाभ्यां मुखमाननेन, गात्राणि गात्रैर्घटयन्नमन्दम् ।
स्मराऽऽतुरो नैव तुतोष लोकः पर्याप्तता प्रेम्णि कुलो विरुद्धा ।।"

उपमा अलंकार से सुशोभित कामशास्त्र का यह वर्णन देखिए[2] –

"गुरुर्दधाना परुषत्वमन्या, कान्ताऽपि कान्तेन्दुकाराऽभिमृष्टा ।
प्रहलादिता चन्द्रशिलेव तूर्णं, क्षोभात् स्रवत्स्वेदजला बभूव ।।"

अर्थात् धैर्ययुक्त, अतएव कठोरता को धारण करने वाली दूसरी भी चन्द्र के सदृश प्रिय के हाथ से स्पर्श किए जाने पर आनन्दमग्न होती हुई चित्त के विकार से चन्द्रकान्त मणि की तरह शीघ्र बहने वाले स्वेद जल से युक्त हो गयी ।

समागमकाल में अज्ञात रूप से दन्तजनित घावों से प्रातः काल में जाने गये समागमशील जन (स्त्रीजन और पुरुषजन) ने अतिशय अनुराग से परस्पर में एक दूसरे के अपराध की आशङ्का की[3] –

"क्षतैरसंचेतितदन्तलब्धैः संभोगकालेऽवगतैः प्रभाते ।
अशङ्कताऽन्योन्यकृतं व्यलीकं वियोगबाह्योऽपि जनोऽतिरागात् ।।"

---

१. भट्टिकाव्य ११/११

२. वही ११/१५

३. वही ११/२५

काम से आकुल मनुष्य प्रेम की उत्कृष्ट अवस्था में प्राप्त होने पर ज्ञानशून्य होता हुआ मूर्खता पूर्ण किये गए अपने से अनुभूत भी किये नखक्षत, दन्तक्षत आदि विषयों का स्मरण नहीं करता [१] –

"गतेऽतिभूमिं प्रणये प्रयुक्तानबुद्धिपूर्वं परिलुप्तसंज्ञः ।
आत्माऽनुभूतानपि नोपचारान् स्मराऽऽतुरः संस्मरति स्म लोकः ।।"

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य में **कामशास्त्र** के विषयों का बहुत ही मनोहारी चित्रण किया है ।

नीतिशास्त्र :–

भट्टिकाव्य में **नीतिशास्त्र** परक विषयों की बहुलता है । प्रायः सभी सर्गों में नीतिकथन वर्णित है । कतिपय भट्टिकाव्यगत नीतिस्थलों का वर्णन प्रस्तुत है ।

भर्तृहरि ने कहा – आपत्ति में धैर्य, सम्पति में क्षमाशीलता, सभा में वाक्पटुता, युद्ध में पराक्रम, कीर्ति में अभिरूचि, शास्त्र में लगन, ये सब निश्चय ही महापुरुषों के स्वभाव होते हैं । [२]

भट्टि ने इसी ही **नीति** का वर्णन राम के माध्यम से किया है । राम वनगमन करते समय धैर्यपूर्वक कहते हैं – "हे पुरवासियों ! आपलोग वापस जाए, पिताजी को शोकमुक्त करें और भरत को हमसे भिन्न न मानकर सहयोग करें ।" [३]

"पौरा निवर्तध्वमिति न्यगादीत् तातस्य शोकाऽपनुदा भवेत् ।
मा दर्शताऽन्यं भरतं च मत्तो निवर्तयेत्याह रथ स्म सूतम् ।।"

बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी कार्य सिद्धि में ध्यान रखें । कार्य विनष्ट होना तो उसकी मूर्खता है । [४] अतः भट्टि के राम भी स्वकार्य–सिद्धि हेतु प्रातः काल में आवश्यक कार्यो का निमित बतलाकर उठते हुए वहाँ से प्रयाण करते हैं [५] –

---

१. भट्टिकाव्य ११/२६

२. विपदि धैर्यमथाभ्युदयेक्षमा, सदसि वाक्पटुतायुधिविक्रमः ।
यशसि प्राभिरुचिंर्व्यसन श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदहिमहात्मनाम् ।। – भर्तृहरि, नीतिशतक ६.३

३. भट्टिकाव्य ३/१५

४. "स्वकार्यसाधयेद्धीमान् कार्यध्वंशोहिमूर्खता" वही – ३/१६ व्याख्याभाग, व्याख्याकार डॉ० श्री गोपाल शास्त्री

५. भट्टिकाव्य ३/१६

"ज्ञात्वेङ्गितैगत्विरतां जनानामेकां शयित्वा रजनीं सपौरः ।
रक्षन्वनेवासकृतादभयात्तान् प्रालश्छलेनाऽपजगाम रामः ।।"

उत्तम प्रकृति के लोग विघ्न बाधाओं से बार–बार प्रताणित होने पर भी अपने कार्य में बाधा नहीं आने देते । साहस का परिचय देकर जीवित रहते हैं ।[1] राम भी अतिशय दुःख से दुःखित होने पर भी धर्मयुक्त क्रियाओं से विमुख नहीं होते । निश्चय ही महापुरुषों की क्रियाओं का विपत्ति की स्थिति में कहीं लोप नहीं होता ।[2]–

"तथाऽऽर्तोऽपि क्रियां धर्म्यां स कालेः नाऽमुचत् क्वचित् ।
महतां हि क्रिया नित्या छिद्रे नैवाऽवसीदति ।।"

नीतिवान् हनुमान् का कथन है कि मायावी रावण ने कुबेर से युद्ध कर उसका पुष्पक विमान ले लिया । देवताओं से भी युद्ध करने वाले, सम्पत्ति से गर्वित रावण को मैं देखकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ – "सम्पत्ति का आधिक्य सभी को असन्मार्ग में प्रवृत कर देता है ।"[3] –

"अहृत धनेश्वरस्य युधि यः समेतनायो धनं,
तमहमितो विलोक्य विबुधैः कृतोत्तमाऽऽयोधनम् ।
विभवमदेन निह्वतह्रायाऽतिमात्रसंपन्नकं
व्यथयति सत्पथादधिगताऽथवेह संपन्न कम् ।।"

शत्रुपक्ष को जिस कार्य के करने से कष्टानुभव हो नीतिशास्त्र में वही प्रतिपक्षी का कर्तव्य माना गया है । इसी कथन का स्मरण कर मेघनाद तलवार से मायासीता का शिर धड़ से अलग कर देता है[4] –

"पीडाकरममित्राणां कर्त्तव्यमिति शक्रजित् ।
अब्रवीत् खड्गकृष्टश्च तस्या मूर्धानमच्छिनत् ।।"

अन्यान्य शास्त्र :–

महाकवि भट्टि ने अपने काव्य में अन्यान्य शास्त्रों का भी वर्णन किया है –

मनोविज्ञान :–

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि पतिव्रता स्त्री अपने पति का सम्पर्क दूसरी स्त्री के साथ नहीं देख सकती ।

---

१. विघ्नैः पुनः पुनरपिप्रतिहन्यमानाः । प्रारभ्य चोत्तमजना नपरित्यजन्ति ।। – नीतिशतक २७, परार्द्ध
२. भट्टिकाव्य ६/२४
३. वही १०/३७
४. वही १७/२२

यही मनोवैज्ञानिक चित्रण कविवर भट्टि ने प्रातः कालीन वायु से प्रकम्पित पद्मिनी के माध्यम से पतिरूप भ्रमर के प्रति किया है –

"प्रभातवाताहतिविकम्पिताऽऽकृतिः, कुमुद्वतीरेणुपिशङ्गविग्रहम् ।
निरास भृङ्ग कुपितेव पद्मिनी, न मानिनी संसहतेऽन्यसङ्गमम् ।।" [१]

अपने रक्त सम्बन्धियों के प्रति पवित्र, हृदय वाले लोग दूर रहकर भी इनकी विपत्तिजनक स्थिति को जान ही लेते हैं । ननिहाल में रहकर भरत पिता दशरथ का मृत्युभूत अनिष्ट स्वप्न–दर्शन करते हैं, जिसे मित्रों से भी संशकित हुए बतला देते हैं । यह मनोवैज्ञानिक तथ्य इस प्रकार है [२] –

"सुप्तो नभस्तः पतितं निरीक्षाञ्चक्रे विवस्वन्तमधः स्फुरन्तम् ।
आख्यद् वसन् मातृकुले सखिभ्यः पश्यन् प्रमादं भरतोऽपि राज्ञः ।।"

भूगोल :–

समुद्र में ज्वारभाटा की स्थिति चन्द्र किरणों के फलस्वरूप दृष्टिगत होती है । अतः कवि की भौगोलिक कल्पना है कि जल चन्द्रमा के किरणों के उदय के कारण ही बढ़ रहा है । यह कवि के भौगोलिक ज्ञान का प्रभाव है [३] –

"द्युतित्वा शशिना नक्तं रश्मिभिः परिवर्धितम् ।
मेरोर् जेतुमिवाऽऽभोगमुच्चैर्दिद्योतिषुं मुहुः ।।"

पर्वत नदियों का उत्पत्ति स्थल माना जाता है । यहाँ से निकलकर नदियां समुद्र में जाकर मिलती है । इसी को उपमान मानकर कवि भट्टि ने रावण के समुद्र तुल्य आँगन को उपमित किया है [४] –

"शैलेन्द्रश्रृङ्गेभ्य इव प्रवृत्ता वेगाज्जलौधाः पुरमन्दिरेभ्यः ।
आपूर्य रथ्याः सरितो जनौघा राजाऽङ्गनाऽम्भोधिमपूरयन्त ।।"

सुवेल पर्वत के वर्णन के द्वारा कवि ने भौगोलिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि यह पर्वत साक्षात् देवालय स्वर्ग है [५] –

---

१. भट्टिकाव्य २/६

२. वही ३/२४

३. वही ७/१०७

४. वही ११/३६

५. वही १३/३६

"तुङ्गमणिकिरणजालं गिरिजलसंघटबद्धगम्भीररवम् ।
चारुगुहाविवरसभं सुरपुरसभममरचारणसुसंरावम् ।।"

यहाँ मणियों की उत्तमता स्वर्ग के उन्नत रूप में है । झरनों का प्रस्त्रवण गम्भीर शब्द तुल्य, गुफाओं का होना सभासदृश, गंधर्वों की मधुर ध्वनि आदि सब स्वरूप भूगोलशास्त्र के अनुकूल ही है ।

महाकवि भट्टि का आचार्यत्व :-

महाकवि भट्टि ने भट्टिकाव्य की रचना करके अपने समस्त ज्ञान भण्डार को इसमें समाविष्ट किया है इसलिए उनका यह काव्य केवल व्याकरण काव्य न रहकर विभिन्न विषयों के ज्ञान का एक वृहत्त कोश बन गया है ।

वैदिक ज्ञान :-

भट्टिकाव्य में अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ वैदिक वाङ्मय का प्रयोग करके भट्टि ने अपने वेद-वेदाङ्ग सम्बन्धित ज्ञान का परिचय दिया है । राजशेखर की उक्ति है[1] -

"नमोऽस्तु तस्यै श्रुतये यां दुहन्ति पदे पदे ।
ऋषयः शास्त्रकाराश्च कव्यश्च यथामति ।।"

ऋषि, शास्त्रकार तथा कविगण सभी आवश्यकतानुसार ज्ञान राशि वेदों का उपयोग करते आ रहे हैं । भट्टि ने अपने महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही दशरथ द्वारा अपनी रानियों के अभिरमण वर्णन में वेदत्रयी का दृष्टान्त दिया है ।[2]

"धर्म्यासु कामाऽर्थयशस्करीषु मतासु लोकेऽधिगतासु काले ।
विद्यासु विद्वानिव सोऽभिरेमे पत्नीषु राजा तिसृषूत्तमासु ।।"

अर्थात् जैसे विद्वान व्यक्ति आन्वीक्षिकी, त्रयी (ऋग्वेद, सामवेद और यर्जुवेद) एवं वार्ता में मानसिक व्यायाम करता है, साथ ही मनोविनोद भी करता है, ठीक वैसे ही राजा दशरथ ने अपनी उत्तम तीनों पत्नियों कौशल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा में विहार किया ।

वेदो के अन्तर्गत **कर्मकाण्ड** का विशेष महत्व है । भट्टि पर गृह्यसूत्रों की स्पष्ट छाप अंकित होती है । रामचन्द्र और लक्ष्मण के तपोवन में पहुँचने पर अतिथि पूजा में कुशल महर्षि जन उनका आसन्, पाद्य और माल्यों आदि से पूजन करते हैं । वे दोनों राजकुमार भी सप्रेम मधुर्पकमिश्रित आतिथ्य सामग्री ग्रहण करते हैं[3]-

---

१. राजशेखर, काव्यमीमांसा, अध्याय ६

२. भट्टिकाव्य १/६

३. वही २/२६

"अपूपुजन् विष्टरपाद्यमाल्यैरातिथ्यानिष्णा वनवासिमुख्याः ।
प्रत्यग्रहीष्टां मधुपर्कमिश्रं, तावासनाऽऽपि क्षितिपालपुत्रौ ।।"

यहाँ महर्षियों के द्वारा राजकुमारों का आतिथ्य सत्कार आश्वालयन, बौधायन और पारस्कर के अनुसार ही वर्णित है ।

शबरी मिलन में रामचन्द्र का उसके प्रति कथन है कि "समयानुकूल प्राप्त अतिथियों का दक्षिणाग्नि के तुल्य सम्मान देने में समर्थ होती हैं ।"[1] –

"आचाम्यं सन्ध्ययोः कच्चित् सम्यक् ते न प्रहीयते ।
कच्चिदग्निमिवाऽऽनाय्यं काले संमन्यसेऽतिथिम् ।।"

यह वर्णन कवि की वेदज्ञता को सूचित करता है । राम के बाण प्रहार से घायल बालि उन्हें प्रतिउत्तर देता हुआ कहता है[2] –

"अग्निचित्तसुद्राजां रथचक्रचिदादिषु ।
अनलेष्विष्टवान्कस्मान्न त्वयाऽपेक्षितः पिताः ।।"

अर्थात् अरे राम ! तुम्हारे द्वारा अग्निहोत्रि सोमयाजी, और रथचक्रादि आकारवत् कुण्डों में अग्नि प्रवेश से यज्ञ कर्ता राजा पिता की अपेक्षा न की गई ।

बलि का ही यह कथन देखिए –

"पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या ये प्रोक्ताः कृतजैर् द्विजैः ।
कौशल्याज ! शशादीनां तेषां नैकोऽप्यहं कपिः ।।"[3]

"शशकः शल्लकी गोधा खड्गी कूर्मोश्चपञ्चमः ।
पञ्चपञ्चनखाभक्ष्या अनुष्ट्राश्चैकतोदतः ।।"[4]

अर्थात् सत्ययुग में उत्पन्न महर्षियों ने जिन पांच नखों वाले खरगोश आदि को भक्षणीय बताया है मैं उन पाँचों में भी नहीं हो सका हूँ ।

---

१. भट्टिकाव्य ६/६६

२. वही ६/१३१

३. वही ६/१३५

४. वही ६/१३५ व्याख्याभाग, व्याख्याकार डॉ गोपाल शास्त्री

क्योंकि शशक, शल्लकी, गोह, खड्गी एवं कछुए ये पाँच नख वाले, पाँच जानवर ही भक्ष्य कहे गये हैं ।

प्राचीन काल में प्रायः राजसमूह अग्निहोत्र हुआ करते थे । राजा दशरथ की अन्त्येष्टि क्रिया भरत द्वारा अग्निहोत्रियों के विधानानुसार ही सम्पन्न की गई है । अतः संस्कर्त्ता भरत ने कृष्णसार मृगचर्म पर पूर्वशिर वाले शव को रखकर, साथ ही कान, आंख, नाक, मुख आदि को स्वर्ण युक्त कर तत्पश्चात् अग्निहोतृ के पात्रों को विधिपूर्वक अंगों पर व्यवस्थित कर प्रज्जवलित चितांग्नि में हवन किया ।[१] यथा –

"श्रोत्राक्षिनासावदनं सरुक्मं, कृत्वाऽजिने प्राक्शिरसं निधाय ।
सञ्चिन्त्य पात्राणि यथाविधानमृत्विग् जुहावज्वलितं चिताग्निम् ।।"

धर्मशास्त्र के अनुसार शवदाह की तैयारी का जो वर्णन यहाँ प्राप्त होता है वह पारस्कर गृह्यसूत्र के तृतीय काण्ड की दशम् कण्डिका में विस्तार से वर्णित है ।

भट्टिकाव्य के १६वें सर्ग के ३ श्लोकों (११ से १३) में कवि ने रावण के शवदाह की अग्निहोतृ पद्धति का वर्णन किया है ।[२] यथा –

"स्नानीयैः स्नावयेताऽऽशु रम्यैर्लिम्पते वर्णकैः ।
अलङ्कुर्यात रत्नैश्च रावणांऽहैर्दशाऽऽननम् ।।
वासयेत सुवासोभ्यां मेध्याभ्यां राक्षसाऽधिपम् ।
ऋत्विक् स्त्रग्विणमादध्यात् प्राङ्मूर्धानं मृगाऽजिने ।।
यज्ञपात्राणि गात्रेषु चिनुयाच्च यथाविधि ।
जुहुयाञ्च हविर्वह्वौ गायेयुः साम सामगाः ।।"

महाकवि भट्टि ने चारो कुमारों के वेदाङ्ग अध्ययन का वर्णन इस प्रकार किया है[३] –

"वेदोऽङ्गवांस्तैरखिलोऽध्यगायि, शस्त्राण्युपायंसतजित्वराणि ।।"

काव्यपुराणेतिहास विषयक ज्ञान :–

काव्यपुराण इतिहास के ज्ञान के द्वारा कवि अपने काव्य को गाम्भीर्यकवच से परिवेष्टित करता है । राजशेखर का कथन है –

---

१. भट्टिकाव्य ३/३५

२. वही १६/११ – १३

३. वही १/१६ पूर्वार्द्ध

"इतिहासपुराणाभ्यां चक्षुर्भ्यामिवसत्कविः ।
विवेकाञ्जनशुद्धाभ्यां सूक्ष्मप्यर्थमीक्षयते ।।"

अभिप्राय यह है कि श्रेष्ठ कवि वैसे ही इतिहास पुराण के विवेकाञ्जन से निर्मल ज्ञान नेत्रों से अति सूक्ष्म तथ्यों का अवलोकन करता है, जैसे कोई व्यक्ति अञ्जन से निर्मल नेत्रों से किसी सूक्ष्म वस्तु का ।

महाकवि भट्टि ने अनेक प्रसिद्ध पौराणिक कथाओं, अपरिचित एवं ऐतिहासिक कथाओं द्वारा अपने कथानक को प्रवाह मय बनाया है । इन्द्र, विष्णु एवं शिव का पौराणिक स्वरूप अवसरानुकूल वर्णित किया है । इन वर्णनों में चारुता लाने के लिए कवि ने उत्प्रेक्षा, उपमा, श्लेष, रूपक, अतिशयोक्ति, भ्रान्तिमान, समासोक्ति, दीपक आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है जिससे पाठक को अरूचि ने होने पाये । कवि द्वारा अप्रचलित कथाओं का कथन कवि की विद्वता का ही **निर्दशन** कहा जा सकता है । कवि ने काव्य पुराण और इतिहास के ज्ञान द्वारा अपनी सामाजिकता को ध्यान में रखकर उसका समावेश किया है ।

देवराज इन्द्र के विविध नाम :-

भट्टिकाव्य में देवराज इन्द्र के अनेक नामों का प्रयोग है । जो कि विभिन्न पौराणिक कथाओं से पूर्णतया जुड़े हैं— महेन्द्र, शतमन्यु, गोत्रभित्, हरि, मरूतवान, मघवन्, त्रिदेशेन्द्र, शतक्रतु, पूतक्रतु, दुश्च्यवन, सहस्त्रदृक, सहस्त्राक्ष, सहस्त्रचक्षुष, शक्र, पुरूकुल, वृत्रशत्रु इत्यादि ।

प्राचीन काल में पर्वतों के पंख होते थे । वह पक्षीराज गरूड़ की भाँति उड़ा करते थे, जिससे सभी देवता ऋषि तथा अन्य लोग सशंकित रहा करते थे कि कहीं हमारे ऊपर कोई पर्वत आकर न बैठ जाए और हम मृत प्राय हो जाय । अतः इन्द्र ने अपने वज्र से लाखों पर्वतों के पंख काट डाले यही कारण है कि इनका नाम गोत्रभित् (पर्वत को काटने वाला) पड़ा ।[1] भट्टिकाव्य में प्रयुक्त इन्द्र का यह नाम देखिए[2] –

"वसूनि तोयं घनवद्व्यकारीत् सहाऽऽसनं गोत्रभिदाऽध्यवात्सीत् ।"

महाभारत के वन पर्व में इन्द्र द्वारा वृत्र के वध की कथा का वर्णन इस प्रकार मिलता है कि वृत्रासुर से दुःखी सभी देवगण भगवान विष्णु की शरण में गये । विष्णु ने उन्हें दधीचि की अस्थि मांगने को कहा दधीचि ने योगबल से अपना शरीर त्याग कर अस्थि उन्हें दे दिया । विश्वकर्मा ने उन अस्थियों से वज्र बनाकर इन्द्र को दिया इन्द्र ने उस वज्र से वृत्र का वध किया ।[3] अतः वह वृत्र शत्रु कहलाये भट्टिकाव्य में इस नाम का

---

१. वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड, प्रथम सर्ग १२२ – १२४

२. भट्टिकाव्य १/३ पूर्वार्द्ध

३. महाभारत वनपर्व, अध्याय १००

प्रयोग राम द्वारा विभीषण को उपदेश देते समय किया गया है ।[१]

"इच्छा मे परमानन्देः कथं त्वं वृत्रशत्रुवत् ।
इच्छेद्धि सुहृदं सर्वो वृद्धि-सस्थं यतः सुहृत् ।।"

इन्द्र की पत्नी का नाम भट्टि ने 'इन्द्राणी' एवं 'पूतक्रतायी' स्मरण किया है । इनका हाथी ऐरावत था । इनके उपवन को 'नन्दन वन' नाम से अभिहित किया गया है । इनकी एक अप्सरा, जिसे भट्टि ने 'मुद्रा' नाम से वर्णित किया है । यथा –

बभौ मरुत्वान् विकृतः समुद्राः ।"[२]

ककुत्स्थवंशज राम :–

भट्टि ने राम को प्रायः 'काकुत्स्थ' नाम से अभिहित किया है ।

"ककुत्स्थस्यगोत्रापत्यं पुमान् इति काकुत्स्थः' (ककुत्स्थ + अण)

पौराणिक आख्यान इस प्रकार है – इन्द्र ने राक्षसों से संहारार्थ पराक्रमी राज परंजय की मदद ली । इस अवसर पर इन्द्रदेव स्वयं बैल रूप बने थे और उन्हीं के डील पर परजंय ने बैठकर राक्षसों का नाश किया था 'डील' को 'ककुद' भी कहते हैं । अतः परजंय का नाम ककुत्स्थ पड़ा । फलतः राम उन्हीं के वंशज होने से 'काकुत्स्थ' कहे गये । भट्टि द्वारा प्रयुक्त राम के लिए काकुत्स्थ विशेषण द्रष्टव्य है –

"कतूहलाच्चारुशिलोपवेश, **काकुत्स्थ** ईषत्स्मयमानआस्त ।[३]
प्रोर्णुवन्तं दिशो बाणैः **काकुस्थं** भीरु ! कः क्षमः ।[४]
बह्वमन्यत **काकुत्स्थः** कपीनां स्वेच्छया कृतम् ।[५]
काकुत्स्थपादपच्छायां शीतस्पर्शामुपागमत् ।[६]
नेडिषे यदि **काकुत्स्थं** तमूचे वानरो वचः ।[७]

---

१. भट्टिकाव्य १६/२५
२. वही १०/१६ उत्तरार्द्ध
३. वही २/११ उत्तरार्द्ध
४. वही ५/५६ उत्तरार्द्ध
५. वही ६/१०७ उत्तरार्द्ध
६. वही ७/३२ उत्तरार्द्ध
७. वही ६/५७ उत्तरार्द्ध

आलोकयत्स **काकुत्स्थ**मघृष्णोद्धोरमध्वनत् ।[१]

उत्सुकाऽऽनीयतां देवी **काकुत्स्थ**कुलनन्दन् !।[२]

मुदा संयुहि **काकुत्स्थं** स्वयं चाऽऽप्नुहि सम्मदम् ।[३]

काकुत्स्थः ! दयितां साध्वीं त्वमाशङ्किष्यथाः कथम् ।[४]

अनुग्रहोऽयं **काकुत्स्थः** ! गन्तास्वो यत्त्वया सह ।[५]

अग्नायी और रोहिणी :–

भागवत् पुराण के अनुसार दक्ष की कन्या अग्नि के साथ परिणीता बनी ।[६] अतः पाणिनि सूत्रों के नियमानुसार **अग्नायी** अग्नि की पत्नी कहलायी, इसी प्रकार इन्द्र की पत्नी **इन्द्राणी**, रूद्र की **रूदाणि**, वरूण की पत्नी **वरूणानि**, मनु की पत्नी **मनावी** कहलायी । सीता को अपहृत करने के लिए शूर्पणखा द्वारा रावण के प्रति उत्प्रेरक कथन में भट्टि ने अपने इस पौराणिक ज्ञान का प्रदर्शन किया है[७] –

"नैवेन्द्राणी, न रूद्राणी, न मनावी, न रोहिणी ।
वरूणानी न, नाऽग्नायी तस्याः सीमन्तिनी समा ।।"

विष्णु के विविध अवतार :–

मत्स्यपुराण में विष्णु के १० अवतार का इस प्रकार वर्णन हैं – धर्म, नारायण, नर्सिंह, वामन, दत्तात्रेय, मान्धाता, जामदग्न्यराम, व्यास, बुद्ध तथा कलिक ।[८]

भट्टि ने अपने महाकाव्य में भगवान् विष्णु के अनेक अवतार – नारायण, वामन, कच्छपावतार, नरसिंह, वाराह, परशुराम एवं राम आदि का वर्णन किया है । महाकाव्य के प्रारम्भिक श्लोक में ही विष्णु का रामावतार रूप में वर्णन है[९] –

---

१. भट्टिकाव्य १७/८१ पूर्वार्द्ध

२. वही २०/८ पूर्वार्द्ध

३. वही २०/१६ पूर्वार्द्ध

४. वही २१/१ उत्तरार्द्ध

५. वही २२/२२ उत्तरार्द्ध

६. भागवत् पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० २०१०, ४/१ – ४७श ४८

७. भट्टिकाव्य ५/२२

८. मत्स्यपुराण, अध्याय ४

९. भट्टिकाव्य १/१

"अभून्नृपो विबुधसंखः परंतपः, श्रुताऽन्वितो दशरथ इत्युदाहृतः ।
गुणैर्वरं भुवनहितच्छलेन यं, सनातनः पितरमुपागमत् स्वयम् ।।"

विष्णु के वामनावतार, कच्छपावतार, वाराहावतार का वर्णन एक ही श्लोक में देखिए –

"बलिर्बबन्धे, जलधिर्ममन्थे, जहेऽमृतं दैत्यकुलं विजिग्ये ।
कल्पाऽन्तदुःस्था वसुधा तथोहे येनैष भारोऽति गुरुर्न तस्य ।।" [1]

हिरण्यकशिपु की छाती–विदारण के लिए विष्णु के नरसिंहावतार का वर्णन रूप स्थल कवि द्वारा रावणोपदेश के समय माल्यवान् के कथन में दर्शाया गया है [2] –

"क्व स्त्री विषह्याः करजाः क्व वक्षो दैत्यस्य शैलेन्द्रशिलाविशालम् ।
संपश्यतैतदद्ययुसदां सुनींत बिभेद तैस्तन्नरसिंहमूर्तिः ।।"

विष्णु के रामावतार में मुख्य कार्य **रावणवध** रहा है । अतः भट्टिकाव्य में **रावणवध** घटना ही महाकाव्य की संज्ञा के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है । यह वध पौराणिक स्मरण भूत यहाँ भी दर्शनीय है [3] –

"नभस्वान्यस्य वाजेषु, फले तिग्मांशुपावको ।
गुरुत्वं मेरुसङ्काशं देहः सूक्ष्मो वियन्मयः ।।
राजितं गारूडैः पक्षैर्विश्वेषां धामतेजसाम् ।
स्मृतं तदरावणं भित्त्वा सुधोरं भुव्यशाययत् ।।"

लवण समुद्र :–

पुराणों की मान्यता के अनुसार सात प्रकार के समुद्र हैं जिनका नामकरण जल की गुणवत्ता के आधार पर किया गया है । ये सात समुद्र इस प्रकार पुराणों में वर्णित हैं – लवण, इक्षु, सुरा, सर्पिस, दुग्ध, दधि एवं जल ।

भट्टिकाव्य में श्रीराम चन्द्र के द्वारा लंकाप्रयाण में **लवण समुद्र** पर ही सेतु बांधने का कार्य हुआ था । महाकवि ने सेतुबन्धन के प्रसंग में **लवण समुद्र** का ही वर्णन पुराणों की मान्यता के अनुसार अद्भुत रूप में किया था [4] –

---

१. भट्टिकाव्य २/३६

२. वही १२/५६

३. वही १७/११० – १११

४. वही १३/२

"बद्धो वासरसङ्गे भीमो रामेण लवणसलिलावासे ।
सहसा संरम्भरसो दूरारुढरविमण्डलसमो लोले ।।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाकवि भट्टि ने अपने महाकाव्य में यत्र–तत्र पुरुषार्थ चटुष्ट्य के साधनों राजनीति एवं धर्मनीति के उपदेश तत्वों, युद्धशास्त्र, कामशास्त्र, अस्त्र–शस्त्र तथा विविध वाद्यों, श्रृंगार के प्रसाधनों एवं शाप तथा शकुनों का वर्णन किंया है । महाकंवि भट्टि ने रामायणीय समाज के रीति–रिवाज, आचार–विचार, रहन–सहन, खान–पान, धर्म–कर्म को अपनी लेखनी के माध्यम से अपने काव्य में अभिव्यक्त किया है । इस प्रकार भट्टि के महाकाव्य का संक्षिप्त तथा आलोचनात्मक परिचय प्राप्त कर लेने पर स्वाभाविक रूप से उनके पाण्डित्य तथा आचार्यत्व का पता चल जाता है ।

❐

संस्कृत महाकाव्य परम्परा में भट्टि का अपूर्व योगदान

संस्कृत महाकाव्य–परम्परा एवं भट्टि

महाकाव्य–परम्परा :–

यद्यपि संस्कृत–महाकाव्य परम्परा का वर्णन प्रथम अध्याय में विस्तृत रूप से किया गया है फिर भी प्रसङ्गवश यहाँ पुनः संक्षिप्त विवेचन करना अपेक्षित है ।

लौकिक संस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम महाकाव्य महर्षि वाल्मीकिकृत ''रामायण'' है । ऐसा कहा जाता है कि जब व्याध के बाण से बिधे हुए क्रौञ्च के लिए विलाप करने वाली क्रौञ्ची का करुण क्रन्दन ऋषि ने सुना, तो उसके मुख से अकस्मात् यह श्लोक निकल पड़ा –

''मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काननोहितम् ।।''[१]

यह श्लोक ही काव्य की बीजरूप है । यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में महर्षि वाल्मीकि–कृत रामायण ''आदिकाव्य'' माना जाता है तथा महर्षि वाल्मीकि 'आदिकवि' समझे जाते हैं ।

''रामायण'' और ''महाभारत'' में जिन आख्यानों एवं उपाख्यानों को वर्णित देखा जाता है । वे ही वस्तुतः संस्कृत के उद्भव रूप हैं । इस प्रकार उनसे महाकाव्यों की एक सुदृढ़–परम्परा का अनुवर्तन हुआ ।

'रामायण' और 'महाभारत' की शैलियों और उनके द्वारा अनुप्राणित काव्य–परम्परा को देखते हुए सहज ही कहा जा सकता है कि 'महाभारत' की अपेक्षा 'रामायण' में काव्योत्कर्षकारक गुण तथा अन्विति अधिक है । इसलिए 'महाभारत' प्रधानतया इतिहास और गौणतया महाकाव्य है किन्तु इसके विपरीत 'रामायण' प्रधानतया महाकाव्य और गौणतया इतिहास है । अपनी इसी प्रधान भावना के कारण 'महाभारत' ने पुराण शैली को जन्म दिया और स्वयं भी पुराणों की श्रेणी में चला गया, किन्तु 'रामायण' का विकास अलंकृत शैली के काव्यों के रूप में हुआ । इसलिए 'महाभारत' को हम संस्कृत के काव्यों, महाकाव्यों और दूसरे विषयों के ग्रन्थों का पिता तो मान सकते हैं, उसको काव्यों या महाकाव्यों की श्रेणी में भी रख सकते हैं और उसको अलंकृत शैली के उत्तरवर्ती काव्यों का जनक भी कह सकते हैं ।[२]

'संस्कृत' के काव्यकारों ने 'महाभारत' से तो अपनी कृत्तियों के लिए कथावस्तु चुनी और पुनः उसको 'रामायण' की शैली में बांधकर दोनों ग्रन्थों की स्थिति को स्पष्ट कर दिया । 'रामायण' से रूप, शिल्प और

---

१. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, श्लोक संख्या – १५

२. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा' आलोचना (त्रैमासिक) अक्टूबर, १९५१

'महाभारत' से विषयवस्तु लेकर महाकाव्यों की परम्परा आगे बढ़ी । अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष के महाकाव्यों में शिल्प सम्बन्धी तत्व, अलंकार–योजना, प्रकृति–चित्रण सभी का आधार 'रामायण' ही है ।[१]

'रामायण' में हमें शैली का विकसित रूप देखने को मिलता है । भाषागत तथा छन्दगत दृष्टि से यह दर्शनीय है । इसमें हमें सरस, सुबोध, गम्भीर तथा चित्रात्मक शैली के दर्शन होते हैं । प्रकृति–वर्णन के अन्तर्गत ऋतु, पर्वत, नदी, प्रातः, सन्ध्या, यज्ञ, विवाहादि के वर्णन अतिशय हृदयग्राही हैं । अलङ्कारों का स्वाभाविक एवं प्रचुरमात्रा में प्रयोग किया गया है परवर्ती महाकाव्य उसकी भाषा, छन्द, रचना–पद्धति एवं पवित्र आदर्शों से प्रभावित है । वाचस्पति गैरोला ने लिखा है – "महाकाव्यों की परम्परा को सामान्यतः तीन श्रेणी में रखा जा सकता है । पहली श्रेणी के अन्तर्गत वे महाकाव्य रखे जा सकते है, जो विशुद्ध संस्कृत में लिखे गये हों, जैसे कि कालिदास, माघ, श्रीहर्ष आदि के ग्रन्थ तथा दूसरी श्रेणी में पालि एवं प्राकृत भाषा के महाकाव्य आते हैं और तीसरी श्रेणी के महाकाव्य अपभ्रंश में हैं, जिनसे हिन्दी साहित्य में काव्य–परम्परा का प्रर्वतन हुआ । ऐतिहासिक दृष्टि से संस्कृत महाकाव्यों की लम्बी परम्परा को हमने तीन विभिन्न युगों में विभाजित किया है । पहला **उद्भव युग** कालिदास से पूर्व, दूसरा **अभ्युत्थान युग** कालिदास से लेकर श्रीहर्ष तक और तीसरा **ह्रास युग** तेरहवीं शती से अब तक ।[२]

रामायण एवं महाभारत के पश्चात् महाकाव्य का अधिक विकसित स्वरूप कालिदास रचित 'कुमारसम्भव' और 'रघुवंश' महाकाव्य में दृष्टिगत होता है । इनके काव्यों में वाल्मीकि शैली का उदात्त उत्कर्ष मिलता है । इनके 'कुमारसम्भव' एवं 'रघुवंश' दोनों ही सर्वांगपूर्ण महाकाव्य है । 'रघुवंश' संस्कृत साहित्य का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है । कालिदास की भाषा सरल, सुबोध, प्रवाहपूर्ण एवं शैली अलंकृत है । वे श्रृंगार रस के वर्णन में अद्वितीय है । उपमा के क्षेत्र में तो वह सिरमौर है । यथा – "उपमा कालिदासस्य" तदनन्तर महाकाव्य परम्परा में बौद्ध महाकवि अश्वघोष रचित 'बुद्धचरित' 'सौन्दरनन्द' महाकाव्यों का क्रम आता है । ये काव्य सर्गों में आबद्ध है । इनमें ऋतु एवं पर्वतादि का अलङ्कारपूर्ण वर्णन दृष्टिगोचर होता है । भाषा–शैली अत्यन्त सरलता तथा माधुर्य से युक्त है । उपमाएं बड़ी ही सुन्दर है । कथा–प्रवाह यत्र–तत्र बौद्ध धर्म के सिद्धान्त से अनुप्राणित है । उनके काव्य माधुर्य एवं प्रसादगुण युक्त देखे जाते हैं ।

संस्कृत की विकसित महाकाव्य–परम्परा का सफल प्रतिनिधित्व कालिदास और अश्वघोष के पश्चात् हमें भारवि की कृति में प्राप्त होता है । भारवि की कवित्व कीर्ति को अक्षुण्ण बनाए रखने वाला उनका एकमात्र ग्रन्थ 'किरातार्जुनीय' प्राप्त होता है, जिसका नाम संस्कृत की बृहत्त्रयी (किरात, माघ, नैषध) में लिया जाता

---

१. डॉ० शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप–विकास, पृ० १३६

२. वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, महाकाव्यों की परम्परा का विकास, प्रकाशक – चौखम्बा विद्याभवन, पृ. ७२० – २१

है । कालिदास के परवर्ती प्रमुख महाकाव्यों के सम्बन्ध में जिनका आरम्भ 'किरातार्जुनीय' से होता है, विद्वानों का कथन है कि कालिदास की कला में भावपक्ष तथा कलापक्ष का जो समन्वय पाया जाता है, पश्चाद्भावी महाकाव्यों में उसका स्थान केवल कलापक्ष ने ले लिया और इसलिए उनमें महाकाव्यत्व नाममात्र के लिए रह गया है ।[१]

फिर भी भारवि के महाकाव्य का अपना एक विशिष्ट महत्व है । उनके महाकाव्य में काव्यशास्त्रीय नियमों का पूर्णरूपेण पालन हुआ है । व्याकरण के नियम के साथ ही साथ काव्यकलागत नियमों का जैसा दृश्य इसमें मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । भारवि का व्यक्तित्व–दर्शन सर्वथा कालिदास और अश्वघोष की अपेक्षा स्वतन्त्र आभासित होता है । इसमें भारवि का वीर रस से सम्बन्धित हृदयग्राही चित्रण और अलङ्कृत काव्यशैली का सफल वर्णन ही प्रधानभूत कारण है । ''अर्थ की गुरुता'' भारवि की सबसे बड़ी विशेषता है ।

महाकवि भारवि के बाद महाकाव्य परम्परा को आगे बढ़ाने वाले महाकवि भट्टि का नाम आता है । इनके महाकाव्य 'भट्टिकाव्य' या 'रावणवध' में कृत्रिमता के दर्शन होते हैं । यह व्याकरणशास्त्र के क्षेत्र में एक नयी परिपाटी को जन्म देने वाला महाकाव्य है । अतएव इसका संस्कृत जगत् में महत्वपूर्ण स्थान है । महाकवि कालिदास से लेकर भट्टि तक की परम्परा की विशेषताओं एवं विभिन्नताओं का विश्लेषण करते हुए डॉ० भोलाशंकर व्यास ने लिखा है[२] –

''भारवि में कालिदासोत्तर काव्य की पाण्डित्य–प्रदर्शन की प्रवृत्ति और कलात्मक सौष्ठव का एक पक्ष दिखाई देता है, भट्टि में दूसरा । भारवि मूलतः कवि है, जो अपनी कविता को पण्डितों की अभिरूचि के अनुरूप सजाकर लाते हैं, भट्टि मूलतः वैयाकरण तथा अलङ्कारशास्त्री है, जो व्याकरण और अलङ्कारशास्त्र के सिद्धान्तों को व्युत्पित्सु सुकुमारमपि राजकुमारों तथा काव्यमार्ग के भावी पथिकों के लिए काव्य के बहाने निबद्ध करते हैं । भारवि तथा भट्टि के काव्यों का लक्ष्य भिन्न–भिन्न है । इनके लक्ष्य में ठीक वही भेद है, जो कालिदास तथा अश्वघोष में । कालिदास रसवादी कवि हैं तो भारवि कलावादी कवि, अश्वघोष दार्शनिक उपदेशवादी कवि हैं, तो भट्टि व्याकरणशास्त्रोपदेशी कवि ।''

कुमारदास भट्टि के अनुवर्ती महाकवि के रूप में जाने जाते हैं । इनका 'जानकीहरण' महाकाव्य रामकथा का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण प्रस्तुत करता है । कुमारदास के सम्बन्ध में राजशेखर (नवमशताब्दी) की एक श्लेषपरक उक्ति है कि 'रघुवंश' की विद्यमानता में 'जानकीहरण' करने की कुशलता या तो रावण में ही थी,

---

१. द्रष्टव्य – डॉ० भोलाशंकर व्यास, संस्कृत–कवि–दर्शन, तृतीय संस्करण, १९६८ पृ० ११७

२. वही

या फिर कुमारदास में देखी गयी ।[१]

कुमारदास के अनन्तर महाकाव्यों की परम्परा को समृद्धिशाली रूप देने वालों में महाकवि माघ का नाम स्मरण किया जाता है । इनकी कवित्वकीर्ति का अमर स्मारकभूत उनका 'शिशुपालवध' या 'माघकाव्य' है । इसमें कालिदास की भावप्रवणता, भारवि का अर्थगौरव, दण्डी की कला एवं भट्टि की व्याकरणात्मक पाण्डित्यपूर्णशैली एकत्र देखने को मिलती है । भारवि की अलङ्कृतशैली को माघ ने और अधिक प्रौढ़ता प्रदान की है । ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने भारवि को अतिक्रान्त करने के लिए ही अपने महाकाव्य की रचना की है । महाकाव्यों की उन्नत प्रणयन परम्परा में महाकवि माघ के बाद रत्नाकर का 'हरविजय' नामक महाकाव्य उल्लेखनीय है । किन्तु रत्नाकर की कवि प्रसिद्धि पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा कुछ अस्पष्ट प्रतीत होती है । अतः इस अलङ्कृत शैली को अपनाने वालों में माघ के बाद श्रीहर्ष का नाम आता है । इनका महाकाव्य 'नैषधीयचरित' नाम से ख्याति प्राप्त है । श्रीहर्ष की पद–रचना, भाव–विन्यास, कल्पना कौशल और प्रकृति–चित्रण आदि सारे विषयों में एक अपनी मौलिक दृष्टि प्रतीत होती है । 'नैषधीयचरित' में ऐसी अनेक विशेषतायें भरी पड़ी है, जिसके कारण इसकी गणना 'वृहत्त्रयी' में की जाती है ।

संस्कृत–साहित्य की अतिविस्तीर्ण महाकाव्य–परम्परा को शैली, स्वरूप एवं समय की दृष्टि से प्रधानतया तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है । संस्कृत के महाकाव्यों का प्रथम उद्भव–युग कालिदास के पूर्व ही समाप्त हो जाता है, जिसके अन्तर्गत मुख्यरूप से रामायण और महाभारत आते हैं । महाकवि कालिदास के आगमन के साथ ही साथ इसका द्वितीय अभ्युत्थान युग आरम्भ होता है जिसकी सीमा श्रीहर्ष तक जाती है । श्रीहर्ष से पहले और कालिदास के बाद के ये द्वादश शतक समग्र संस्कृत साहित्य को अभूतपूर्व एवं आशातीत उन्नति के द्योतक हैं । इसके पश्चात् औपचारिक रूप में सत्रहवी शताब्दी तक महाकाव्यों की यह परम्परा दृष्टिगत होती है । चन्द्रशेखर पाण्डेय के अनुसार – संस्कृत महाकाव्य–परम्परा को वाल्मीकि के बाद दश महाकवियों के नाम कालक्रम में इस प्रकार देखे जा सकते हैं[२] –

"आदौश्रींकालिदासः स्यादश्वघोषस्ततः परम् ।
भारविश्चतथाभट्टिः कुमारश्चापि पंचमः ।।
माघरत्नाकरौपश्चात् हरिश्चन्द्रस्तथैव च ।
कविराजश्च श्रीहर्षः प्राख्याताः कवयोदशः ।।"

---

१. जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशो स्थिते सति ।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ ।।

२. चन्द्रशेखर पाण्डेय, संस्कृत साहित्य की रूपरेखा महाकाव्य, श्रीहर्ष, साहित्य–निकेतन, कानपुर, सप्तम संस्करण, १९६४, पृ० ६८

इस प्रकार महाकाव्य के विकास पर दृष्टिपात करने से स्पष्टतः प्रतीत होता है कि आरम्भिक युग में नैसर्गिकता का ही काव्य में मूल्य था। वही गुण आदर की दृष्टि से देखा जाता था, परन्तु आगे चलकर पाण्डित्य का महत्व बढ़ा। इसके पश्चात् पाठकों का अनुरंजन ही कविता का लक्ष्य बन गया। फलतः कवियों ने अपने काव्यों में अक्षराडम्बर तथा अलङ्कार–विन्यास की ओर दृष्टिपात किया, उन्हें ही काव्य का जीवन मानने लगे और इसीलिए पिछले युग के **सुकुमार मार्ग** के स्थान पर **विचित्रमार्ग** का प्रसार हुआ।[1]

भट्टिकाव्य का महाकाव्यत्व

संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने महाकाव्य के विशिष्ट लक्षण प्रस्तुत किये हैं। भामहकृत महाकाव्यत्व का लक्षण प्राचीनतम उपलब्ध है। इसकी विशेषता इसकी संक्षिप्तता में है। तदनन्तर आचार्य दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में महाकाव्य का लक्षण किया है। रूद्रट ने अपने 'काव्यालङ्कार' में दण्डी के द्वारा दिये गये महाकाव्य–लक्षणों को कुछ विस्तार के साथ वर्णित किया है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भी महाकाव्य का लक्षण किया है, जो अत्यन्त लोकप्रिय है'। इनके द्वारा महाकाव्य का लक्षण करते हुए छठे परिच्छेद के अन्तर्गत प्रस्तुत श्लोक दिये गये हैं –

"सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वतः।।
एकवंशभवाभूमाः कुलजाबहवोऽपि वा।
श्रृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।।

कवेवृर्त्तस्यवानाम्ना नायकस्येतरस्यता।
नामास्यसर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।।"[2]

भट्टि के रावणवध में आचार्यो द्वारा दिये गये महाकाव्यलक्षण पूर्णतया घटित होते हैं। इसका कथानक संस्कृत के आदिकाव्य 'रामायण' से लिया गया है। इसमें रामजन्म से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा का निबन्धन २२ सर्गों में किया गया है।

इसमें श्लोकों की संख्या विभिन्न टीकाकरों ने भिन्न–भिन्न निर्धारित की है। इसके नायक भगवान् श्रीराम हैं, जो धीरोदात्तादि गुणों से समन्वित हैं। वे सद्क्षत्रियवंशोत्पन्न एक अलौकिकपुरुष हैं। प्रधानरस वीर है, श्रृङ्गारादि उसके अङ्गभूत हैं। पांचों नाटक सन्धियों (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निवर्हण) का

---

१. आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास', १९६८, चतुर्थ परिच्छेद, महाकाव्य का विकास, पृ० १७५

२. आचार्य विश्वानथ, साहित्यदर्पण, ६/३१५ – ३२४

औचित्यपूर्ण संयोजन और निर्वाह दिखाई पड़ती है। चतुर्वर्ग में अर्थभूत 'रावणवध' ही इसका फल है। बीजरूप में रावण की मातृस्वसा बहन शूर्पणखा का नासिकाच्छेदन कार्य है। प्रारम्भ में श्रीरामचन्द्र का कवि के द्वारा प्रादुर्भाव कथन वस्तु निर्देशात्मक (या नायक निर्देशभूत) मंगलाचरण का ही स्वरूप है, जो 'काव्यालायांश्च वर्जयेत्' नियम का अनुपालन है। प्रत्येक सर्ग में प्रायः एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है। सर्ग के अन्त में प्रायः छन्द परिवर्तन देखा जाता है। भट्टिकाव्य के दशम सर्ग एवं २२वें सर्ग में छन्दों की विविधता के भी दर्शन होते हैं।

प्रथम सर्ग में अयोध्या नगरी का अलौकिक वर्णन हुआ है। द्वितीय सर्ग में सीता के विवाह से सम्बन्धित दर्शनीय स्थल प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही इस सर्ग में शरद् ऋतु का बड़ा ही मनोहारी वर्णन काव्य–प्रेमियों का कण्ठहार बनता है। शरद् एवं वर्षा ऋतु के वर्णन सप्तम सर्ग में भी दृष्टिगत होते हैं। तृतीय, चतुर्थ एवं पञ्चम सर्ग में वन, उपवन आदि के वर्णन हैं। ये वर्णन अन्य सर्गों में भी उपलब्ध होते हैं। दशम सर्ग में महेन्द्र पर्वत का वर्णन बड़ा ही प्रभावेत्पादक है। प्रातःकाल एवं सन्ध्यावर्णन के लिए सम्पूर्ण एकादश सर्ग ही प्राप्त होता है। भट्टि का प्रभात वर्णन श्रृंगार रस से परिपूर्ण है। वियोग श्रृंगार का वर्णन षष्ठ और सप्तम सर्ग में है। द्वादश सर्ग में राजनीतिक उपदेश वर्णित हैं। त्रयोदश सर्ग में समुद्र–वर्णन है। चतुर्दश से सप्तदश सर्ग तक युद्ध विषयक प्रसङ्ग वर्णित है। इसमें श्रीराम, लक्ष्मण एवं हनुमान् के साथ रावण, कुम्भकर्ण तथा मेघनाद आदि राक्षसों के भयङ्कर युद्ध का दृश्य प्रभावशाली है। अष्टादश से द्वाविंश सर्ग तक खलनिन्दा, सज्जन–प्रशंसा, अभ्युदय आदि के साङ्गोपाङ्ग वर्णन दर्शनीय है।

नामकरण — वर्णनीय घटना के आधार पर इस महाकाव्य का नामकरण 'रावणवध' है, जबकि इसका अधिक प्रचलित नाम महाकवि भट्टि के नाम से 'भट्टिकाव्य' ही मिलता है। 'उत्तररामचरित' नाटक और 'कुमारसम्भव' महाकाव्य का नामकरण चरित्रवर्णन के आधार पर, चरित्रनायक के नाम से 'रघुवंश' का नामकरण, 'वेणीसंहार' तथा 'मुद्राराक्षस' का नामकरण घटनागत है। महाकवि माघ के महाकाव्य 'माघकाव्य' अथवा 'शिशुपालवध' का नामकरण कवि के नाम और घटना दोनों के आधार पर देखा जाता है। वह महाकवि भट्टि के काव्यगत के नामकरण से प्रभावित नामकरण प्रतीत होता है। कवि के नाम से काव्य की संज्ञा का निर्वचन कवि की उपादेयता को प्रमाणित करता है।

इस प्रकार कथावस्तु के स्वरूप पर कवि का विशेष ध्यान न होने पर भी भट्टिकाव्य विपुल वर्णनों से युक्त है। अन्ततः भट्टिकाव्य को सर्वाङ्गरूपेण महाकाव्य की श्रेणी में रखकर 'काव्यशास्त्र' की कोटि में गिना जाता है।

भट्टिकाव्य का महत्त्व —

महाकवि भट्टि ने महाकाव्यगत जितनी सफलता प्राप्त की है, उतनी व्याकरण–विषय से सम्बन्धित नहीं।

यही कारण है कि कवि के द्वारा महाकाव्य के अपेक्षित समस्त लक्षणों को बड़ी सावधानीपूर्वक अपने काव्य में प्रतिपादित किया है।

भट्टिकाव्य कथा की दृष्टि से उत्कृष्ट है। उत्तरकालीन काव्यों के कथानकों की अपेक्षा भट्टिकाव्य के कथानक का फलक विस्तृत है, साथ ही कथा की गति में अवरोध उत्पन्न करने वाले लम्बे वर्णन भी नहीं प्राप्त होते हैं। कुछ सर्ग तो बहुत छोटे हैं। उदाहरणार्थ – प्रथम, नव, दश, एकविंशति तथा द्वाविंशति सर्ग में क्रमशः २७, ३०, २३ तथा ३५ श्लोक हैं।[१]

भट्टिकाव्य काव्य–सौन्दर्यगत दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। महाकाव्य के सभी आवश्यक नियमों की पूर्ति यथासम्भव की गयी है। दशम सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक, इन चार सर्गों में काव्य की विशेषताएं प्रदर्शित की गयी हैं। दशम सर्ग में शब्दार्थालङ्कार की सुन्दर योजना है। यमकालङ्कार के भिन्न–भिन्न उदाहरण जैसे इस सर्ग में उपलब्ध होते हैं, अन्यत्र दुर्लभ है। एकादश सर्ग का प्रभात वर्णन तथा द्वितीय सर्ग का शरद् ऋतु वर्णन व्याकरण की रूक्षता दूर करने के उद्देश्य से लिखा गया प्रतीत होता है।

रस की दृष्टि से भी यह काव्य कवि के द्वारा प्रभावोत्पादक ढंग से निर्मित किया गया है। अंगीरस, वीर के अतिरिक्त श्रृंङ्गारादि अन्य रसों का भी वर्णन है। एकादश सर्ग को प्रभात–वर्णन के साथ ही नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से संवलित भाव भीनें श्रृंगार से ओत–प्रोत करने की शैली भट्टि की निजी है। इस सर्ग के चमत्कार को देखकर यह मान लेना पड़ता है कि भट्टि जहाँ एक ओर व्याकरण की रूक्ष एवं शुष्क प्रक्रिया के पारखी है, वहीं दूसरी ओर भावुकता और सहृदयता की पूरी सीमा तक पहुँचकर आनन्दविभोर हो उठने वाले महान् कवि भी हैं। श्रृंगार रस में निमग्न पूरी रात्रि का वर्णन करने के पश्चात् एक ही पद्य में प्रातः सूर्योदय के वर्णन की भूमिका सर्वथा अभिनव सी है। भट्टि का यह प्रभातवर्णन अर्वाचीन कवियों के लिए आदर्श रूप रहा है। महाकवि माघ का प्रसिद्ध प्रभात–वर्णन इनके प्रभात–वर्णन का प्रतिबिम्ब ही जान पड़ता है। अलङ्कार–ग्रन्थों में प्राप्य भट्टिकाव्य के शरद् वर्णन का यह पद्य महाकवि की काव्यात्मक प्रतिभा का साक्षी है। यथा[२] –

"न तज्जनं यन्न सुचारूपङ्कजं,
न पङ्कजं तद्यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं,
न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः।।"

---

१. डॉ० केशवराव मुसलगॉवकर, 'संस्कृत महाकाव्य की परम्परा' अष्टम अध्याय, 'संस्कृत के महाकाव्यों का परिशीलन', रावणवध (भट्टिकाव्य) कवि–परिचय, प्रथम संस्करण १९६९

२. भट्टिकाव्य, २/१९

भट्टिकाव्य में माधुर्य एवं प्रसाद–गुण का अच्छा परिपाक हुआ है। इसमें ओजगुण के भी वर्णन स्थल देखे जाते हैं। छन्द की दृष्टि से भट्टिकाव्य में अधिक लम्बे छन्दों का प्रयोग कम पाया जाता है।

अतः महाकवि भट्टि के भट्टिकाव्य का काव्यशास्त्र–परम्परा की अपेक्षा महाकाव्य–परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यही कारण है कि वे एक काव्यशास्त्री होने से अधिक महाकवि के रूप में ही विश्रुत हैं।[१]

पूर्ववर्ती कवियों का भट्टि पर प्रभाव

काव्य में उपजीव्य एवं उपजीवकभाव स्वीकार किया जाता है। प्रतिभावान् और व्युत्पत्तिमान् कवि ही वस्तुतः कवि कहा जाता है उसी की कविता उत्तम काव्य के अन्तर्गत गिनी जाती है।[२]

प्रत्येक कवि अपनी काव्यरचना के शैशव–काल में अपने पूर्वकालीन काव्यग्रन्थों का आधार लेकर चलता ही है, अतः पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव ज्ञात या अज्ञात रूप से उसकी अपनी कृत्ति में अवश्य दिखाई देता है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन का कथन है कि[३] –

"दृष्टपूर्वा अपिह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः।।"

अभिप्राय है कि काव्य में रस परिग्रहण की नूतन शैली के कारण पूर्वदृष्ट सभी चीजें मधुमास के वृक्षतुल्य नई ही आभासित होती है।

कवि की संस्कार–रूप में विद्यमान कवित्व चेतना कहीं कोई मर्मस्पर्शी वस्तु को पढ़कर या उसका ज्ञानकर जाग उठती है और तत्काल उसके व्युत्पत्तिमान् भावुक हृदय से भाषा के अवान्तर भेष में जो स्वर निकल कर सम्मुख उपस्थित गाता है, वही कविता का वास्तविक रूप होता है। अनेक पूर्वकालीन कवियों में एक ही वस्तु का चित्रण दर्शनीय होता है, तो भी कोई कवि मात्र उसी का बाद में अनुकरण कर अपनी लक्ष्यप्राप्ति समझ लेते हैं, जबकि कुछ कवि उस वस्तु–वर्णन में किसी अभिनवपक्ष पर बल देना श्रेयस्कर समझते हैं।

अस्तु, वही वर्णन बाद में स्मरणीय एवं प्रशंसनीय बनता है, जो कि नूतन सूझ–बूझ से आवेष्टित हुआ है। इस प्रकार एक ही वस्तु का आत्यन्तिककाल तक कविवृन्द वर्णन करते रहते हैं और उनमें सदैव नवीनता ही देखने को मिलती है। यही रहस्योद्घाटन राजशेखर ने इस प्रकार किया है[४] –

---

१. वाचस्पति गौरोला, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', अध्याय – १६, काव्यशास्त्र, भट्टि, पृ० ८१४

२. "प्रतिभाव्युत्पतिमांश्च कविः कविरित्युच्यते" राजशेखर, काव्यमीमांसा १/५

३. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, चतुर्थ, उद्योत, १०८, पृ० ५६६

४. काव्यमीमांसा, राजशेखर

"वाचस्पति–सहस्त्राणां सहस्त्रैरपियत्नतः ।
निबद्धापिक्षयं नेतिप्रकृतिर्जगतामिव ।।"

अर्थात् हजारों वाचस्पतियों द्वारा हजार प्रयत्न किये जाने पर भी प्रकृति (वस्तु) का वर्णन किया जाना सम्भव नहीं देखा जाता ।

वस्तु में नवीनता हो या दृष्टि में नवीनता हो दोनों प्रकार की नवीनता संस्कृत कवियों की मूल प्रेरणा सी प्रतीत होती है । नवीनता और रमणीयता एक ही तत्व है, वस्तु में यदि रमणीयता न हो तो उसके दर्शन में उसकी क्षण–क्षण नवीनता कहाँ से उत्पन्न हो जाएगी । नवीनता क्या है ? ये दोनों बाते महाकवि माघ की इस प्रसिद्ध सूक्ति में निर्दिष्ट है –

"क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ।"

अर्थात् सौन्दर्य क्या है ? इसका उत्तर यह है कि जो नवीन है वह सुन्दर है और जो सुन्दर है वह नवीन है ।

काव्य में अनुहरण –

राजशेखर की दृष्टि में जिसे 'अनुहरण' कहते हैं वही कविमात्र की एक मौलिक साहित्यिक प्रवृत्ति ही है । काव्य में पूर्ववर्ती कवियों का अनुहरण कविता में चोरी नहीं अपितु अनुहरण मौलिकता को जन्म देती है ।

अनुहरण पूर्ववर्ती कवि या पूर्ववर्ती युग के काव्य की छाया का ग्रहण है । पूर्ववर्ती काव्य या काव्य की रसभावना, पूर्ववर्ती कवि अथवा काव्य की आशा और आकांक्षा के प्रभाव में काव्य रचना करना कोई 'काव्य तस्करता' नहीं । यह अनुहरण या छाया ग्रहण है जो कवित्व–कला के प्रकाशन का एक साधन है । रामायण के इतिवृत्त, रसभावना आदि के प्रभाव में रघुवंश की रचना इसी 'अनुहरण' का एक आदर्श उदाहरण है ।

कालिदास ने 'रघुवंश' में वाल्मीकि के कवित्व और काव्य का अपहरण नहीं किया, बल्कि अपने कवि–व्यक्तित्व का संस्कार किया और इस संस्कार में वे ऐसे चमके कि वाल्मीकि की भाँति वे भी अमर कवि हो गए ।

अनुहरण की क्रिया कवि का आत्म–संस्कार है । यहाँ आंग्लभाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार रॉबर्ट लुई स्टिवेसन की एक उक्ति के उद्धरण को देखिए जिसमें 'काव्य में अनुहरण' की अनिवार्यता और उपादेयता का बड़ा ही सुन्दर अभिव्यञ्जन है[१] –

---

१. "संस्कृत साहित्य में मौलिकता एवं अनुहरण" डॉ० उमेश प्रसाद रस्तोगी, चौखम्बा विद्याभवन, १९६५, पृ० ११८

"Whenever I read a volume or Passage, that particularly pleased me, in which a thing was stated or a fact rendered with propriety. In which there was some conspicuous force or happy distinction in the style, I must sit down at once and sit myself to ape the quality. I was unsuccessful and I know it. I tried again and was again unsuccessful and always unsuccessful, but at least in these vain hours I got some practice in rhythm in hormony, and construction and Co-ordination of parts. I have thus played the sedulous ape to Hazlitt, to Lamb, to wordsworth, to Sir, Thomas Browne, to Defoe, to Hawhtorne, to Mortaigne, to Bandelaire and oberman."

अर्थात् "जब कभी मुझे किसी ऐसे ग्रन्थ अथवा उसके किसी ऐसे सन्दर्भ के पढ़ने का अवसर मिलता है जिसमें किसी विषय के निरूपण अथवा किसी घटना के वर्णन में कोई औचित्य प्रतीत हो अथवा जिसमें कोई विलक्षण प्रभावोत्पादकता किं वा शैली की मनोरंजक विशेषता का आभास हो, तो मैं उस विशेषता का अपनी रचना में आधान करने के लिए तत्पर हो उठता हूँ । मुझे पता है कि एक बार के प्रयत्न से मुझे सफलता नहीं मिलती । सदा मुझे असफलता ही मिलती है किन्तु इस असफल प्रयत्नशीलता के क्षणों में ही मुझे काव्यात्मक वर्ण–संवाद, संगीतात्मक पद सौन्दर्य तथा समुचित पद–निबन्ध का अभ्यास अवश्य हो जाता है । मैंने अनेक साहित्यकारों हैजलिट, लैम्ब, वड्र्सवर्थ, सर टामस ब्राउन, डीफो, हौथर्न, मौन्टेय, वाड्लेयर, ओवरमैन आदि की साहित्यिक कृतियों का अपनी रचनाओं में बड़े मनोयोग से अनुहरण किया है ।"

अस्तु, अंग्रेजी के उपर्युक्त साहित्यकार की उपर्युक्त अनुहरण–भावना में 'काव्य में अनुहरण' की प्रवृति की उपादेयता स्पष्ट प्रतीत होती है ।

राजशेखर ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि कोई 'अनुहरण' की इस प्रवृति को 'अपहरण' की भी चेष्टा कहे तो कवि और काव्य की कोई क्षति नहीं है क्योंकि इसमें 'पर–स्व' की लोलुपता की कोई बात नहीं । कोई ऐसा आज तक नहीं हुआ जो 'अनुहरण' की कला के बिना ही कवि बन गया हो[१] –

"नास्त्यचौरः कविजनो नास्त्यचौरो वणिञ्जनः ।
स नन्दति विना वाच्यं यो जाताति निगूहितुम् ।।
उत्पादककविः कश्चिद्य परिवर्तकः ।
आच्छादकस्तथा चान्यास्तथा सवर्गकोऽपरः ।।
शब्दार्थोक्तिषु यः पश्येदिह किञ्चन् नूतनम् ।
उल्लिखेत् किञ्चन् प्राच्यं मन्यतां स महाकविः ।।"

१. राजशेखर, काव्यमीमांसा, ११वां अध्याय

किसी कवि की कृत्ति पूर्ववर्ती कविकृत्ति में वर्णित शैली से समता रखने के कारण अधम नहीं मानी जा सकती है, ऐसे समय में यह कथनीय हो जाता है कि प्रकृतकाव्य में मार्मिक पक्ष का क्या चित्रण हुआ है? हां, यदि कवि ने वर्ण्यविषय के मर्मस्पर्शी स्थल को विवेच्य बनाया है, तो निःसन्देह वह कवि की रचना नूतन और उत्तमता समन्वित है, क्योंकि कभी–कभी ऐसा भी देखा गया है कि किन्हीं दो भिन्न काव्यों में समान पद वाक्य–अर्थ एवं शैली प्राप्त होती है, ऐसे ही उनमें भाव भी एक ही जैसे मिलने के कारण हम परस्पर में अनुकरण की बात नहीं सोच सकते । इसका समाधान है कि कभी–कभी एक ही जैसे उपर्युक्त चीजें या भावादि कई कवियों की कविताओं में मिलते देखे जाते हैं, जबकि उनमें देश–काल आदि का बड़ा अन्तराल होता है । इसी पक्ष में लोकश्रुति भी द्रष्टव्य है – "विशिष्ट बुद्धिवालों की प्रायः विचारधारायें एक ही जैसी होती है ।"[१] इस प्रकार चिन्तन–पद्धति की यह एकता मानवजाति में स्वभाव से पायी जाती है ।

कवि अपने काव्य–रचना के आरम्भिक क्षणों में पूर्वकालीन कवियों की कृतियों का अध्ययन करता है, फलस्वरूप जाने–अनजाने में उसकी कृति तत्प्रभावित हो जाती है ।

भट्टिकाव्य महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीय' और प्रवरसेन कृत 'सेतुबन्धन' या 'रावणवध' महाकाव्य से अधिक प्रभावित देखा जाता है । इसके अतिरिक्त अन्य काव्यों का भी अल्प प्रभाव कहीं–कहीं देखा जा सकता है ।

यमक काव्य में 'घटखर्पर' (घटकर्पर) कालिदास के समकालीन (४०० ई०) घटकर्पर द्वारा भी गीतिकाव्य–शैली में लिखा गया है । सम्भवतः इसकी प्रेरणा लेकर ही कविवर भट्टि ने अपने काव्य के दशम सर्ग में यमक के बीस भेदों के उदाहरणार्थ इक्कीस श्लोक दिये हैं ।[२] लेकिन गुणवत्ता के आधार पर भट्टि काव्यगत यमक–चर्चा पहला स्थान ग्रहण करती है और घटकर्पर दूसरा । यही कारण है कि विद्वतगण घटकर्पर की उपजीव्यता भट्टिकाव्य के पक्ष में नहीं स्वीकार करते हैं । इसमें यमक के केवल एक ही भेद "पादान्त–यमक" का उल्लेख २२ श्लोको में है, जबकि भट्टिकाव्य, जो यमक–काव्य की कोटि में भी आता है, इससे सर्वथा अतुलनीय है ।

अतः हम भट्टिकाव्य पर पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाव का वर्णन भारवि के 'किरातार्जुनीय' एवं प्रवरसेन के 'प्राकृतकाव्य' 'सेतुबन्धन' के आधार पर ही करेंगे ।

१. सेतुबन्ध और भट्टिकाव्य –

वाकाटक राजाओं के काल से ही समृद्ध प्राकृत–भाषा के प्रवरसेनकृत महाकाव्य 'सेतुबन्ध' से भट्टि पूर्णतया

---

१. "संवादास्तु, भवन्त्येव बाहुल्येन सुमधसाम् ।।" – काव्यमीमांसा, राजशेखर

२. गीतिकार घटकर्पर – घटकर्पर– गीतीकाव्य

प्रभावित रहे हैं । यही कारण है कि उन्होंने अपने काव्य का एक (त्रयोदश सर्ग) सर्ग प्राकृत–संस्कृत की समानता वाला जोड़ दिया है जो उनका व्याकरणेत्तर संभावित लक्ष्य प्रतीत होता है । इस सर्ग का नामकरण भी 'सेतुबन्धन' ही है । प्राकृतमहाकाव्य सेतुबन्धगत समुद्र–वर्णन की कल्पनायें स्पष्टतया इसके त्रयोदश सर्ग में परिलक्षित होती है । भट्टि ने सेतुबन्ध के प्राकृत छन्द 'स्कन्धक' का ही प्रयोग अपने काव्य के इस सर्ग में किया है, किन्तु डा० कीथ ने भट्टि के तेरहवें सर्ग में आर्या का 'गीति' नामक छन्द माना है, जबकि यहाँ 'गीति' छन्द नहीं है, प्राकृत का 'स्कन्धक' ही मान्य है ।[1] छन्दगत इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि जो संस्कृत–भाषा में आर्या का 'गीति' नामक छन्दभेद होता है, वही प्राकृत में 'स्कन्धक' नाम से जानने योग्य है । चूंकि त्रयोदश सर्ग में संस्कृत एवं प्राकृत का 'भाषासम' रूप है । अब हम सेतुबन्ध काव्य के उन वर्णनों को देखेंगे जिसका भट्टिकाव्य पर पूर्णतया प्रभाव पड़ा है ।

'सेतुबन्ध' प्रवरसेनकृत महाराष्ट्री प्राकृत का एक समृद्ध महाकाव्य है । इसमें १५ आश्वासक है (प्राकृत में सर्ग की जगह आश्वासक नाम दिया जाता है) जिसमें द्वितीय, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम एवं द्वादश आश्वासकों के संक्षिप्तरूपेण प्रभाव भट्टिकाव्यगत त्रयोदश सर्ग में देखे जाते हैं । इसके साथ ही दशम आश्वासकगत राक्षसियों की श्रृंगारिकता का प्रभाव भी भट्टिकाव्य के एकादश सर्ग के प्रभात–वर्णन में दर्शनीय हैं । सेतुबन्ध महाकाव्य के वर्ण्य विषय राक्षसी–स्वरूप, चन्द्रोदय, अग्निप्रज्जवल, समुद्रगतसर्पो का संचरण, सुबेल–वर्णन एवं श्रृंगारिकता आदि का तद्गत् काव्य में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, जबकि भट्टिकाव्य में इसका अतिसंक्षिप्त रूप ही द्रष्टव्य है । सर्वप्रथम राक्षसियों का श्रृंगारिक स्वरूप–साम्य ही वर्णित किया जाता है । सेतुबन्ध में नवोढ़ा राक्षसी की पति से समागम के समय की चेष्टायें इस प्रकार देखी जा सकती है[2] –

"कह वि समुहाणिअङ्के कह कहविं वलन्तचुम्बिओत्तमुहो ।
देइ खलन्तुल्लावे णववहुसव्येविसूरि अरअं पि धिइम् ।।"

भट्टि ने भी अपने प्रभातवर्णन में नवोढा वधू के पतिसमागम की श्रृंगारिक चेष्टाओं को इस प्रकार वर्णित किया है[3] –

"स्त्रस्ताऽङ्गयष्टिः परिरभ्यमाणा संदृश्यमानाऽप्युपसंहृताऽक्षी ।
अनूढमाना शयने नवोढापरोपकारैकरसैव तस्थौ ।।"

इस प्रकार सेतुबन्ध में प्रवरसेन के द्वारा हुए नवोढ़ा राक्षसी के समागम–वर्णन से यह भट्टि काव्यगत वर्णन

---

१. डा० कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास (अंग्रेजी), हिन्दी अनुवादक – डा० मंगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, प्रकाशन, पृ० १४५

२. प्रवरसेन, सेतुबन्ध, दसम आश्वासक/७६

३. भट्टिकाव्य, ११/१२

प्रभावित सा लगता है, क्योंकि श्रृंगारिक चेष्टायें समान भाव वाली ही है। अन्यत्र मानिनी स्त्री के श्रृंगारिक चित्रण दोनों काव्यें में क्रमशः द्रष्टव्य है, जिनमें एक जैसी श्रृंगारिक कल्पनायें देखी जाती है। यथा –

सेतुबन्ध – सासङ्विमुक्कमाणो बहुलुब्भिण्णपुलउग्गमेण पिआणम्।
पुरओहुत्तणिसण्णो गओणिअत्तीहअओ वितासिणिसत्थो ।।[1]

भट्टिकाव्य – सामोन्मुखेनाऽऽच्छुरिता प्रियेण दत्तेऽथकाचित्पुलकेन भेदे।
अन्तः प्रकोपाऽपगमाद्विलोला वशीकृता केवलविक्रमेण ।।[2]

अन्य स्थल जैसे नलादि के सहयोग से हो रहे समुद्रबन्धन कार्य में महासागर का पर्वतों से आच्छादित हो जाना आदि में कवि–कल्पना–साम्य इस प्रकार द्रष्टव्य है –

सेतुबन्ध – गअणम्मि उअहिसलिलं सललिविमुक्के रसाअलीम्मणहअलम्।
दीसइ तीसु वि समअं णहसलिलरसाअलेसुपष्वअजालम् ।।[3]

भट्टिकाव्य – ततः प्रणीताः कवियूथमुख्यैर्न्यस्ताः कृशानोस्तनयेन सम्यक्।
अकम्प्रब्रध्नाऽग्रनितम्बभागा महार्णवं भूमिभृतोऽवगाढ़ाः ।।[4]

रामशरसंधान से समुद्र सूख जाने पर जलतट पर संचरण कर रहे जलहस्ती और जल–सर्पों की स्थितिगत कल्पनासाम्य इस प्रकार है –

सेतुबन्ध – दन्तेसु वलिअलग्गा खोहुधित्थगअसंपहारूक्खित्ता।
करिमअराणभुअंगा पऽन्ति कालासमण्डलपडिच्छन्दा ।।
खुहिअसमुद्दत्थमिआ खुडेन्ति अक्खुडिअमअजलोज्झरपसरा।
चलणालग्गभुअंगे पासे व्वणिराअकडिढ्ए माअङ्गा ।।[5]

भट्टिकाव्य – सभयं परिहरमाणो महाऽहिसंचार–भासुर सलिलगणम्।
आरूढो लवणजलो जलतीरं हरिवलागमविलोलगुहम् ।।
वरवारणं सलिलभरेण गिरिमहीमण्डलसंवस्वारणम्।
वसुधारयं तुङ्गतरङ्गसंङ्गपरिहीणलोलवसुधारयम् ।।[6]

---

१. सेतुबन्ध, १०/७७
२. भट्टिकाव्य, ११/१४
३. सेतुबन्ध, ८/५८
४. भट्टिकाव्य, १३/२६
५. सेतुबन्ध, ८/४६, ४८
६. भट्टिकाव्य, १३/५, ७

सेतुबन्ध में चन्द्रोदय होने पर राम की विरहाग्नि के प्रज्जवलित हो जाने पर मूर्च्छा आदि आने से सम्बन्धित वर्णन आठ पद्यों में मिलता है ।[१]

जबकि भट्टिकाव्य में प्रारम्भिक एक श्लोक ही देखा जाता है ।[२] यहाँ राम की मूर्च्छा से चन्द्रकिरणों का अपार सहयोग देखा जाता है । प्रातः काल होने पर चंचल समुद्र के प्रति राम का क्रोध अकस्मात् बढ़ चला । उनके आग्नेय बाण से पृथ्वी संदेह को प्राप्त हो गई । समुद्र सूख गया । ऐसा यह वर्णन भट्टिकाव्यगत सात श्लोकों में है ।[३] जबकि सेतुबन्ध में यह प्रसंग–वर्णन लगभग ८० श्लोकों में चलता है ।

इस प्रकार उपर्युक्त स्थलों में अतिरिक्त समुद्र–निवेदन नलादि द्वारा समुद्रबन्धन युद्धगत तैयारी, वानरों का शत्रु–शक्ति–ज्ञान किया जाना एवं लंका में यत्र–तत्र चढ़ना आदि की कल्पनायें भट्टिकाव्य में अधिकांशतः मिलती है । फिर भी संक्षेपीकरण का प्राबल्य देखा जाता है । वस्तुतः यदि सेतुबन्ध से साम्य देखना है तो एकमात्र प्राकृतभाषा ही दर्शनीय है और वह भी संस्कृत के साथ में, जबकि सेतुबन्ध एकमात्र प्राकृत का काव्य है । हां, यह प्राकृत का सर्ग रखने की प्रेरणा वस्तुतः महाकवि भट्टि को इसी सेतुबन्ध काव्य से ही प्राप्त हुई हैं ।[४]

किरातार्जुनीय और भट्टिकाव्य –

किरातार्जुनीय महाकाव्य की श्रृंगारी प्रवृत्ति का ही प्रभाव भट्टिकाव्य पर देखा जाता है साथ ही द्रौपदी की युधिष्ठिर के प्रति राजनीतिपरक जो उक्तियाँ एक पतिव्रता नारी के रूप में वर्णित है, वैसी ही अपने भाई रावण के प्रति मिलती है । इतना ही नहीं । वनेचर की उक्ति और मारीच की उक्ति में भी साम्य देखा जाता है । अतः पहले द्रौपदी और शर्पूणखा की उक्तियों में ही भावसाम्य द्रष्टव्य है –

वनेचर से अवगत हुए महाराज युधिष्ठिर द्वारा अपने शत्रुकृत कार्यों को अपने भाइयों एवं द्रौपदी को बतलाया जाता है । फलतः द्रौपदी इन समाचारों से क्षुब्ध शत्रुओं की सफलता को न सह पाती हुई उनसे क्रोध और उद्योग को उदीप्त करने वाली वाणी कहती है कि आप जैसे लोगों से नारी जाति का कुछ कहना अपमानजनक है, फिर भी मैं शालीनता से पृथक् मनोव्यथा वाली हुई कुछ कहती हूँ[५] –

"निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृती, स्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा ।

---

१. सेतुबन्ध, ५/१ से ८ तक

२. भट्टिकाव्य, १३/१

३. वही, १३/२२ से ८ तक

४. सेतुबन्ध, ५/६ से ८७ तक

५. किरातार्जुनीय, १/२७, २८

नृपस्य मन्यु व्यवसायदीपनी, रूपाजहारद्रुपदात्मजा गिरः ।।
भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम् ।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां निरस्तनारीसमया दुराधयः ।।"

यह मर्यादा को ध्यान में रखकर कहा गया वचन है । इसी भाव को तुच्छनारी जाति के स्वभाव वाली शूर्पणखा, स्वयमेव, अपनी नासिका कटने एवं भाई खरदूषण के वध से व्याकुल होकर अभद्र रूप से रावण की सभा में हठात् जाकर खरदूषण के नाम ले लेकर रोने लगी और रावण को प्रतिहिंसा के लिये प्रेरित करने लग गयी –

"सम्प्राप्य राक्षससभं चक्रन्द क्रोधविह्वला ।
नामग्राहमरोदीत् सा भ्रातरौ रावणाऽन्तिके ।।
दण्डकानध्यवात्तां यौ वीर ! रक्षः प्रकाण्डकौ ।
नृभ्यां संख्येऽकृषातां तौ सभृत्यौ भूमिवर्धनौ ।।" [१]

द्रौपदी युधिष्ठिर को उद्दीप्त करने के लिए कहती है कि "इन्द्रतुल्य तेजस्वी आपने स्वयं प्रमादवश राजलक्ष्मी को त्याग दिया है, यह उचित नहीं । अतः मायावियों के साथ मायावी बनकर उनका मर्दन करना ही हितकर है, सख्तता ठीक नहीं होती । आपके अतिरिक्त राजलक्ष्मी को कोई स्थायित्व भी नहीं प्रदान कर सकता है । जो क्रोधावेशी नहीं होता, उसका लोग निरादर करते हैं । इसी प्रकार लगभग अग्रिम तेरह श्लोकों में राजनीतिगत बातों से द्रौपदी क्रोधोद्दीपन करती है ।[२] भट्टिकाव्य में शूर्पणखा उसी जैसे राजनीतिपरक आधार लेकर भाई रावण को फटकारती हुई कहती है कि "महाबली इन्द्र के प्रति तुम्हारी शत्रुता है और फिर इतनी प्रमादता में पड़े हो । गुप्तचरों की इतनी दुर्बलता है कि मैं आई न होती तो मेरी नाक कटने एवं भाई खरदूषण के मारे जाने की बात भी न जान पाते । आप विजिगीषु राजा नहीं है । नहीं, तो अपना अपमान कार्य क्यों न जानते ? अतः अब कायरता छोड़कर सचेष्ट हो जाओ, क्योंकि पुंश्चली स्त्री–तुल्य राजलक्ष्मी पति के पास में रहती हुई भी दूसरे को कपट से ताकती रहती है ।" [३] ये सब राजनीतिक भावकथन स्त्रीजातिगत द्रौपदी एवं शूर्पणखा द्वारा पुरुष जातिगत युधिष्ठिर और रावणके प्रति किये गये हैं । बहुत अधिक साम्य तो नहीं फिर भी उपर्युक्त आधारों पर तो समता द्रष्टव्य ही है । द्रौपदी के द्वारा मर्यादा को पूरा ध्यान में रखा गया है । लेकिन शूर्पणखा ने नहीं, क्योंकि द्रौपदी जानती है कि युधिष्ठिर एक सम्मानित व्यक्ति है और मैं एक पतिभक्ता नारी, जबकि शूर्पणखा राक्षसी और कुलटा है और राक्षसेश रावण परायी स्त्रियों के प्रति आकर्षित होने वाला । अतः रामप्रिया सीता का खूब आकर्षण–जन्य वर्णनकर उसे प्रतिहिंसा और प्रत्युपकार के लिए प्रेरित करती है

---

१. भट्टिकाव्य, ५/५ – ६

२. किरातार्जुनीय, १/२९ – ४२

३. भट्टिकाव्य, ५/७ से १७ तक

और कहती है कि "जिसने सीता का मुख नहीं देखा, अधरामृत का पान नहीं किया, उसके सुन्दर वचनों को नहीं सुना, उसकी इन्द्रियाँ व्यर्थ हैं ।"[१] जो कि इस रूप में कभी भी द्रौपदी के कथन से तुलनीय नहीं हैं । किरात में वनेचर की युधिष्ठिर के प्रति उक्ति का भाव एवं भट्टिकाव्य में मारीच का रावण के प्रति उक्तिभाव साम्य रखता है । यहाँ दोनों काव्यों में अपने अधिष्ठातृजनों के प्रति सत्यवचन का पालन किया गया, देखा जाता है, यही सद् अनुचरस्वरूप लोगों का उत्तमकार्य भी माना जाता है –

"स किंसखा साधुनशास्तियोऽधिपं, हितान्नयः संश्रृणुतेसक्रिंप्रभुः ।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेपूमात्येषु चसर्वसम्पदः ।।"[२]
"अन्तर्धत्स्व रघुव्याघ्रात् तस्मात् त्वं राक्षसेश्वरः ।
यो रणे दुरूपस्थानो हस्तरोधं दधद् धनुः ।।"[३]

भारवि वीर एवं श्रृंगार दोनों के कवि हैं । इनकी श्रृंगारिक प्रवृत्ति का प्रभाव भट्टि के एकादश सर्ग लंकागत प्रभातवर्णन पर पर्याप्त–रूपेण देखा जाता है । भट्टि ने लंकागत प्रभातवर्णन के श्रृंगारिक दृश्यभूत ३७ श्लोक ही रचे हैं, शेष श्रृंगारसाविष्ट नहीं है । भारवि के द्वारा अर्जुन के तपभङ्गार्थ इन्द्रकील पर्वत पर गन्धर्वों एवं अप्सराओं को भेजकर श्रृंगारिक वर्णन का सूत्रपात किया जाता है । इन्द्र से आदेश प्राप्त– अप्सरायें अनेक आकर्षण आभूषणों से सुसज्जित होकर स्तन–भारों से झुकी हुई एवं अत्यन्त भ्रूविक्षेप, कटाक्षपात आदि चेष्टाओं से सबको मोहित करती हुई इन्द्र को प्रणाम कर अर्जुन के पास इन्द्रकील पर्वत की ओर चल देती हैं –

"प्रणतिमथ विधाय प्रस्थिताः सद्मनस्ताः,
स्तनभारनतिताङ्गीरङ्गनाः प्रीतिभाजः ।
अचलनलिनक्ष्मीहारिनालं बभूव,
स्तिमितममरभर्तुर्द्रष्टुभक्ष्णां सहस्त्रम् ।।"[४]

इसी प्रकार मार्गगमन का मनोहर श्रृंगारिक वर्णन भी अच्छा बन पड़ा है । तेज पवन ने कामीपुरुष की भाँति उन सुररमणियों के जघनाच्छादी वस्त्रों को बारंबार उड़ाते हुए हटा दिया । फिर भी रत्नजटित करधनी से स्फुरण करते हुए विशाल अंशुसमूह से उनके जघनप्रान्त को लंहगे (साया) की तरह ढँक ही लिया । जिससे वे नग्नता से बच गई –

"संवातामुहुरनिलेन नीयमानेदिष्यस्त्रीजघनवशंशुकेविवृत्तिम् ।

---

१. भट्टिकाव्य, ५/१८, १६ एवं २२ तक

२. किरातार्जुनीय, १/५

३. भट्टिकाव्य, ५/३२

पर्यस्यत्पृथुमणिमेखलांशुजालंसञ्ज्ञे युतकमिवान्तरीयमूर्वोः ।।"[१]

अन्यत्र भी श्रृंगारिक स्थल देखे जा सकते । पुष्पचयन के अवसर पर एक अप्सरा अपने प्रिय के वार्तालाप में ध्यानावस्थित हुई एक टक देखने लगी और उसी की ओर मुख करके खड़ी हो गई । उसकी नीवी (स्त्री के कमर में दी हुई वस्त्र की गांठ) खिसक गई । वह उसे संभाल न सकी, "फूलों की भांति पल्लव–सदृश उसका हाथ ठीक नहीं पड़ रहा था" यह भी उसे ज्ञात न हो सका अर्थात् इतना वह उसके प्रेमालाप में आसक्त थी कि अपने आपकी भी उसे याद न रही –

"प्रियेऽपराच्छति वाचमुन्मुखीनिबद्धदृष्टिः शिथिलाकुलोच्चया ।
समादये नांशुकमाहितं वृथा विवेद पुष्पेषु न पाणि पल्लवम् ।।"[२]

किसी दूसरी सुराङ्गना ने प्रियतम के द्वारा दिये गए कोमल पत्तों से युक्त पुष्पालंकार को सिरपर धारण करती हुई निजवक्षप्रान्त की न्यूनता देख अपने मनोरम जघनों को दिखाकर प्रियतम को अपनी ओर आकृष्ट किया (अर्थात् खींच लिया) –

"सलीलमासक्लतान्तभूषणं समासजन्त्या कुसुमावतंसकम् ।
स्तनोपपीडं नुनुदे नितम्बिनाघनेन कश्चिज्जघनेन कान्तया ।।"[३]

यही नहीं, अन्य किसी अमराङ्गना ने, नितम्ब के भार से जिसकी नीवी का बन्धन ढीला पड़ गया था, जिसके युगल–स्तन वस्त्ररहित हो वक्षप्रान्त की शोभावृद्धि कर रहे थे और जिसके त्रिवलिविहीन कृश उदर पर रोमराजि स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थी, अपने प्रियतम के मन को फूलग्रहण करने के व्याज से आकर्षित कर लिया । इन्हीं बातों से नहीं, किन्तु पीठ पर कमर तक लटक रहे घुंघराले केशराशियों से तथा वक्षप्रदेश को खोल रखने के कारण भी अपने प्रियतम के मन को आकृष्ट कर लिया –

"कलत्रभारेणविलोलनीविनागलद् दुकूलस्तनशालिनौरसा ।
वलिव्यजायस्फुटरोमराजिनानिरायतत्त्वादुदरेण ताम्यता ।।
विलम्बमाना कुलकेशपाशया कयचिदाविष्कृतबाहूमूलया ।
तरूप्रसूनान्यपादिश्य सादरंमनोधिनाधस्यमनः समाददे ।।"[४]

स्नान के दृश्य का एवं गन्धर्वों और अप्सराओं की जलक्रीडादि का वर्णन अन्यत्र आकर्षक और हृदयग्राही

---

१. किरातार्जुनीय, ७/१४

२. वही, ८/१५

३. वही, ८/१६

४. वही, ८/१७, १८

दृष्टिगत होता है । इसी प्रसंग में एक मनोरम स्थल दर्शनीय है –

"प्रियेण संग्रभ्पविपक्षसंनिधावुपाहितां वक्षसि पीवरस्तने ।
स्त्रजं न काचिद्विजहौ जलापिलां वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा नवस्तुनि ।।" [१]

चंचल नेत्रवाली प्रियतमा का प्रियतम के द्वारा चुम्बन किये जाने पर उसकी नीवी खिसक चली और लज्जा के साथ ही साथ वस्त्र भी नितम्ब प्रान्त से हट गया । अभिप्राय है कि नितम्ब तो वस्त्रहीन हुआ ही, साथ ही लज्जा भी समाप्त हो गई –

"लौलदृष्टि वदनं दयितायाश्चुम्बति प्रियतमे रभसेन ।
व्रीडया सहविभीविनितम्बादंशुकं शिथिलतामुपपेदे ।।" [२]

प्रायः आलिंगन एवं चुम्बन के समय किये गये नखक्षत और दन्तक्षत मनोहारी प्रतीत होते हैं–

"आढ्तानरवपदैः परिरम्भाश्चुम्बितानिघनदन्तनिपातैः ।
सौकुमार्य गुणसंभृतकीर्तिवार्मएवं सुरेषूपि कामः ।।" [३]

यही श्रृंगारिक प्रवृत्तियाँ भट्टि के भट्टिकाव्यगत एकादश सर्ग (प्रभातवर्णन) में देखी जाती है, जिनमें लंका–ललनाओं के संभोग–श्रृंगार का अतिशयता के साथ महाकवि भट्टि ने वर्णन किया है । इस श्रृंगारिक प्रवृत्ति के प्रादुर्भूत होने का श्रेय भारवि के 'किरात' काव्य को ही जाता है । भट्टिकाव्य की ऐसी श्रृंगारिक प्रवृत्तियों के कतिपय स्थल इस प्रकार दिये जाते हैं, जिनके आधार पर भट्टि का आदान–आंका जा सकता है । यथा – प्रिय द्वारा गाढ़े रूप में आलिंगित स्त्री, शिथिल अंग–चेष्टावाली, नेत्रों को बन्द करने वाली और जिसका सम्पूर्ण विवेक नष्टप्राय हो चला है, फलस्वरूप एकमात्र श्रमजाल और रोमांच से ज्ञेय चेतना से युक्त हो गई –

"स्त्रस्तांऽङ्गचेष्टो विनिमीलिताक्षः स्वेदाऽम्बुरोमोद्गमगमम्यजीवः ।
अशेषनष्टप्रतिभापदुत्वो गाढोगूढो दयितैर्जनोऽभूत् ।।" [४]

धैर्यशालिनी फलतः कठोरता को ग्रहण करने वाली दूसरी रमणी भी चन्द्र के तुल्य प्रिय के हाथ से स्पर्श किये जाने पर सुखानुभूति वाली हुई विकारयुक्त चित्त से चन्द्रकान्तमणि के सदृश तत्काल स्त्रवित स्वेदजल से युक्त हो गई –

---

१. किरातार्जुनीय, ८/३७
२. वही, ६/४७
३. वही, ६/४६
४. भट्टिकाव्य, ११/६

"गुरुर्दधना परुषत्वमून्या कान्ताऽपि कान्तेन्दुकराऽभिमृष्टा ।
प्रहलादिता चन्द्रशिलेव तूर्णं क्षोभात्स्त्रवत्स्वेदजला बभूव ।।" [१]

संभोग समय में रात्रिकाल अति अल्प प्रतीत होता है । किरात के जैसे ही भट्टिकाव्य में भी ऐसे श्रृंगारिक वर्णन द्रष्टव्य हैं । रमणी और रमणों का समूह एक दूसरे से सन्तुष्ट न होकर अल्पकाल में ही रात्रि के बीतने का अनुभव करने वाले के जैसे होकर उत्कण्ठा के साथ पराधीन व्यक्ति के समान शयनगृह से बड़ी मुश्किल से निकला –

"अवीततृष्णोऽथ परस्परेण क्षणादिवाऽऽयातनिशाऽवसानः ।
दुःखेन लोकः परवानिवाऽगात्सुमुत्सुकः स्वप्ननिकेतनेभ्यः ।।" [२]

समागम काल में अनजाने भाव से दन्त से हुए, प्रातः काल में जाने गये व्रणों से संभोगशील जन (स्त्री और पुरुष) ने भी अतिशय प्रेम से आपस में परस्पर के अपराध की आशंका की –

"क्षतैरसंचेतितदन्तलब्धैः संभोगकालेऽवगतैः प्रभाते ।
अशङ्कताऽयोन्यकृतं व्यलीकं वियोगबाह्यीऽपि जनोऽतिरागात् ।।" [३]

कामातुर जन प्रेम की उत्कृष्ट अवस्था में पहुंचने पर ज्ञान–शून्य होता हुआ अविवेक पूर्वक किये गये अपने से अद्भूत भी नरवक्षत और दन्तक्षत आदि बातों को ध्यान में नहीं लाता अर्थात् ये सारी बातें सुखद ही अनुभव करता है –

"गतेऽतिभूमिं प्रणये प्रयुक्ता–न बुद्धिपूर्वं परिलुप्तसंज्ञः ।
आत्माऽनुभूतानपि नोपचारान् स्मराऽऽतुरः संस्मरति स्म लोकः ।।" [४]

भट्टिकाव्य में इसी प्रकार के श्रृंगाररसाविष्ट एकादश सर्गगत ३७ श्लोक देखे जाते हैं, जिनमें प्रायः सभी दृश्यों के श्रृंगारिक वर्णन की प्रवृत्ति भारवि की श्रृंगारिक प्रवृत्ति से प्रभावित लगती है ।

किरातार्जुनीयम् के ग्राम्यजीवन के कुछ स्थल जैसे गायों की चेष्टायें, धान की बालों का वर्णन एवं दधिमंथन नृत्यादि का भट्टिकाव्य में प्रभाव देखा जाता है । किरात में गायचेष्टा, गोपालकों एवं गोपिकाओं के सहज स्वभाव का वर्णन भारवि द्वारा देखिए –

---

१. भट्टिकाव्य, ११/१५

२. वही, ११/१७

३. वही, ११/२५

४. वही, ११/२६

"विलन्वतस्तस्य शरान्धकार त्रस्तांनिसैन्यानि स्वंनिशेमुः ।
प्रवर्षतः संततवेपथूनि क्षपायनस्येव गवां कुलानि ।।" [१]

अर्जुन ने गायों के पास ही ग्वालों को देखा । वे साथ ही जन्म लेने के कारण गायों के कुटुम्बों से लगते थे । घर से कहीं अधिक उन्हें कानन प्यारा लगता था । स्वभावगत सरलता तो, मानो वे गायों के साथ रहने से ही सीख रहे थे –

"गतान्यशूंनांसहजन्मबन्धूतां गृहाश्रयं प्रेमवनेषुविभ्रतः ।
ददर्श गोपानुपधेनुपाण्डयः कृतानुकारानिवनोभिरार्जवे ।।" [२]

अर्जुन नृत्य करती हुई वार–वनिताओं के जैसे गोपिकाओं को निर्निमेष दृष्टि से देखने लगे । गोपिकाओं के मुखमण्डल पर बिखरी केशराशि भ्रमरादि सरीखी जान पड़ती थी । मन्द–मुस्कान से पुष्पराग–तुल्य दशन–पक्तियाँ दृष्टिगत हो रही थी । हिलते हुए कान–कुण्डलों की कान्ति से मुखमण्डल भी चमकता हुआ दृष्टिगत होता है । इस प्रकार यह दृश्य प्रभातकालीन सूर्य की किरणों के सम्पर्क से खिले हुए कमल की जैसी शोभा को धारण कर रहा है । यथा –

"परिभ्रमन् मूर्धजषटपदाकुलैः स्मितौदयादर्शितदन्तकेसरैः ।
मुखैश्चलत्कुण्डलरश्मिरेजितैर्नवातपामृष्टसरोजचारुभिः ।।" [३]

भट्टि को भी ग्राम्य–जीवन बड़ा रूचिकर लगता था । यही कारण है कि वे ग्राम्यजीवन के अन्तर्गत गोशाला, गोपालक एवं गोपालिकाओं के स्वभाव वर्णन से यह बात स्पष्ट ही करते हैं । वियोग दुःखानुभाव से अनभिज्ञ, समय पर उचित राजकर देने वाले, केश–सजावट आदि कृत्रिम शोभा से रहित, छलकपट से शून्य पुरुषों से भरी गोशालाओं को राम ने देखा [४] –

"वियोगदुःखाऽनुभवाऽनभिज्ञैः काले नृपांऽशं विहितं ददद्भिः ।
आहार्यशोभारहितैरमायैरैक्षिष्ट पुम्भिः प्रचितान्स गोष्ठान् ।।" [५]

गोपियों के भूषण स्वरूप गंभीर–चेष्टा व्यापार, सीधे सुन्दर नेत्र, सीधा स्वभाव आदि देखकर रामचन्द्र जी बड़े प्रसन्न हो रहे हैं –

"स्त्रीभूषणं चेष्टितमप्रगल्भं, चारुण्यवक्राण्यपि वीक्षितानि ।

---

१. किरातार्जुनीयम्, १७/२०

२. वही, ४/१३

३. वही, ४/१४

४. भट्टिकाव्य, २/१४

ऋजूंश्च विश्वासकृतः स्वभावान्, गोपङ्गनानां मुमुदे विलोक्य ।।"[1]

भारवि ने अर्जुन की ग्राम्यजीवन के प्रति आकर्षणजन्य अनुभूति से धान की झुकी बालों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है –

"तुतोषपश्यन्कलमस्य सोऽधिकं सवारिजे वारिणिरामणीयकम् ।
सुदुर्लभे नार्हति कोऽभिनन्दितुं प्रकर्षलक्ष्मीमन ।।"

इसकी ही अनुकृति पर भट्टिकाव्य में धान के फसलों का सुमनोहर दृश्य इस प्रकार है –

"दिग्व्यापिनीर्लोचनलोभनीया, मृजान्वयाः स्नेहमिवस्त्रवन्तीः ।
ऋज्वायताः सस्यविशेषपङ्कतीस, तुतोष पश्यन्वितृणाऽन्तरालाः ।।"[2]

अर्थात् राक्षसवधार्थ वनप्रयाण में राम सभी दिशाओं में फैली, नेत्रों के लिए आकर्षणजन्य अच्छी जाति की, मानों कि स्नेह की बरसात कर रही हो, ऐसी सीधी खड़ी और बहुत लम्बी बासमती आदि धानों के पौधों की पक्तियों को देखते हुए अतिशय प्रसन्न हुए ।

भारवि ने 'दधिमंथनृत्य' के दर्शन से अर्जुन को अतिप्रसन्न किया । यह मनोहारी नृत्य तीन श्लोकों में भारवि ने इस प्रकार वर्णित किया है । यथा –

"निबद्धानिःश्वासविकम्पिताधरा लताइवप्रस्फुरितैकपल्लवाः ।
व्ययोढपाश्वैर्रपवर्तितत्रिकाः विकर्षणैः पाणिविहार हारिभिः ।।
व्रजाजिरेष्वम्बुदनादशङ्किनी शिखण्डिनामुन्मदयत्सुयोषितः ।
मुहुः प्रणुन्नेषुमथा विवर्तनैर्नदत्सु कम्भेषुमृदङ्ग मन्थरम् ।।
स्व मन्थरावल्गितपीवरस्तनीः परिश्रमक्लान्तविलोचनोत्पलाः ।
निरीक्षितुं नोपरराामपल्लवीरभिश्रृता इव वारयोषितः ।।"[3]

इसी दधि–मन्थन नृत्य का अनुकरण भट्टिकाव्य में मात्र एक श्लोक में द्रष्टव्य है[4] –

"विवृत्तपार्श्व रूचिराङ्गहारं समुद्वहच् चारूनितम्बरम्यम् ।
आमन्द्रमन्थध्वनिदत्ततालं, गोपाऽङ्गनानृत्यमनन्दयत्तम् ।।"

---

१. किरातार्जुनीय, ४/४

२. भट्टिकाव्य, २/१३

३. किरातार्जुनीय, ४/१५, १६, १७

४. भट्टिकाव्य, २/१६

अभिप्राय है कि दधिमन्थन के समय खुले हुए पार्श्वभागों के घूमने से सारे अङ्गों का घूमना एवं हिलना मनोहारी प्रतीत होता है । उसमें भी मनोरम नितम्बभाग का हिलना तो अतिशय आनन्ददायी हो जाता है । दधिमन्थन का गम्भीरघोष, जिसमें ताल देने जैसे लगता है । ऐसे गोपिकाओं के दधिमन्थन नृत्य ने रामचन्द्र को अति आनन्दित किया है ।

महाकवि भट्टि द्वारा प्रयुक्त सूक्तियाँ भी पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित दिखाई पड़ती हैं । कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है –

वाल्मीकि रामायण में इन्द्रजित् का कथन कि "शत्रुओं को जिससे पीड़ा हो वही कार्य करना चाहिए ।" यथा–

"पीडाकरममित्राणांयञ्चकर्त्तव्यमेव तत् ।" [१]

भट्टिकाव्य में यही उक्ति देखिए –

"पीडाकरममित्राणां कर्त्तव्यमिति शक्रजित् ।" [२]

अर्थात् "शत्रुओं को जिससे दुःख हो वह कार्य करना चाहिए ।"

महान् नाटककार कालिदास के 'विक्रमोवर्शीय" नाटक की उक्ति २/१६ भट्टिकाव्य के द्वादश सर्ग की निम्नांकित उक्ति से बहुत मेल खाती है [३] –

"रामोऽपि दाराऽऽहरणेन तप्तो, वयं हतैर्बन्धुभिरात्मतुल्यैः ।
तप्तस्य तप्तेन यथाऽऽयसौनः, सन्धिःपरेणाऽस्तु विमुञ्च सीताम् ।।"

अर्थात् राम अपनी सीता के हरण हो जाने से सन्तप्त हैं, हम भी अपने ही जैसे सामर्थ्य वाले अक्षकुमार आदि भाइयों के मरण से सन्तप्त हैं । अतः सन्तप्त लोहे की सन्तप्त लोहे के साथ जैसे सन्धि होती है, ठीक उसी तरह हम लोगों की भी शत्रु राम से सन्धि होवे, इसलिए राजन्! सीता को छोड़ दें । यह विभीषण की रावण के प्रति उक्ति है ।

भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्यान्तर्गत वनेचर की उक्ति युधिष्ठिर के प्रति देखिए [४] –

---

१. आदिकवि वाल्मीकि, रामायण, युद्धकाण्ड, ८१/२८ उत्तरार्द्ध

२. भट्टिकाव्य, १७/२२ पूर्वार्द्ध

३. वही, १२/४०

४. किरातार्जुनीय, १/२३ चतुर्थ चरण

अहो दुरन्ताबलवद्विरोधिता [1]

प्रबलों के साथ विरोध करने का फल दुखान्त होता है । इसी उक्ति का साम्यरूप स्थल भट्टिकाव्य में देखने योग्य है –

माऽऽरब्धाः बलिविग्रहम् [2]

मारीच रावण के प्रति उपदेश देते हुए कहता है कि बली के साथ विरोध न करो (क्योंकि यह अमंगलकारी होता है, इससे आपकी जीवन–लीला समाप्त हो सकती है ।)

अपने रूपलावण्य के प्रति अर्जुन को आकर्षित न देख एक अप्सरा का कथन है – "हे तपस्विन् ! यदि तुम्हारे हृदय में शान्ति का निवास है तो फिर धनुष क्यों धारण किये हो ?

"यदिमनसिशमः किमङ्गचापंशठविषयास्तव बल्लभानमुक्तिः ।
भवतु दिशति नान्यकामिनीभ्यस्तव हृदयेश्वरावकाशम् ।।" [3]

ऐसी ही उक्ति भट्टि ने लङ्काललना के प्रति उसके प्रियतम द्वारा कहलायी है कि – हे कुटिले ! साम से मुझ जैसे प्रेमी के जीते जाने पर भी असह्य धनुषसदृश भ्रू को क्यों तुमने उठाया ? अर्थात् जब मैं शान्ति के द्वारा ही तुमसे अपने आप जीता गया । तब फिर धनुषाकार भौहों से देखने का क्या प्रयोजन ?

"साम्नैव लोके विजितेऽपि वामे
किमुद्यतं भ्रूधनुरप्रसह्यम् ।
हन्तुं क्षमो वा वद लोचनेषु –
दिग्धो विषेणेव किमञ्जनेन ।।" [4]

इस प्रकार यहाँ किरात की उक्ति 'यदि मनसिशमः किमङ्गचापम्' का भट्टिकाव्य की उक्ति 'साम्नैवलोकेविजितेऽपिकामे किमुद्यतं भ्रूधनुरप्रसह्यम्' साम्य स्पष्टतया दृष्टिगत होता है ।

---

१. भट्टिकाव्य, ५/३८ चतुर्थ चरण

२. किरातार्जुनीय, १०/५५

३. भट्टिकाव्य, ११/३२

परवर्ती काव्यों पर भट्टिकाव्य का प्रभाव

भट्टि के द्वारा श्रृंगारिकता को इतना बढ़ावा दिया गया है कि भट्टिकाव्यगत एकादश सर्ग लंकागत–वर्णन का स्वरूप परवर्ती माघकाव्य में स्पष्टतया देखा जा सकता है । ऐसे ही उनका संस्कृत और प्राकृत का 'भाषासमश्लेष' के माध्यम से एक साथ प्रयोग भी नितान्त नवीन प्रयोग है, जिसका 'शिवस्वामिन्कृत' – 'कफि्फणाभ्युदयं' काव्य के उन्नीसवें सर्ग पर पर्याप्त प्रभाव दर्शनीय है ।

भट्टिकाव्य में प्रयुक्त नवीन प्रयोग जैसे – व्याकरणात्मक शैली, यमक–अलंकार, भाषा–सम इत्यादि का परवर्ती कवियों पर प्रभाव निम्नलिखित विवेचन से स्पष्ट हो जाएगा –

१. अभिनव–काव्यमयी व्याकरणात्मक शैली का परवर्ती कवियों पर प्रभाव –

भट्टिकाव्य द्वारा व्याकरणात्मक शैली के काव्य का निर्माण करने की परम्परा को अग्रसर करने में अनेक कवि वर्तमान शताब्दी के मध्य तक हो चुके हैं ।

(क) रावणार्जुनीय –

भट्टिभौम या भूमक द्वारा रचित 'रावाणार्जुनीय' महाकाव्य भट्टिकाव्य की परम्परा को अग्रसर करने वाली काव्यों में उल्लेखनीय है । इसमें २७ सर्ग हैं । इस महाकाव्य की विशेषता यह है कि भट्टि के सदृश ही इसमें अष्टाध्यायी के सूत्रों का यथाक्रम अनुसरण करके उदाहरणों द्वारा व्याकरण की शिक्षा का लक्षण पूरा किया गया है । वैदिक प्रकरण भट्टि के समान ही नहीं वर्णित है ।

(ख) कविरहस्य –

भट्टि भौमक के अनन्तर इस परम्परा को पल्लवित करने का श्रेय हलायुध कवि को उनकी कृति 'कविरहस्य' के लिए प्राप्त है । इसमें राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय की प्रशस्ति के बहाने से धातुरूपों का प्रदर्शन किया गया है । इसमें ३०० के लगभग श्लोक हैं ।[१]

(ग) वासुदेवविजय –

वासुदेव कवि का 'वासुदेवविजय' काव्य लघुकाव्य होकर भी इस विषय में बड़ा ही उपादेय सिद्ध हुआ है । इसमें पाणिनीय अष्टाध्यायी को लक्ष्यकर क्रमानुसार लौकिक उदाहरणों के सिद्धरूप प्रदर्शित किये गये हैं ।

---

१. "लोकेषुशास्त्रेषुचयेप्रसिद्धाः काव्येषुयेसत्कविभिः प्रयुक्ताः ।

उद्श्रृत्य तांश्चित विनोदनीयशब्दानहं धातुभिरूद्धसभि ।।" – कविरहस्य/२

सम्पूर्ण अष्टाध्यायी के सूत्रों को चार ही भागों में विभक्त किया गया है । यथा –

१. प्रथम तथा द्वितीयाध्यात्मक, २. तृतीयाध्यात्मक, ३. चतुर्थपंचमाध्यात्मक और ४. षष्ठ, सप्तम एवं अष्टध्यात्मक ।[1]

इसमें व्याकरणशास्त्र के पाण्डित्य का अनुमान सहज रूप से तीन ही सर्गों में समग्रलोकोपयोगी अष्टाध्यायी सूत्रों के समावेश के आधार पर लगाया जा सकता है ।

(घ) धातुपाठ –

इसके बाद धातुकाव्य में नारायण भट्ट की "धातुपाठ" (भीमसेन विरचित) के क्रमानुसार १६४४ धातुओं के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं । यह काव्य भी मात्र चार सर्ग का लघुकाव्य है । कथानक भागवत से लिया गया है । अक्रूर की यात्रा का वर्णन करते हुए कंसवध तक के कथानक के व्याज से नारायण भट्ट ने धातु रूपों का आदर्श प्रस्तुत कर सफलता अर्जित की है ।

(ङ) कंसवध महाकाव्य –

भट्टिकाव्य से ही प्रेरित होकर मोहन भट्ट ने 'कंसवध' महाकाव्य की रचना की है, जो आज तक अप्रकाशित है । इस महाकाव्य में प्रक्रियाग्रन्थ के अनुसार वर्गीकरण का आश्रय लेकर प्रकरण–विभाग के अनुसार व्याकरणशास्त्र का निर्वचन किया गया है । यह १७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का २१ सर्ग का महाकाव्य है ।

इन काव्यशास्त्रों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों का भी उल्लेख प्राप्त होता है –

१. दशाननवधकाव्य, २. लक्षणादर्श, ३. यदुवंशकाव्य, ४. सुभद्राहरण तथा ५. पाणिनीयप्रकाश ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महाकवि भट्टि से मिली प्रेरणा के आधार पर ही व्याकरण–शिक्षण को सरल एवं सरस बनाने के लिए अनेक कवियों द्वारा यथासम्भव प्रशंसनीय कार्य किये गये हैं ।

२. यमक–काव्यगत प्रभाव –

दण्डी ने यमक के अनेक प्रकारों का वर्णन अपने 'काव्यादर्श' में किया है । इसी युग में महाकवि भट्टि ने अपने काव्य में बीस भेद (२१ श्लोक) यमक के प्रस्तुत किए हैं ।

एक ही महाकाव्य में दो कथानकों का वर्णन करने वाले महाकाव्य भट्टिकाव्य की इस यमककाव्यगत

---

१. ग्रन्थकार द्वारा रचित प्रकृतकाव्य की 'पदचन्द्रिका' टीका श्लोक/२

विशेषता से प्रभावित देखे जाते हैं । उनमें धनंजय का 'पावर्ती–रूक्मणीय', हरिदत्त सूरि का 'राघवनैषधीय', कविराज सूरि का 'राघवपाण्डवीय' आदि विशिष्ट स्थान रखते हैं ।

घटकर्परकृत 'घटकर्पर' गीतिकाव्य का यमक प्रधान काव्यों में महत्त्व की दृष्टि से भट्टिकाव्य के पश्चात् दूसरा स्थान है । कवि घटकर्पर के यमककाव्य 'घटकर्पर' की रचनात्मक कुशलता एवं काव्यान्त में उसकी गर्वोक्ति भी इस प्रकार दर्शनीय है –

"भावानुरक्त वनितासुरतैः शपेयम्,
आलभ्य चाम्बु तृषितः करकोशपेयम् ।
जीयेय येन कविना यमकैः परैण,
तस्मै वहेयमुदकं घटकर्परेण ।।"[१]

अर्थात् मैं भावों से अनुरक्त पत्नी के साथ विहित प्रणय लीलाओं की शपथ लेता हूँ और प्यासा होकर पेयजल को अंजलि में लेकर शपथ–पूर्वक घोषणा करता हूँ कि जिस किसी कवि द्वारा यदि यमक अलंकार के प्रयोग में पराजित किया जांऊ तो अवश्य ही उसके लिए मिट्टी के खप्पर में जल लेकर जाऊंगा अर्थात् उसका सेवक रूप हो जाऊंगा ।

एकादश शती के पूर्व ही नीतिवर्मन का 'कीचकवध' काव्य भी इसी शैली में लिखा गया काव्य है, जिसमें महाभारत की कथा के अन्तर्गत भीम द्वारा हुए कीचक–वध को पांच सर्गों में वर्णित किया गया है । जिसके चार सर्गों में यमक का दिग्दर्शन कवि द्वारा किया गया है । एकमात्र तृतीय सर्ग में श्लेष का प्राधान्य देखा गया है ।

इसके अनन्तर द्वितीय यमक की प्रधानता वाला महाकाव्य वासुदेव विरचित 'युधिष्ठिरविजय' प्राप्त होता है । जिसमें पौराणिक शैली का अनुसरण करते हुए महाभारत की कथा का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया गया है । इसमें सर्गों के स्थान पर आठ आश्वासों का प्रयोग मिलता है । इसमें पाण्डु के मृगयावर्णन से प्रारम्भ होकर महाभारत विजय के पश्चात् युधिष्ठिर के राज्याभिषेक तक की कथा देखी जाती है ।[२]

इस प्रकार बाद के यमक प्रधान काव्यों को यमक–वर्णन की प्रेरणा भट्टिकाव्य से ही मिली । यह काव्य इतना लोकप्रसिद्ध हुआ कि सुदूरपूर्व जावा और बाली तक में इसका प्रचार–प्रसार देखा गया है । ह्यकास के

---

१. घटकर्पर, २२

२. द्रष्टव्य – डॉ० केशवराव भुसलगांवकर, संस्कृत महाकाव्य परम्परा कालिदास से श्रीहर्ष तक । १२वीं शती, अष्टम अध्याय, नेमिनिर्माण शीर्षक के अन्तर्गत, पृ० ५१४

अनुसार पुराना जावनीज रामायण ५६ प्रतिशत भट्टिकाव्य से प्रभावित रहा है ।[1]

३. भाषा–सम प्रयोग का प्रभाव –

भट्टिकाव्य के त्रयोदश सर्ग (जो भाषासम–संस्कृतप्राकृत भाषा में है) को पढ़कर एवं उससे प्रेरित होकर शिवस्वामिन् ने 'कप्फिणाभ्युदय' महाकाव्य की रचना की। यह महाकाव्य अवदानशतक पर किंचित् परिवर्तनों के साथ आधारित देखा जाता है । इसमें २० सर्ग हैं । इनका उन्नीसवां सर्ग संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में लिखित है । जो भट्टिकाव्य के तेरहवें सर्ग से पूर्णतया प्रभावित लगता है । इस काव्य में भी महाकवि द्वारा स्वयं प्रशस्ति की नियोजना की गई है । यथा – भट्टि ने भट्टिकाव्य में अपने वंश का परिचय दिया है –

"काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां श्रीधरसूनुनरेन्द्रपालितायाम् ।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य प्रेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम् ।।"[2]

ठीक इसी उद्देश्य को लेकर शिवस्वामिन् ने भी अपने नामादि का परिचयात्मक उल्लेख किया है ।[3] उन्होंने अपने प्रशस्ति के चतुर्थ पद्य मे अपनी रचना को अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए दीपक तथा विरोधियों की वाणियों को अवरूद्ध करने का प्रबल एवं सफल साधन माना है ।[4] पुनः कवि के द्वारा स्वयं को अनेक कथाओं का ज्ञाता, चित्रकाव्य का उपदेशक, यमककवि तथा मृदु और रसस्यन्दिनी वाणी का गायक कहा गया है ।[5] ये सब स्थल पूर्णरूपेण भट्टिकाव्य के निजप्रशस्ति स्थल से प्रेरित हैं ।

भट्टि ने अपने काव्य की रचना शिवजी की प्रेरणा से ही की है । तो शिवस्वामी ने भी अपने काव्य की रचना करके उसे शिवचरणों में समर्पित किया है । इस प्रकार शिवस्वामी पूर्णतया भट्टि से प्रभावित हैं ।

४. भट्टिकाव्य का माघ (शिशुपालवध) पर प्रभाव –

भट्टिकाव्य की व्याकरणात्मक प्रवृत्ति का माघकृत 'शिशुपालवध' महाकाव्य पर पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । 'सामान्य भूतेलुङ्' 'यङलुगन्त' क्रियापद तथा अन्य पाणिनिसंमत प्रयोग माघ ने भट्टि की प्रेरणा से ही अपने काव्य में प्रयुक्त किये हैं ।

---

१. द्रष्टव्य – सत्यपालनारंग, भट्टिकाव्य एक अध्ययन (अंग्रेजी) पृ० ११६ –ह्यकास, किश्चयन, ओल्ड जावनीज रामायण, एनइकजेस्लरी, कक्वीन न्येहालैण्ड, १८५८, पृ० २, ३, ६८ – ७०

२. भट्टिकाव्य, २२/३५

३. कप्फिणाभ्युदयप्रशस्ति, २०/४३, ४४

४. वही, २०/४६

५. भट्टिकाव्य, १/१ प्रथम चरण

'सामान्य भूतेलुङ्' का प्रयोग भट्टि ने इस प्रकार अपने महाकाव्य के आरम्भ में किया है –

"अभून्नृपो विबुधसखः परन्तपः ।।"

वह 'अभूत' पद–प्रयोग लुङ्लकार में 'सामान्यभूत' अर्थ में हुआ है, जिससे प्रेरणा प्राप्त कर माघ द्वारा प्रस्तुत कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं [१] –

१. तमर्ध्यमध्यादिकयादिपुरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत् ।

२. स्वहस्तदत्तेमुनिमासनेमुनिश्चिरन्तनस्तावदभिन्यवीविशत् ।

यहाँ पर क्रमशः पर्यपूजत्, अभिन्यवीविशत् प्रयोग लुङ्लकार में सामान्यभूत अर्थ में है ।

इसी प्रकार 'यङ्गलुगन्त' के कुछ पद–प्रयोग इस प्रकार हैं – पारेजलम् [२] तथा मध्येसमुद्रम् [३]

इसके अतिरिक्त भट्टि के द्वारा लोट् लकार के प्रयोग 'क्रियासमभिहारेलोट्लोटोहिस्वो वा च तन्ध्वमोः' [४] के आधार पर किये गये है, उनका भी प्रभाव माघ महाकाव्य पर देखा जाता है । भट्टि का प्रयोग इस प्रकार है–

"त्वं पुनीहि पुनीहीति पुनन्वायो ! जगत्–त्रयम् ।
चरन् देहेषु भूतानां विद्वि मे बुद्धिविप्लवम् ।।" [५]

यहाँ पुनीहि, पुनीही, विद्वि आदि प्रयोगों की छाप शिशुपालवध में इस प्रकार दृष्टिगत होती है –

"पुरीमवस्कन्द जुनीहिनन्दनमुंषाणरत्नानि हरामराङ्गनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषाबली, य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ।।" [६]

इसमें अवस्कन्द, जुनीहि, मुषाण, हर इत्यादि पद–प्रयोग भट्टिकाव्य के परिणामस्वरूप ही है इस प्रकार शिशुपालवध में भट्टिकाव्य की व्याकरणात्मक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है ।

---

१. शिशुपालवध, १/१४ पूर्वार्द्ध, १/१५ उत्तरार्द्ध

२. वही, ३/७०

३. वही, ३/३३

४. पाणिनी, अष्टध्यायी, ३/४/२

५. भट्टिकाव्य, २०/२६ – ३४ तक द्रष्टव्य

६. शिशुपालवध, १/५१

व्याकरणात्मक प्रभाव के अतिरिक्त भट्टिकाव्य के भावसाम्य–स्थल भी महाकाव्य में देखे जा सकते हैं। भट्टि में एकादश सर्ग में रावण के सिंहासनारोहण के अवसर पर उसके शरीर के लिए मेघ को और सिंहासन पर आरूढ़ हो जाने पर उस सिंहासन के लिएं सुमेरूपर्वत को उपमान बनाया है[१] –

"जलद् इवतडित्वान् प्राज्यरत्नप्रभाभिः
प्रतिककुभमुदस्यन् निस्वनं धीरमन्दम् ।
शिखरमिव सुमेरोरासनहैसमुच्चै –
र्विविधमणिविचित्रं प्रोन्नतंसोऽध्यतिष्ठत् ।।"

माघ के द्वारा 'शिशुपालवध' में श्रीकृष्ण के सिंहासनारोहण के अवसर पर उनके शरीर की उपमा हेतु उपमान रूप में नये बादल और सिंहासनारोहण हो जाने पर स्वर्णमय सिंहासन में सुमेरूपर्वत तुल्य ही कल्पना की गई है। इस प्रकार भट्टि के उपर्युक्त स्थल का यहाँ पूर्णतया प्रभाव दृष्टिगत होता है। यथा[२] –

"सकाञ्चनेयत्र मुनेरनुज्ञया· नवाम्बुदयश्यामवपुर्न्यविक्षत ।
जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं, सुमेरूश्रृङ्गस्य तदा तदासनम् ।।"

इसक अतिरिक्त भट्टिकाव्य के एकादश सर्ग में प्रभात वर्णनगत श्रृंगारिकता की स्पष्ट छाप शिशुपालवध की 'श्रृंगारिक प्रवृत्तियों पर दिखाई देती है, जिससे श्रृंगारिक स्थलों के भावसम्यादिगत कतिपय स्थल बहुत प्रभावोत्पादक रहे हैं। भट्टि ने प्रभात–वर्णन के अन्तर्गत प्रेमी–प्रेमिकाओं का प्रणय चित्र इस प्रकार अपनी बौद्धिक तुलिका से रंगे हैं, यथा[३] –

"मानेन तल्पेष्वयथामुखीनाः मिथ्याप्रसुप्तैर्गमितत्रियामाः ।
स्त्रीभिर्निशाऽतिक्रमविह्वलार्भिदृष्टेऽपि दोषे पतयोऽनुनीताः ।।

माघ ने ऐसा ही प्रणयकोप का श्रृंगारिक चित्रण किया है[४] –

"अनुनयमगृहीत्वा व्याजसुप्तापराची, रूतमथकृकवाकोस्तारमाकर्ण्यूकल्पे ।
कथमपिपरिवृतानिद्रयान्धाकिलस्त्रीमुकुलितनयनैवाश्लिष्यतिप्राणनाथम् ।।"

अर्थात् दूसरी ओर मुख करके शैय्या पर सोई हुई पति के मनाने से मानने वाली पत्नी प्रातः मुर्गे की जोर–जोर की आवाज सुनकर करवट बदलकर नींद से माती हुई सी आंखे बन्द किये ही पति की बाहों में

---

१. भट्टिकाव्य, ११/४७

२. शिशुपालवध, ११/१६

३. भट्टिकाव्य, ११/४

४. शिशुपालवध, ११/६

सिमट रही है ।

भट्टि ने लंकाललनाओं का रात्रिकालीन सुरतचित्रांकन इस प्रकार किया है कि[1] –

"वक्षः स्तनाभ्यां मुखमाननेन गात्राणि गात्रैर्घटयन्नमन्दम् ।
स्मराऽऽतुरो नैव तुतोष लोकः पर्याप्तता प्रेम्णि कुतो विरूद्धा ।।"

ऐसा ही भावसाम्य माघ ने अपने **शिशुपालवध** में वर्णित किया है । प्रेम की पर्याप्तता होने पर भी प्रेमी और प्रेमिकाओं में कामातुरता ही देखी जाती है –

"विपुलतरनितम्बाभोगरूद्धेमण्याः,
शयितुमनधिगच्छञ्जीवितेशोऽवकाशम् ।
रतिपरिचयनश्यन्नेद्रतन्द्रः कर्थचित –
द्गमयतिशयनीमेशर्बरीकिं करोतु ।।"[2]

अर्थात् कामिनी के विशालतर नितम्ब के विस्तार से भरीशय्या पर सोने का स्थान न पाने के कारण नायक बार–बार संभोग करके ही अपनी नींद का आलस्य दूर करता हुआ किसी प्रकार रात बीताता है (बेचारा) करे भी क्या !

पुनः ऐसा ही एक स्थल द्रष्टव्य है[3] –

"सरभसपरिरम्भारम्भसंरम्भभाजा, यदधिनिशमपास्तंबल्लमेनाङ्गनायाः ।
वसनमपिनिशान्तेनेष्यते तत्प्रदातुं, रथचरणविशालश्रेणिलोलेक्षणेन ।।"

अर्थात् रात में (प्रियतमा को) वेगपूवर्क आलिंगन करने के अवसर पर कामविह्वलतावश प्रियतम ने अपनी प्रिया के जिस अधोवस्त्र को नितम्बभाग से अलग कर दिया था, प्रातः काल में भी पहिये के सदृश प्रिया के विशाल नितम्ब (को देखने) में सतृष्ण दृष्टि वाला वह (प्रियतम) उसे देना नहीं चाहता ।

पति के द्वारा आलिंगन करने पर भट्टि की ललनाएं शरीर को शिथिल कर देती है, देखने पर आंखे लज्जा से बन्द कर लेती है । प्रणयकोप का अवसर ही न देखकर एक मात्र अनुराग में ही लिप्त हुई स्थिर रहती है[4] –

---

१. भट्टिकाव्य, ११/११

२. शिशुपालवध, ११/५

३. वही, ११/२३

४. भट्टिकाव्य, ११/१२

"स्त्रस्ताऽङ्गयष्टिः परिरभ्यमाणा संदृश्यमानाऽप्युपसंहृताऽक्षी ।
अनूढमाना शयने नवोढा परोपकारैकरसैव तस्थौ ।।"

इधर माघ की नायिका भी ऐसी ही स्थिति की देखी जाती है [1] –

"कृतगुरुतरहारच्छेदमालिङ्ग्य पत्यौ,
परिशिथिलतगात्रे गन्तुमापृच्छमाने ।
विगलितनवमुक्तास्थूलवाष्पाम्बुबिन्दु,
स्तनयुगमबालायास्तत्क्षणं रोदितीव ।।"

अर्थात् (प्रियतम ने) प्रिया का ऐसा गाढ़ालिंगन किया कि (प्रिया का) लम्बा मनोहर मोतियों का हार टूट गया । फिर अपने को विनम्रता पूर्वक उपस्थित कर उससे जब जाने की अनुमति चाही तो मानो तत्काल (उस) प्रिया के युगलस्तन नवमोती तुल्य बड़े–बड़े अश्रुबिन्दु टपकाते हुए रोने लगे ।

इसके अतिरिक्त **भट्टिकाव्य** जैसे माघकाव्य में भी सूरतकालगत प्रेमी–प्रेमिकाओं में परस्परजनित नखक्षत एवं दन्दक्षत आदि भावसाम्य स्थल वाले श्लोक भी पर्याप्तता के साथ दृष्टिगत होते हैं । अतः हम **माघकाव्य** को भट्टिकाव्य से प्रभावित कह सकते हैं ।

५. भट्टिकाव्य का श्रीहर्ष (नैषधीयचरित) पर प्रभाव –

भट्टिकाव्य का प्रभाव **नैषधीयचरित** पर भी दृष्टिगत होता है । भट्टि ने अपने काव्य में अपनी काव्यगत गुरुता का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि – यह अर्थात् हमारा काव्यशास्त्र व्याख्या से बोधगम्य है । बुद्धिजीवियों के लिए तो विशेष आनन्दजनक रूप है, क्योंकि मैंने विद्वानों के प्रति आदरभाव होने के कारण से ही इसका निर्माण किया है । हां, दुर्बुद्धिजन (मन्द बुद्धि वाले लोग) इसमें मारे गये हैं । यथा [2] –

"व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सुवः सुधियामलम् ।
हतादुर् मेधश्चाऽस्मिन् विद्वत्प्रियतया मया ।।"

ठीक यही भाव ग्रहण कर श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य **नैषधीयचरित** का गौरवमान किया है [3] –

"ग्रन्थग्रन्थिरिहक्वचित् क्वचिदपिन्यासिप्रयत्नान्मया,

---

१. शिशुपालवध, ११/३८

२. भट्टिकाव्य, २२/३४

३. नैषधीयचरित, २२/१५४

प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खलेतु ।
श्रद्धाराद्ध गुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय –
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनंसुखव्यासज्जनं सज्जनः ।।"

अर्थात् इस काव्य की रस रूपी अमृत–लहरियों में मज्जन से उसी सहृदय सज्जन को लाभ होवे, जिसने श्रद्धा के साथ गुरु की आराधना तथा उपासना कर उनकी कृपा से (शब्दार्थ की) उन (दुरुह) ग्रन्थियों को सुलझा दिया है जिन्हें कवि ने इनमें स्थान–स्थान पर प्रयत्न–पूर्वक एकमात्र इस उद्देश्य से सन्निविष्ट कर रखा है कि जिससे अपने को विवेकी समझने वाला कोई खलजन केवल अपनी बुद्धि के सहयोग से इसके साथ खिलवाड़ न कर सके । अभिप्राय है कि गुरु कृपा से विवेकशील कहे जाने वाले ही इसे पढ़कर आनन्दित होवें, अल्पबुद्धिजन नहीं, कि जिन्होंने गुरु–संश्रय पाया तक नहीं है ।

पूर्वोक्त वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भट्टिकाव्य का अनेक परवर्ती काव्यों पर प्रभाव पड़ा । अतः भट्टिकाव्य एक पूर्ण महिमान्वित काव्य है जिसका परवर्ती कवियों के द्वारा कई दृष्टिकोणों, जैसे – भावादि, अलंकार, व्याकरण, श्रृंगारोत्कर्ष, काव्यगुरुता, गान आदि का अनुकरण किया गया है ।

अलंकारशास्त्री के रूप में भट्टि का महत्व –

संस्कृत वाङ्मय में काव्यालोचन या आलोचनाशास्त्र के लिए कई शब्दों का प्रयोग देखा जाता है – काव्यालंकार, काव्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, साहित्यशास्त्र एवं साहित्यविद्या । काव्यशास्त्र को पहले अलंकारशास्त्र के नाम से ही जाना जाता था । अलंकारों पर अपना विचार प्रस्तुत करने वाले कवियों का एक सम्प्रदाय बन गया है ।

अलंकारों की चर्चा करने वाले अलंकारशास्त्री के रूप में भट्टि का स्थान महत्वपूर्ण है । इन्होंने अपने महाकाव्य भट्टिकाव्य में अलंकारों का उदाहरण देकर ही उनके स्वरूप निष्पादन किये हैं, जबकि प्रायः अलंकारग्रन्थों में लक्षण और उदाहरण दोनों देखे जाते हैं. । सम्भवतः यही एक न्यूनतावश उनका उनका नाम भामह जैसे अलंकारिको के सदृश नहीं हो सका । फिर भी अलंकारों के क्षेत्र में महाकवि एवं काव्यशास्त्री के रूप में भट्टि का नाम स्मरणीय है ।

भट्टिकाव्य के प्रसन्नकाण्ड के अन्तर्गत दशम सर्ग में टीकाकार जयमंगल एवं पं० शेषराज शर्मा के अनुसार ७५ श्लोक हैं । जबकि मल्लिनाथ ने ७४ श्लोकों की ही गणना की है । इसमें ३८ अलंकारों के उदाहरण दिये गये हैं । जिनमें शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों क्रमशः देखे जाते हैं । शब्दालंकारों में १. अनुप्रास तथा २. यमक ही वर्णित मिलते हैं । कुछ टीकाकार 'श्लेष' को भी वर्णित बतलाते हैं ।[1] शेष

१. भट्टिकाव्य टीकाकार – आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी, चन्द्रकलाविद्योतिनी टीका–द्वयोपेत, १०/४२ व्युत्पत्तिभाग

अर्थालंकार है । ये अकारानुक्रम में इस प्रकार द्रष्टव्य हैं – .

अतिशयोक्ति, अनन्वय, अपह्नुति, अर्थान्तरन्यास, आक्षेप, आशीः, उत्प्रेक्षा, उदात्त (जयमंगल के अनुसार भट्टि ने इसका नाम उदार रखा है) उपमा, उपमारूपक, उपमेयोपमा, ऊर्जस्वि, तुल्ययोगिता, दीपक, निदर्शना, निपुण (एकमात्र) १ (इसका समावेश जयमंगल के अनुसार उदात्त में भी किया जा सकता है किन्तु टीकाकार मल्लिनाथ ने प्रेय अलंकार कहा है) परिवृत्ति, पर्यायोक्त, प्रेम, यथासंख्य, रसवत्, रूपक (वार्ता) एकमात्र भट्टि ने वर्णित किया है, जयमंगल टीका के अनुसार १०/४६ में दर्शनीय है । विभावना, विरोध, विशेषोक्ति, व्यतिरेक, व्याजस्तुति, श्लिष्ट, संसृष्टि, समासोक्ति, समाहित (जयमंगला टीका के अनुसार भट्टिकाव्य में जो उदाहरण समाहित का है, वही मल्लिनाथ के अनुसार स्वभावोक्ति है) समासोक्ति, ससन्देह, सहोक्ति तथा हेतु आदि । दशम सर्ग के अतिरिक्त अन्य सर्गों में भी इन अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं ।

'काव्यालंकार' में वर्णित प्रायः सभी अलंकारों का भामह के पूर्व भट्टि ने अपने काव्य में उदाहरण रूप में वर्णन किया है । इसका वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित विवरण डा०पी०वी०काणे ने प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार दर्शनीय है –

'उदाहरण के रूप में भामह ने पहले रूपक का लक्षण दिया है । (अध्याय २/२१) फिर दीपक का (२/२५) इसी प्रकार आक्षेप का लक्षण अर्थान्तरन्यास से पहले दिया है, जबकि भट्टि ने दीपक और अर्थान्तरन्यास के उदाहरण रूपक और आक्षेप से पहले दिये हैं । भामह ने विरोध के अनन्तर तुल्ययोगिता (अध्याय ३/२७) का लक्षण दिया है, जबकि भट्टि ने तुल्योगिता का उदाहरण उपमा–रूपक के पश्चात् तथा विरोध (अध्याय ३/२५) के पूर्व दिया है । भट्टि ने अप्रस्तुत प्रशंसा का उदाहरण नहीं दिया है, जबकि भामह ने उसका लक्षण दिया है । भट्टि ने हेतु तथा वार्ता नामक अलंकारों के उदाहरण दिये हैं किन्तु भामह ने उन्हें स्वीकार नहीं किया है । भट्टि की हस्तलिखित (१०/४४) प्रति में 'निपुण' नामक अलंकार का उदाहरण दिया गया है, जिसे भामह तथा दण्डी ने स्वीकार नहीं किया है । भट्टि ने श्लेष और सूक्ष्म नामक अलंकारों के उदाहरण नहीं दिये हैं, जबकि दण्डी ने उन्हें तथा हेतु को उत्तम अलंकार माना है । भामह (२/८६) ने उपर्युक्त तीनों को अलंकार नहीं माना है । भट्टि ने यमक के उदाहरण में बीस (भेदरूप) श्लोक दिये हैं, जो कि नाट्यशास्त्र तथा काव्यादर्श में आयी हुई यमक की चर्चा के अनुसार है, किन्तु भामह ने इस चर्चा को बहुत संक्षिप्त कर दिया है । इससे सिद्ध होता है कि भट्टि ने भामह या दण्डी में से किसी का अनुसरण नहीं किया है ।[१]

इस प्रकार भट्टिकाव्य के दशमसर्ग में कवि ने यमक के बीस भेदों के उदाहरण दिये हैं ।[२] 'भाविक' के

---

१. महामहोपाध्याय पी०वी०काणे, संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, (अंग्रेजी में) हिन्दी अनुवादक – डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री

२. भट्टिकाव्य, टीकाद्वय – चन्द्रकला विद्योतिनी, टीकाकार–आचार्य शेषराज शर्मा शास्त्री १९७६

उदाहरणार्थ सम्पूर्ण द्वादश सर्ग ही कवि ने रखा है । पुनः श्लेषभेदरूप भाषासम निमित्त त्रयोदश सर्ग देकर नयी परिपाटी का पल्लवन कर दिखाया है, जिसमें संस्कृत और प्राकृतभाषा के उदाहरणभूत एक ही श्लोक है ।

भट्टिकाव्य का अलंकारशास्त्रों में महत्त्व का प्रश्न है, तो इस प्रसंग में एस०के०डे० का विचार द्रष्टव्य है–

"भट्टिकाव्य में विभिन्न अलंकारों के उदाहरण देने की बात पर विचार करने से यही लगता है कि संभवतः भरत से भामह के मध्य में विलुप्त आलंकारिक रेखा को पूर्ण करने हेतु ही भट्टि ने यह अलंकारशास्त्र के इतिहास में महत्त्वपूर्ण कार्य किया ।"[१]

ह्यकास भी इस भट्टिकाव्य से प्रभावित होकर इसका मूल्यांकन करते हुए कहते हैं कि –"कवि ने इसके दशम सर्ग में २० यमक भेदों और ५३ अर्थलंकारों का उदाहरण दिया है । इसके साथ ही इसमें महाकाव्यगत कोई विशेष कमी भी नहीं आने दी है ।"[२]

भट्टिकाव्य के टीकाकार –

किसी भी कवि की रचना का महत्त्व उस पर लिखी गई टीकाओं द्वारा आँका जा सकता है । अतः भट्टिकाव्य का महत्त्व भी उन पर लिखी गई टीकाओं द्वारा आँकना अपेक्षित है । अनेक टीकाकारों की पाण्डित्यपूर्ण टीका भट्टिकाव्य पर मिलती हैं । कतिपय टीकाकारों के नाम इस प्रकार देखे जा सकते हैं –

१. कन्दर्प शर्मा – इनके द्वारा पद्मनाभ के सौपद्मव्याकरण के अनुसार भट्टिकाव्य पर लिखी अपनी टीका, "वैजयन्ती"[३] की व्याख्या की गई है । टीका प्रारम्भ करते समय इनके द्वारा योगेश्वरकृष्ण और महादेव शिव को लक्ष्यकर मंगलाचरण किया गया है । इनका दूसरा नाम कन्दर्प चक्रवर्ती भी है ।[४] काव्यप्रकाश, दण्डी, कृष्णस्वामी और दुर्घटवृति[५] आदि का उल्लेख अपनी टीकाओं में किये जाने से इनका समय १२वीं शताब्दी के बाद मानना उपयुक्त लगता है । अन्यत्र इनकी टीका का प्रारम्भिक स्वरूप इस प्रकार मिलता है –

"विद्यासागरटीकायां, कातन्त्रप्रक्रियायतः ।

---

१. द्रष्टव्य – डॉ० सत्यपाल नारंग, भट्टिकाव्य, एक अध्ययन (अंग्रेजी) पृ० ३८, यस०के०डे० संस्कृत पोयटिक्स, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, १९६०, पृ० ५

२. द्रष्टव्य – वही, सी० ह्यकास, भट्टिकाव्य के कुछ अर्थालंकार, बुलेटिन आफ स्कूल आफ ओरियन्टल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज, १९५७, वाल्युम – २०, पृ० ३५१

३. जूब्रियस ईगेलिंग कैटलाग आफ संस्कृत मैन्युक्रिप्ट इन दि लाइब्रेरी आफ इण्डिया आफिस, पार्ट – २ नं० ६२०

४. वही, कालपेन

५. वही, नं० ६२०

सुपद्य प्रक्रिया तस्मात्, तस्मादेव, प्रणीयते ।।"[१]

जबकि आफ्रेक्ट ने सौपद्म व्याकरण के अनुसार लिखी "वैजयन्ती" नाम की टीका का उल्लेख तो किया है, किन्तु टीकाकार का नाम अज्ञात बतलाया है ।[२] एक अन्य टीकाकार डॉ० श्रीगोपालशास्त्री ने कन्दर्प चक्रवर्ती के नाम से उनकी टीका "जयन्ती"[३] का नामोल्लेख भी किया है ।

२. जयदेव या जयमंगल – इन्हें जटीश्वर नाम से भी जाना जाता है । इन्होंने पाणिनीय व्याकरण के अनुसार भट्टिकाव्य पर **जयमंगला** टीका लिखी है । इस टीका का उल्लेख दुर्घटवृत्तिकर्त्ता शरभदेव ने अनेक स्थलों पर किया है । अस्तु, इनका काल सं० १२२६ से पूर्व है ।[४] मीमांसक जी ने पुनः जयमंगल के द्वारा भट्टिकाव्य पर लिखी गई व्याख्या **दीपिका** या **जयमंगला** का उल्लेख भी किया है । साथ ही यह भी स्पष्ट किया है कि जटीश्वर या जयदेव या जयमंगल नाम वाले टीकाकार से यह पृथक् व्यक्ति है ।[५] **जयमंगल** की पहली टीका **जयमंगला** भट्टिकाव्य पर ही है ।[६] इन्होंने भट्टिकाव्य की काव्यशास्त्रीय भाग–व्याख्या भामह के काव्यालंकार के अनुसार की है । **पी०वी०काणे** ने इनका काल ८०० ई० के बाद और १०५० ई० के पहले माना है ।[७] क्योंकि इनके द्वारा भामह एवं दण्डी की चर्चा की गई है, लेकिन मम्मट की नहीं । इन्होंने **वर्णादेशने** उद्धरण पुरुषोत्तम देव से दिया है ।[८] **पी०पीटर्सन** ने जयमंगल की दूसरी टीका **कविशिक्षा** बतलायी है ।[९] जयमंगला व्याख्या के आरम्भ में लिखा है –.

"प्रणिपत्य सकलवेदिनमतिदुस्तरभट्टिकाव्यसलिलनिधेः ।
जयमङ्गलेति नाम्ना नौकेव विरच्यते टीका ।।"

३. कुमुदानन्द – पाणिनीय व्याकरण के अनुसार भट्टिकाव्य पर लिखी गई इनकी टीका का नाम

---

१. युधिष्ठिरमीमांसक, संस्कृत व्याकरण साहित्य का इतिहास, द्वितीयभाग, पृ० ३६०

२. आफ्रेक्ट, कैटलॉगस कैटलॉगारमं, पृ० ३६५

३. भट्टिकाव्य, (१ – ४ सर्ग), काव्यसर्ग विमर्शिका टीका टीकाकार – डॉ० श्री गोपालशास्त्री (संस्कृत–हिन्दी) प्रस्तावना पृष्ठ – ५, संपादक – श्री गोपालदत्त पाण्डेय

४. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, द्वितीयभाग, पृ० ३६०.

५. वही

६. एन०पी०शास्त्री सम्पादक, भट्टिकाव्य, एन०एस०पी०बाम्बे, १६२८

७. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, दिल्ली, १६६०, पृ० ७७

८. टी० आफ्रेक्ट, कैटलाग, कैटलॉगरम, पृ० २०१

९. पी०पीटर्सन व्याख्याभाग संस्कृत ग्रन्थकार्य, हस्तलेख, बाम्बे (अगस्त १८८२, मार्च १८८३) अतिरिक्त अंक, जब्रास १८८३, अपेन्डिक्स, पृ० ७८, नं० १२०

सुबोधिनी है ।[१] जिसमें मूलअंश की व्याख्या द्रष्टव्य है ।

४. हरिहराचार्य – इन्होंने "भट्टिबोधिनी"[२] नामक व्याख्या लिखी है । इसके आरम्भ में लिखा है –

"नत्वा रामपदद्वन्द्वमारविन्दं भवच्छिदम् ।
द्विजो हरिहराचार्य कुरुते भट्टिबोधिनीम् ।।"

५. अनिरूद्ध – इनकी टीका का नाम "भट्टिकाव्यलघुटीका" है ।[३] इसके लेखक का नाम पी०राघवन ने[४] कुछ भिन्न सा 'अनिरूद्धपण्डित' लिखा है । इसके अतिरिक्त परिचय इसके सम्बन्ध में नहीं प्राप्त होता है ।

६. केशवशर्मा – इनकी टीका अपूर्ण प्राप्त होती है । इसमें दस सर्ग तक ही सतत् व्याख्या की गई है । इनकी टीका का नाम "भट्टिकाव्यटीका" लिखा मिलता है ।[५]

७. पुण्डरीकाक्ष नामक वैयाकरण ने "कलादीपिका" नामक भट्टिकाव्य पर टीका लिखी है । इनके पिता का नाम श्रीकान्त था । कन्दर्पशर्मा[६] ने इसी पुण्डरीकाक्ष विद्यासागर का मात्र विद्यासागर नाम उद्धत किया है ।

८. भरतसेन या भरतमल्लिक – इन्होंने मुग्धबोध व्याकरण के अनुसार ही भट्टिकाव्य पर अपनी व्याख्या "मुग्धबोधिनी" लिखी है । जैसा कि उसके प्रारम्भ में लिखा है –

"नत्वा शङ्करमम्बष्ठ गौराङ्गमल्लिकात्मजः ।
भट्टिटीका प्रकुरुते भरतो मुग्धवोधिनीम् ।।"

यह गौरामल्लिक के पुत्र थे, जो वैद्य हरिहर खान के वंशज एवं कल्याण मल्ल के ग्राहक थे । आफ्रेक्ट[७] ने कल्याणमल्ल का समय १७६० ई० बताया है । इनकी अन्य ग्रन्थों पर भी टीकायें उपलब्ध हैं जैसे – उपसर्ग वृत्ति, कारकोल्लास, किरातार्जुनीय टीका, कुमारसम्भव टीका, घटकर्पर टीका, द्रतुबोधिनी, नलोदयटीका,

---

१. राजेन्द्रलाल मित्र, नोटिसेज ऑफ संस्कृत हस्तलेख, कलकत्ता, १८८६, वाल्यूम, ४ पृ० १६३६

२. युधिष्ठिरमीमांसक संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ३६०

३. सी०डी०दलाल, ए कैटलाग आफ मैन्यूकैक्चर्स, जैसलमेर भण्डार, बड़ौदा, १६२३, जी०ओ०एल०२१, पृ० ६, नं० ८३

४. न्यू कैटलाग्स, कैटलागारम, वाल्यूम १, मद्रास १६४६, पृ० १५५

५. यच०पी०शास्त्री ए डिस्क्रिप्टिव कैटलाग आफ दि संस्कृत मैन्युस्क्रिप्टस इन दि कलेक्शन आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल कलकत्ता, १६३४, पृ० ६५

६. युधिष्ठिरमीमांसक संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास – २, पृ० ३६०

७. आफ्रेक्ट कैटलाग्स, कैटालॉगारम, पृ० ३६०

नैषधीयचरितटीका, शिशुपालवध टीका आदि । भामह के काव्यालंकार के आधार पर जैसे काव्यत्मक स्वरूप की व्याख्या जयमंगल ने की है, ठीक उसी प्रकार भट्टिकाव्य के काव्यशास्त्रीय स्वरूप की व्याख्या भरतसेन ने भी की है ।

९. **मल्लिनाथ** – टीकाकार के रूप में अतिप्रसिद्धि प्राप्त मल्लिनाथ की टीका भट्टिकाव्य पर **सर्वपथीना** नाम से जानी जाती है । इनका समय पन्द्रहवीं शताब्दी पूर्वार्ध के लगभग है ।[१] इनके द्वारा लिखी गई विभिन्न टीकायें अपनी सुबोधता के लिए विख्यात हैं । व्याकरण और कोश की दृष्टि से इनकी टीकायें बहुत वैदुष्यपूर्ण हैं । इन्होंने प्रायः अन्य सभी प्रसिद्ध काव्यों की टीका लिखी है । यथा – अमरपद–परिजात, उदारकाव्य, एकावली टीका, किरातार्जुनीय टीका, मेघदूत टीका, कुमारसंभव टीका, तार्किकरक्षा टीका, नैषधीयटीका, भट्टिकाव्य पर सर्वपथीना टीका, रघुवंशटीका, रघुवीर–चरित और शिशुपालवध टीका ।[२] जयमंगला टीका से कुछ भिन्न इनके द्वारा भट्टिकाव्य के काव्यात्मक भाग की व्याख्या की गई है । दण्डी के अलंकार–वर्णन के अनुसार इन्होंने उदाहरण दिये हैं ।

१०. **नारायण विद्याविनोद** –इनका वास्तविक नाम **नारायण** है । इनकी टीका का नाम 'भट्टिबोधिनी' है ।[३] व्याख्या का मूलाधार 'पाणिनीयाष्टाध्यायी' रही है । काशिकावृत्ति में टीकाकार जिनेन्द्र की भी चर्चा इनके द्वारा की गई है । अतः इनका समय निर्विवादरूप से सातवीं शताब्दी के बाद का सिद्ध होता है ।

११. **पेड्डभट्ट** – इन्होंने भट्टिकाव्य की अपूर्ण टीका 'तेलगू' भाषा में लिखी है ।[४] यह सरस्वती भण्डार मेलकोटा के अधिकार में है । आफ्रेक्ट[५] ने पेड्डभट्टि को मल्लिनाथ से परिचित बतलाया है । इनकी अन्य टीकायें भी मिलती है ।

१२. **विद्याविनोद** – इनकी टीका का नाम **भट्टिचन्द्रिका** है ।[६] ये रामचन्द्र और सीता के अनुगामी (भक्त) थे । इससे भिन्न व्याख्यायें भी इनके द्वारा दी गई है । यथा – गणप्रकाश[७], शब्दार्थ संदीपिका[८] और

---

१. डॉ० चन्द्रिकाप्रसाद शुक्ल, नैषधयरिशीलन, पृ० ५५२
२. टी० आफ्रेक्ट, कैटलॉगस, कैटलॉगरम्, पृ० ४३४
३. आर०पल०मित्र, नोटिसेज आफ संस्कृत, मैन्युस्क्रिटस ४ नं० कालफोन अथ पाणि निकृतलक्षणान्यवगन्तुमशवनुक्ता भाष्यकाजिनेन्द्रभ्रभृति – नानामतानसारिणाम् ।
४. डेविस राइस कैटलॉग और संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स, मैसूर एण्ड कूर्ग बंगलौर, १९८४, पृ०, २३४, नं० २१६
५. टी० आफ्रेक्ट, कैटलॉगस, कैटलॉगरम् पृ० ३४५
६. ईगेलिंग, मैन्यू० इन इंडिया आफिस लाइब्रेरी, नं० ६२०, (५) ।
७. वही, नं० ८३८
८. वही, नं० ६६४

अमरकोश टीका । इनका नाम १२वीं शताब्दी के बाद माना जाता है ।

१३. रामचन्द्र शर्मा – भट्टिकाव्य पर **व्याख्यानन्द** नामक टीका लिखने वाले रामचन्द्र शर्मा वीरेन्द्र के वंशज थे । इनके गुरू का नाम नयनानन्द चक्रवर्ती था ।[१] यही इनके जीवन का परिचय अन्यत्र भी प्राप्त होता है ।[२] आफ्रेक्ट ने ६८ रामचन्द्र गिनाये हैं ।[३] इसलिए स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि कौन रामचन्द्र भट्टिकाव्य के टीकाकार रहे हैं । इनके द्वारा छः सर्ग तक ही टीका लिखी गई है ।

१४. रामचन्द्रवाचस्पति – भट्टिकाव्य की रामचन्द्रवाचस्पति द्वारा लिखीगई टीका, "सुबोधिनी"[४] है । ये मां चण्डिका एवं परमेश्वर के उपासक थे ।[५] इन्होंने भट्टिकाव्य पर लिखी गई सारी टीकाओं का अध्ययन करके ही अपनी टीका 'सुबोधिनी' का शुद्ध रूप प्रस्तुत किया है ।

१५. विद्यासागर – विद्यासागरकृत टीका "कलादीपिका" है । इनकों अपनी टीका में, अमरकोश के टीकाकार रमानाथ और भट्टिकाव्य के टीकाकार भरतसेन (१७६० ई०) ने बार–बार उद्धत किया है ।[६] अतः इनका काल १७वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाना चाहिये ।

१६. राघव – इन्होंने भी भट्टिकाव्य पर टीका लिखी है ।[७] टी० आफ्रेक्ट एवं कृष्णमाचारी ने अनेक राघव गिनाये हैं । आफ्रेक्ट ने १६ राघवों की गणना प्रस्तुत की है ।[८]

१७. व्याख्यासागर – भट्टिकाव्य पर "व्याख्यासागर" नामक टीका लिखी है, किन्तु टीकाकार का नाम अज्ञात है । इसका उल्लेख राजकीय हस्तलेख संग्रह के सूचीपत्र में 'भट्टिकाव्य' 'स्थूल' व्याख्यासागर के रूप में प्राप्य है ।[९]

---

१. पं० युधिष्ठिर, मीमांसक, संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, द्वितीयभाग, पृ० ३६०

२. ईग्रेलिंग, मैन्यू इन इण्डिया, आफिस लाइब्रेरी, नं० ६२०, ७ वर्ष, १ एवं २

३. टी० आफ्रेक्ट कैटलागस, कैटलॉगारम्, पृ० ५१० से ५१३ तक

४. राजेन्द्रलाल, मित्र, नोटिसेज आफ संस्कृत मैन्यु कलकत्ता, १६८६ वाल्यूम, ८, पृ० २२०–२२१, कॉलफोन, इतिश्रीरामचन्द्रचरमतिविरचितायां सुबोधिन्याभट्टिकाव्यांम् ।

५. राजेन्द्रलाल, मित्र, नोटिसेज आफ संस्कृत मैन्यु कलकत्ता, १६८६, वाल्यूम ८, श्लोक १ – २

६. टी० आफ्रेक्ट, कैटलाग्स, कैटलॉगरम्, पृ० २६५

७. के०पी०जायसवाल, ए डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग आफ मैन्यू० इन मिथिला, पटना, १६३३, वाल्यूम ११, पृ० १०२

८. आफ्रेक्ट, कैटलॉगस, कैटलॉगरम्, पृ० ४६६

९. पं० युधिष्ठिरमीमांसक, संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, द्वितीयभाग, पृ० ३६०

१८. **भट्टिकाव्यटीका** – **इसके लेखक का नाम अज्ञात है । आफ्रेक्ट**[1] **ने यह स्पष्टीकरण दिया है कि** माधवीयवृत्ति द्वारा इस टीका का उल्लेख मिलता है ।

१६. **भट्टिकाव्यटीका** – **इस प्रकार इस नाम से दो टीकाओं का उल्लेख हुआ है, लेकिन टीकाकार दोनों** के अज्ञात है । जी० आपर्ट ने इसकी चर्चा करते हुए अपना मत प्रतिपादन इस प्रकार किया है कि – अज्ञात नामोल्लेखक ने भवानी के अन्नास्वामीशास्त्री के अधिकार में रहकर इसको लिखा है । इसमें ७६ पृष्ठ हैं । इसका समय ३०० वर्ष रहा है ।[2]

२०. श्रीधर – भट्टिकाव्य पर लिखित टीकाकार श्रीधर की 'तेलगू' भाषा में उपनिबद्ध टीका है ।[3] इन्होंने श्रीहर्ष के महाकाव्य 'नैषधीयचरित' पर भी टीका लिखी है ।[4]

२१. भट्टिकाव्य विमर्श[5] – इस टीका का लेखक अज्ञात है । टीकाकार के बारे में निर्विवाद रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है ।

२२. श्रीनाथ – इनकी टीका का नाम **भट्टिरूपप्रकाश** है ।[6] इनके पिता श्रीकराचार्य थे ।[7] इन्होंने नैषधीयचरित पर भी टीका लिखी है ।

२३. श्रीनिवास – भट्टिकाव्य पर इनकी टीका **श्रैनिवासी** नाम से जानी जाती है । यह टीका अपूर्ण है । इसमें मात्र १४ से २२ सर्ग तक की व्याख्या की गई है । श्रीनिवास का स्थिति–काल, धरसिंहदेव के राज्यकाल में ठहरता है । कृष्णमाचारी ने अनेक श्रीनिवास गिनाये हैं ।[8] उनमें ही एक तो नैषधीयचरित का टीकाकार भी हुआ था । सम्भव है कि यही नैषधीयचरित का टीकाकार भट्टिकाव्य के टीकाकार से भी सम्बन्धित रहा है ।

---

१. टी० आफ्रेक्ट केटलॉगस, कैटलॉगरम्, पृ० ३६५

२. जी० आपर्ट, लिस्ट आफ संस्कृत, मैन्यू०इन०प्रा०लाइब्रेरी आफ सादर्षन इण्डिया, मद्रास, १८८०–८५, वाल्यूम १, पृ० १३४, नं० १५१७

३. कुप्पूस्वामीशास्त्री, ए० डिस्क्रिप्टिव कैटलगाव आफ दि संस्कृत, मैन्यू इनादि गवर्नमेन्ट, औरि० मैन्यू० लाइब्रेरी, मद्रास, नं० ११६१६

४. वही, नं० ४७२०

५. पी०पी०एल०शास्त्री, ऐन अल्फावेटिकल इंडेक्स आफ संस्कृत, मैन्यू इन दि गवर्नमेन्ट, ओरिय० लाइब्रेरी, मद्रास, १६३८, नं० १४०७७

६. के०पी०जायसवाल, ए डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग आफ मैन्यू० इन मिथिला, वाल्यूम २, पृ० १०३, नं० ६६

७. ए०एव०जैनी, ए क्रिटिकल स्टडी आफ दि नैषधीयचरित, पृ० ७१

८. कृष्णमाचारी, हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (इन्डेक्स) पृ० १०६२

इसी प्रकार अन्य टीकाकारों ने भी भट्टिकाव्य पर अपनी टीकायें लिखी हैं, जो अधोलिखित हैं –

टीकाकार –

१. भाषाविवृति पुरुषोत्तमदेव

२. मुग्धबोधिनी रामानन्द

३. संक्षिप्त सारविवरणी विद्यानन्द

४. सुपद्म विवरणी विद्यानिधि

५. चन्द्रकलाविद्योतिनी (संस्कृत–हिन्दी) पं० शेषराज शर्मा

६. काव्य – मर्मविमर्शिका डॉ० श्री गोपाल शास्त्री

७. काशिका (हिन्दी) डॉ० रामअवध पाण्डेय

अस्तु, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि व्याकरण शिक्षा के क्षेत्र में जितना ख्यातिलब्ध भट्टिकाव्य रहा है, उतना संभवतः अन्य ग्रन्थ नहीं है । इसके प्रमाणस्वरूप इस पर हुई टीकायें ही ग्राह्य हैं ।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि भट्टिकाव्य में कवि महाकाव्य, व्याकरणशास्त्र और काव्यशास्त्र की त्रिवेणी के रूप में सहृदय पाठकों को अध्ययन रूप अवगाहन द्वारा आनन्दित एवं सुसंस्कृत करता है । डॉ० भोलाशंकर व्यास का भट्टि के व्यक्तित्व के बारे में यह कथन कितना सत्य प्रतीत होता है – "भट्टि मूलतः वैयाकरण तथा अलंकारशास्त्री है, जो व्याकरण और अलङ्कारशास्त्र के सिद्धान्तो को व्युत्पित्सु सुकुमारमति राजकुमारों तथा काव्यमार्ग के भावी पथिकों के लिए काव्य के बहाने निबद्ध करते हैं ।" [१]

महाकवि भट्टि ने समझने में दुर्बोध व्याकरणशास्त्र का उपदेश काव्य के सरस माध्यम से देना प्रारम्भ कर एक नयी परम्परा का निर्माण कर दिया । रावणार्जुनीय, धातुकाव्य, कविरहस्य आदि काव्यों में इसी नवीन परम्परा का दर्शन हमें होता है । अन्त में हम डॉ० बलदेव उपाध्याय के शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं – "संस्कृत भाषा में निबद्ध 'शास्त्रकाव्यों' में भट्टिरचित महाकाव्य आदिम ग्रन्थ माना जाता है । आधुनिक आलोचक, काव्य के द्वारा व्याकरण सिखलाने के इस विशाल तथा दुराराध्य प्रयत्न की हँसी उड़ाये न रहेगा, परन्तु प्राचीन आलोचक ऐसे शास्त्रकाव्यों को निरर्थक वाग्जाल नहीं मानता था ।"

महाकवि भट्टि अप्रतिम कवि, प्रतिभासम्पन्न काव्यशास्त्री एवं बहुश्रुत सम्बुद्ध सर्वशास्त्रज्ञ आचार्य थे । संस्कृत साहित्य में उनका योगदान कुछ अनूठा ही है ।

---

१. डॉ० भोलाशंकर व्यास, संस्कृत कविदर्शन, पृ० १४०

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची

१. अग्निपुराण

२. अभिज्ञान शाकुन्तलम् – कालिदास

३. अष्टाध्यायी – पाणिनि

४. अर्थशास्त्र – कौटिल्य, सम्पादक–रामतेज

५. अनर्घराघव – मुरारि पाण्डेय

६. आयुर्वेद

७. आदि भारत – अर्जुन चौबे कश्यप

८. आदिकवि वाल्मीकि – डा० राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रथम संस्करण, १९८१

९. इण्डिया – मैक्समूलर

१० इण्डियन ऐन्टीक्वेटी, भाग – १५ – डा० पाठक

११. ईगेलिंग, मैन्यूस्क्रिप्ट्स इन इण्डिया आफिस लाइब्रेरी

१२. उत्तररामचरितम् – भवभूति

१३. ए डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग आफ मैन्यूस्क्रिप्ट्स इन मिथिला, वाल्यूम २

१४. ऋतुसंहार – कालिदास

१५. ऋग्वेद

१६. कवि रहस्य – भट्टि भौमक

१७. कामसूत्र – वात्स्यायन

१८. काव्यप्रकाश – मम्मट

१९. काव्यमीमांसा – राजेशखर

२०. काव्यालङ्कार – भामह

२१. काव्यालङ्कार – रूद्रट

२२. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति – वामन

२३. काव्यादर्श – दण्डी

२४. किरातार्जुनीयम् – भारवि

२५. कुमारसम्भव – कालिदास

२६. कालिदास (सेकेण्ड सीरीज) — महर्षि अरविन्द

२७. काव्य–रहस्य — हलायुध

२८. चन्द्रालोक — जयदेव

२६. जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी — प्रो० ए०बी० कीथ, १६०४

३०. जानकीहरण — कुमारदास

३१. जी० आपर्ट, लिस्ट आफ संस्कृत, मैन्यू० इन० प्रा० लाइब्रेरी आफ सादर्षन इण्डिया, मद्रास, १८८० — ८५, वाल्यूम् १

३२. टी० आफ्रेक्ट, कैटलॉगस, कैटलॉगारम्

३३. दशरूपक — धनञ्जय

३४. द डेट ऑव् कालिदास — पं० क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय

३५. ध्वन्यालोक — आनन्दवर्धन

३६. ध्वन्यालोकलोचन — अभिनवगुप्त

३७. धातुकाव्य — नारायण भट्ट

३८. नाट्यशास्त्र — भरतमुनि

३६. निरुक्त — यास्क

४०. नीतिशतक — भर्तृहरि

४१. नैषधचरित — श्रीहर्ष

४२. नोटिसेज ऑफ संस्कृत मैन्यूस्क्रिप्ट्स, वाल्यूम ४ — राजेन्द्रलाल मित्र, १८८६

४३. प्राचीन भारत का इतिहास — डा० भगवत् शरण उपाध्याय

४४. प्रैगमेटिक थ्योरीस् आफ ऐजुकेशन — प्रकाशक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा

४५. प्राकृत पैङ्गल

४६. बुद्धचरितम् — अश्वघोष

४७. भगवद्गीता

४८. भागवतपुराण

४६. भट्टिकाव्य — भट्टि

५०. भट्टिकाव्य — एन०पी०शास्त्री

५१. भट्टिकाव्य 'चन्द्रकला' 'विद्योतिनी' — पं० शेषराज शर्मा ऐमी

५२. भट्टिकाव्य — पं० चण्डीप्रसादचार्य दधिमथः

५३. भट्टिकाव्यालोकः (प्रश्नोत्तरात्मक) – डा० रमाशङ्कर मिश्र

५४. भट्टिकाव्यदर्पणः (प्रश्नोत्तरात्मक) – स्वामी प्रज्ञानभिक्षु

५५. भट्टिकाव्य और पाणिनीय व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन – डा० शशिबाला, प्रथम संस्करण, १९९४

५६. भट्टिकाव्य – डा० रामअवध पाण्डेय

५७. भट्टिकाव्य – डा० श्री गोपाल शास्त्री

५८. भट्टिकाव्य एक अध्ययन (अंग्रेजी में) – डा० सत्यपाल नारंग

५९. भोजप्रबन्ध

६०. मनुस्मृति

६१. महाभारत – वेद व्यास

६२. महाभाष्य – पतञ्जलि

६३. मत्स्य पुराण

६४. मालविकाग्निमित्रम् – कालिदास

६५. मेघदूत – कालिदास

६६. रस गंगाधर – पं० राज जगन्नाथ

६७. रघुवंश – कालिदास

६८. रस मीमांसा – रामचन्द्र शुक्ल

६९. रामायण – वाल्मीकि

७०. रावर्णाजुनीय – भौमक या भूम

७१. वक्रोक्तिजीवित – कुन्तक

७२. व्यक्तिविवेकटीका – महिमभट्ट

७३. वासुदेव–चरित – वासुदेव

७४. विक्रमोवर्शीयम् – कालिदास

७५. विक्रमाङ्कदेवचरितम् – विल्हण

७६. विष्णुपुराण

७७. वेदाङ्ग ज्योतिष

७८. शिशुपालवध – माघ

७९. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय

८०. संस्कृत साहित्य का इतिहास — डा० वाचस्पति गैरोला
८१. संस्कृत साहित्य का इतिहास — डा० ए०बी०कीथ, अनुवादक – मंगलदेव शास्त्री
८२. संस्कृत वाङ्गमय का विवेचनात्मक इतिहास — डा० सूर्यकान्त
८३. संस्कृत कवि दर्शन — डा० भोलाशंकर व्यास
८४. संस्कृत सुकवि समीक्षा — डा० अमरनाथ पाण्डेय
८५. संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा — डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अक्टूबर १६५७
८६. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा — चन्द्रशेखर पाण्डेय, सप्तम संस्करण, १६६४
८७. संस्कृत महाकाव्य की परम्परा — डा० केशवराव मुसलगाँवकर, प्रथम संस्करण, १६६६
८८. संस्कृत साहित्य में मौलिकता एवं अनुहरण — डा० उमेशप्रसाद रस्तोगी, १६६५
८६. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास (अंग्रेजी में) — पी०वी० काणे, हिन्दी अनुवादक – डा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री
६०. संस्कृत व्याकरण साहित्य का इतिहास, द्वितीय भाग, युधिष्ठिरमीमांसक
६१. संस्कृत सुकवि समीक्षा — डा० बलदेव उपाध्याय
६२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग १ — सेठ कन्हैयालाल पोद्दार
६३. संस्कृत साहित्य का इतिहास — डा० कपिलदेव द्विवेदी
६४. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास — एस० के० डे० १६६०
६५. संस्कृत हिन्दी कोश — वामन शिवराम आप्टे
६६. संस्कृत काव्य में शकुन — डा० दीपचन्द्र शर्मा
६७. संस्कृत को रघुवंश की देन — डा० शङ्कर दत्त ओझा
६८. साहित्यदर्पण — विश्वनाथ
६६. सुवृत्तितिलक — क्षेमेन्द्र
१००. सेतुबन्ध — प्रवरसेन
१०१. सौन्दरनन्द — अश्वघोष
१०२. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास — डा० शम्भूनाथ सिंह
१०३. हिस्ट्री आफ क्लासिक संस्कृत लिटरेचर — एस०के०डे०
१०४. हिस्ट्री आफ क्लासिक संस्कृत लिटरेचर — एम० कृष्णमाचारियार, प्रकाशक मोतीलाल बनारसी दास ।